MA HINDI-101(H)

हिन्दी साहित्य का इतिहास

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

SWAMI VIVEKANAND
SUBHARTI UNIVERSITY
Meerut (National Capital Region Delhi)

हिन्दी साहित्य का इतिहास

(HISTORY OF HINDI LETERATURE)

MAHINDI–101

Self Learning Material

Directorate of Distance Education

SWAMI VIVEKANAND SUBHARTI UNIVERSITY
MEERUT–250 005
UTTAR PRADESH

Reviewed by :

Ms Reshu

Assessed by :

Study Material Assessment Committee, as per the SVSU ordinance No. VI (2)

Copyright © हिन्दी साहित्य का इतिहास Pragati Prakashan, Meerut

No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced transmitted or utilized or stored in any form or by any meaning now known or hereinafter invente electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any informatic storage or retrieval system, without prior permission from the publisher.

Information contained in this book has been published by Pragati Prakashan, Meerut and has bee obtained by its authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledg However, the publisher and its author shall in no event be liable for any errors, omissions or damag arising out of use of this information and specially disclaim and implied warranties or merchantability fitness for any particular use.

Published by : Pragati Prakashan, 240 W.K. Road, Meerut – 250 001
Tel. 2640642, 2643636, 6544643, E-mail : pragatiprakashan@gmail.com

Typeset at : Pragati Laser Type Setters Pvt. Ltd., Meerut Printed at : Arihant Electric Press, Me

EDITION : 2020

Syllabus

उदेष्य–

छात्र हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन कर सकेगें

छात्र आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक की विविध विचार धाराओ की जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

ईकाई–1 : हिन्दी साहित्य का इतिहास की भूमिका और आदिकाल

काल विभाजन और नामकरण

आदिकाल की पृष्ठभूमि

नाथ, सिद्ध और जैन साहित्य

रासो काव्य एवं लौकिक साहित्य

ईकाई–2 : भक्तिकालीन साहित्य

भक्तिकाल की पृष्ठभूमि

निर्गुण ज्ञानमार्गी संत काव्यधारा

निर्गुण प्रेममार्गी सूफी काव्यधारा

कृष्ण भक्ति काव्य

ईकाई–3 : रीतिकाल

रीतिकालीन साहित्य

रीतिकालीन कविता की पृष्ठभूमि और आधार

रीतिकालीन कविता का स्वरूप

ईकाई–4 : आधुनिक साहित्य

आधुनिक साहित्य की पृष्ठभूमि

भारतेन्दु युग

द्विवेदी युग

विषय-सूची

1. **हिन्दी साहित्य के इतिहास की भूमिका और आदिकाल** 1–
   1.1 उद्देश्य
   1.2 प्रस्तावना
   1.3 इतिहास दर्शन का अर्थ
   1.4 साहित्य इतिहास दर्शन
   1.5 हिन्दी साहित्य लेखन के विविध पक्ष
   1.6 साहित्य के इतिहास लेखन की अनेक प्रणालियाँ
   1.7 हिन्दी साहित्य का इतिहास
   1.8 हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा
   1.9 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और इतिहास लेखन
   1.10 हिन्दी के साहित्य इतिहास लेखन की समस्या व रचनाओं और रचनाकारों का समावेश
   1.11 आदिकाल
   1.12 निष्कर्ष
   बोध प्रश्न
2. **काल विभाजन और नामकरण** 11–
   2.1 उद्देश्य
   2.2 प्रस्तावना
   2.3 काल विभाजन और नामकरण की आवश्यकता
   2.4 हिन्दी साहित्य के काल विभाजन की समस्या
   2.5 हिन्दी साहित्य के काल विभाजन के विभिन्न प्रयास
   2.6 हिन्दी साहित्य में प्रचलित काल विभाजन व नामकरण
   बोध प्रश्न
3. **आदिकाल की पृष्ठभूमि** 16–
   3.1 उद्देश्य
   3.2 प्रस्तावना
   3.3 आदिकाल का अर्थ एवं महत्व
   3.4 आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि
   3.5 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
   3.6 राजनीतिक पृष्ठभूमि
   3.7 सामाजिक पृष्ठभूमि
   3.8 आर्थिक क्रियाकलाप
   3.9 धार्मिक स्थिति
   3.10 मिश्रित सांस्कृतिक प्रक्रिया
   3.11 आदि साहित्य का वर्गीकरण
   3.12 आदिकालीन साहित्य के प्रेरक बिन्दु
   बोध प्रश्न
4. **नाथ सिद्ध और जैन साहित्य** 24–
   4.1 उद्देश्य
   4.2 प्रस्तावना

4.3 सिद्ध साहित्य
4.4 नाथ कवि
4.5 जैन कवि
4.6 नाथ परम्परा
4.7 सिद्ध और नाथ में अन्तर
4.8 नाथ पंथ की सांस्कृतिक विशेषता
4.9 नाथ साहित्य
4.10 सिद्धों का परिचय
4.11 सिद्ध साहित्य
4.12 रूढ़िवादी मानसिकता का खण्डन
4.13 सिद्धों के साहित्य में अभिव्यंजना
4.14 जैन साहित्य, जैन साहित्य के प्रकार
बोध प्रश्न

5. रासो काव्य एवं लौकिक साहित्य **36-52**

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 रासो साहित्य की पृष्ठभूमि
5.4 रासो काव्य परम्परा का विकास
5.5 रासो साहित्य की प्रवृत्तियाँ
5.6 लौकिक साहित्य
5.7 संदेश रासक
5.8 गद्य रचनाएँ
5.9 ढोला मारू रा दूहा
5.10 बीसल देव रासो
5.11 उक्ति-व्यक्ति प्रकरण
5.12 वर्ण रत्नाकर
5.13 राइलवेल
5.14 वसन्त विलास
5.15 अमीर खुसरो
5.16 विद्यापति की पदावली
5.17 लौकिक साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

6. भक्तिकाल की पृष्ठभूमि **53-63**

6.1 उद्देश्य
6.2 प्रस्तावना
6.3 सामान्य परिचय
6.4 भक्तिकाल अर्थ एवं स्वरूप
6.5 परिस्थितियाँ अर्थ एवं महत्त्व
6.6 ऐतिहासिक परिस्थितियाँ
6.7 सामाजिक परिस्थितियाँ
6.8 धार्मिक परिस्थितियाँ
6.9 राजनीतिक परिस्थितियाँ

6.10 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ
6.11 साहित्यिक परिस्थितियाँ
6.12 भक्तिकाल में साहित्यिक परिवेश
6.13 भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ
6.14 ईश्वर के प्रति उत्कृष्ट प्रेम
6.15 प्रेमभाव की अभिव्यक्ति
6.16 भक्ति भावना का प्राधान्य
6.17 समानता का भाव
6.18 गुरु महिमा एवं नाम स्मरण
बोध प्रश्न

7. निर्गुण ज्ञानमार्गी संत काव्यधारा 64–7

7.1 उद्देश्य
7.2 प्रस्तावना
7.3 निर्गुण ज्ञानमार्गी संतकाव्य का अर्थ और दृष्टिकोण
7.4 निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि
7.5 निर्गुणज्ञानमार्गी संत काव्य
7.6 प्रमुख संत कवि और उनकी रचनाएँ/योगदान
बोध प्रश्न

8. निर्गुण प्रेममार्गी सूफी काव्य धारा 74–8

8.1 उद्देश्य
8.2 प्रस्तावना
8.3 सूफी का परिचयात्मक अध्ययन
8.4 हिंदी सूफी काव्य परम्परा तथा सूफी मत का वैचारिक आधार
8.5 हिन्दी प्रेम काव्य परम्परा
8.6 सूफी मत और सिद्धान्त
8.7 सूफी काव्य के प्रमुख कवि
8.8 प्रेमाख्यान का स्वरूप
8.9 सूफी काव्य की विशेषताएँ
8.10 मूल्यांकन
बोध प्रश्न

9. कृष्ण भक्ति काव्य 87–10

9.1 उद्देश्य
9.2 प्रस्तावना
9.3 कृष्णकाव्य की पृष्ठभूमि
9.4 युग परिवेश
9.5 कृष्णभक्ति काल और भक्ति आन्दोलन
9.6 भक्ति काल से पूर्व कृष्ण काव्य
9.7 भक्तिकाल का कृष्ण काव्य
9.8 कृष्णभक्ति काव्य के प्रमुख कवि
9.9 कृष्ण भक्ति काव्य की प्रमुख विशेषताएँ
9.10 कृष्ण भक्ति साहित्य पर विभिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव
बोध प्रश्न

10. रीतिकाल की पृष्ठभूमि 105-119
10.1 उद्देश्य
10.2 प्रस्तावना
10.3 रीतिकाल का सामान्य परिचय
10.4 रीतिकाल का प्रवृत्ति के आधार पर वर्गीकरण
10.5 रीतिबद्ध काव्य की प्रमुख विशेषताएँ
10.6 रीतिबद्ध काव्य
10.7 रीतिबद्ध काव्यधारा की विशेषताएँ
10.8 रीतिमुक्त या स्वच्छन्द काव्यधारा
10.9 रीतिमुक्त काव्य की विशेषताएँ
बोध प्रश्न
11. रीतिकाल का परिवेश और आधार 120-134
11.1 उद्देश्य
11.2 प्रस्तावना
11.3 रीति और रीतिकाव्य
11.4 रीतिकाल का नामकरण
11.5 रीतिकाल की सीमा निर्धारण
11.6 रीतिकालीन कविता की पृष्ठभूमि
11.7 दरबारी पृष्ठभूमि
11.8 सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
11.9 सामाजिक पृष्ठभूमि
11.10 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
11.11 चित्रकला
11.12 रीतिकालीन काव्य-भाषा का आधार
11.13 रीतिकालीन काव्य का आधार
11.14 काव्य शास्त्रीय आधार
11.15 रीतिकालीन परिवेश
बोध प्रश्न
12. रीतिकालीन कवि और कविता का स्वरूप 135-158
12.1 उद्देश्य
12.2 प्रस्तावना
12.3 रीतिबद्ध कवि और कविता
12.4 रीतिसिद्ध कवि और कविता
12.5 रीतिमुक्त और कवि और कविता
12.6 श्रृंगारेत्तर काव्य
12.7 वैराग्य तत्व ज्ञान परक काव्य
बोध प्रश्न
13. आधुनिक साहित्य की पृष्ठभूमि 159-174
13.1 उद्देश्य
13.2 प्रस्तावना
13.3 आधुनिक काल की परिभाषा

13.4 आधुनिक काल से पूर्व गद्य की अवस्था
13.5 ब्रजभाषा गद्य
13.6 खड़ी बोली का गद्य
13.7 हिंदी साहित्य के संदर्भ में आधुनिक काल
13.8 प्रेस की स्थापना
13.9 आधुनिक काल की परिस्थितियाँ
13.10 नए उद्योगों की स्थापना
13.11 आधुनिक शिक्षा और बौद्धिक वर्ग
13.12 हिंदी भाषा और गद्य का उदय
13.13 समाज सुधार और स्त्री-स्वातत्र्य
13.14 स्त्री शिक्षा का अभियान
बोध प्रश्न

14. भारतेन्दु युग 175–1

14.1 उद्देश्य
14.2 प्रस्तावना
14.3 नवजागरण तथा आधुनिक बोध
14.4 साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली के उपयोग का आरम्भ एवं विकास
14.5 खड़ी बोली और साहित्यिक भाषा के रूप में उसका विकास
14.6 भारतेन्दु युग
14.7 भारतेन्दु युग के साहित्यकार
14.8 भारतेन्दु युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ
14.9 काव्य कृतियाँ-नाटक, उपन्यास, इतिहास और पुरातत्व सम्बन्धी, यात्रा वृतान्त, जीवनी
14.10 भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता और साहित्य
14.11 भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य
14.12 नाटक, निबन्ध साहित्य, उपन्यास साहित्य
14.13 अन्य गद्य विधाएँ
14.14 भारतेन्दु युगीन कविता
बोध प्रश्न

15. द्विवेदी युग 197–21

15.1 उद्देश्य
15.2 प्रस्तावना
15.3 द्विवेदी युग : हिंदी जागरण और सरस्वती
15.4 द्विवेदीयुगीन गद्य साहित्य
15.5 द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ
15.6 द्विवेदीयुगीन कविता के आधार बिंदू
15.7 स्वाधीनता आन्दोलन और द्विवेदी युग का मूल चरित्र
15.8 ब्रजभाषा की कविता
15.9 खड़ी बोली की कविता
बोध प्रश्न

इकाई (Unit)

1

हिन्दी साहित्य के इतिहास की भूमिका और आदिकाल

संरचना

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 इतिहास दर्शन का अर्थ
1.4 साहित्य इतिहास दर्शन
1.5 हिन्दी साहित्य लेखन के विभिन्न पक्ष
1.6 साहित्य के इतिहास लेखन की अनेक प्रणालियाँ
1.7 हिन्दी साहित्य का इतिहास
1.8 हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा
1.9 कृतियाँ
1.10 हिन्दी के साहित्य इतिहास लेखन की समस्या व रचनाओं और रचनाकारों का समावेश
1.11 आदिकाल
1.12 निष्कर्ष
बोध प्रश्न

'इतिहास' संस्कृत भाषा के तीन शब्दों से मिलकर बना है अर्थात 'इति' 'ह' और 'आस'। इति का अर्थ होता है 'ऐसी ही' ह का अर्थ होता है 'निश्चित रूप से' और आस का अर्थ होता है 'था' इस प्रकार 'इतिहास' का शाब्दिक अर्थ हुआ—जो निश्चित रूप से ऐसा ही हुआ था। अर्थात जो घटनाएँ भूतकाल में घटित हुई हैं जो निश्चित तथा सत्य हैं वे इतिहास की सामग्री है और उन्ही के क्रमबद्ध तथा विवेचनात्मक वर्णन को 'इतिहास' कहा जाता है।

इतिहास शब्द की दूसरे प्रकार से भी व्याख्या की जा सकती हैं इस व्याख्या के अनुसार 'इतिहास' दो शब्दों से मिल कर बना है अर्थात 'इतिह' तथा 'आस'। 'इतिह' अव्यय शब्द है और जिसका अर्थ होता है परम्परा के अनुकूल आस का अर्थ होता है। इस प्रकार इतिहास का अर्थ हुआ—जो परम्परा के अनूकूल था अर्थात भूतकाल की वे घटनाऐं जो परम्परा के अनुकूल हो और जिनका क्रमबद्ध विवेचना किया जाए इतिहास है।

विद्वानों ने इतिहास के व्यापक स्वरूप की विवेचेना की हैं। विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

हीगल ने लिखा है—इतिहास केवल घटनाओं का अन्वेषण तथा संकलन पात्र नहीं, अपितु उसके भीतर *कार्य-कारण संबन्ध विद्यमान है।*

गणपतिचन्द्र गुप्त के अनुसार—"अतीत के किसी भी तथ्य, तत्व या प्रवत्ति के वर्णन, विवरण, विवेचन, विश्लेषण को, जो कि काल विशेष या कालक्रम की दृष्टि से किया गया हो, इतिहास कहलाता है।"

कालिंगवुड ने कहा है—"इतिहास धर्मशास्त्र या भूत विज्ञान की तरह एक चिन्तन पद्धति है। यह एक प्रकार का शोध है, खोज, अन्वेषण है।"

गोविन्दचन्द पाण्डे के अनुसार—'इतिहास एक ऐसा ज्ञानमय अनुशासन हैं जिसके माध्यम से किसी देश की सभ्यता और संस्कृति को देखा, परखा, समझा जाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इतिहास न केवल हमें घटना, तिथि और नामों का विवरण देता है वल्कि इसमें घटना, स्थिति, प्रक्रिया और प्रकृति का सम्पूर्ण अनुशीलन किया जाता है। मानव की समस्त क्रिया तथा प्रतिक्रिया आदि का समावेश इतिहास में किया जाता है। हमारे सारें संस्कार व्यवहार, संस्कृति सब को हम इतिहास की आँखों से देख सकते हैं बिना अतीत को जाने वर्तमान स्वरूप को नहीं समझा जा सकता हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में अनेक घटनाएं घटती रहती है। घटनाओं का इतिहास बनता जाता है और वही इतिहास हमें अतीत से जोड़कर रखता हैं इस प्रकार मनुष्य इतिहास—दर्शन और इतिहास-विवेक के नये गवाक्षों को खोलता हैं इतिहास हमें नयी व्याख्या, **नयी प्रेरणा और नयी दृष्टि देता है वह हमारे भावी जीवन का निर्माता होता है।**

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार—उन्होंने (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी) ने हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है कि आज साहित्य का अध्ययन विश्लेषण केवल साहित्य तक सीमित रहकर नहीं किया जा सकता उसकी विषयगत प्रवृतियाँ और शैलीगत प्रक्रियाओं के स्पष्टेकरण के लिए उसे संबन्धित राष्ट्रीय परम्पराओं सामाजिक वातावरण, आर्थिक परिस्थितियों, युगीन—चेतना एवं साहित्यकार की वैयक्तिक प्रवत्तियों का विश्लेषण विवेचन करना पड़ता है।"

डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के अनुसार—"साहित्येतिहास दर्शन सामान्य इतिहास दर्शन के समानान्तर होता है। उनके अनुसार साहित्य के इतिहास लेखक को उस सामाजिक सन्दर्भ को ध्यान रखना चाहिए जिसमें वह साहित्य प्रादुर्भूत हुआ है।" इस संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा रचित हिन्दी साहित्य का इतिहास उल्लेखनीय है।

ए०एच०काफे के अनुसार—"साहित्येतिहास दर्शन के लिए युग-चेतना नामक सिद्धांत दिया है जिसके अनुसार साहित्य के इतिहास की व्याख्या तद्युगीन चेतना के आधार पर की जानी चाहिए। लेकिन इसके साथ ही पूर्ववर्ती परम्पराओं का भी कुछ-न-कुछ प्रभाव होता है।

तेन के अनुसार तेन ने अपने अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में यह भली-भाँति स्पष्ट किया है कि किसी भी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए उससे संबंधित जातीय परम्पराओं राष्ट्रीय और सामाजिक वातावरण एवं सामाजिक परिथतियों का अध्ययन विश्लेषण आवश्यक हैं इसके लिए उसने जाति, वातावरण एवं क्षण विशेष के तीन तत्वों का उल्लेख किया है।"

डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त का मत है—अतीत के किसी भी विवरण को इतिहास की संज्ञा दी जा सकती है। डॉ० नागेन्द्र द्वारा सम्पादित हिन्दी साहित्य के इतिहास में इतिहास के व्यापक अर्थों को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है। कि—वस्तुत: आज इतिहास शब्द को इतने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है कि उसके अन्तर्गत अतीत की प्रत्येक स्थिति, परिस्थिति घटना, प्रक्रिया एवं प्रवृत्ति को—जोकि काल-विशेष का काल क्रम की दृष्टि से किया गया हो इतिहास कहा जा सकता है। लाक्षणिक अर्थ में इतिहास का प्रयोग अतीत की घटनाओं के विवरण के स्थान पर स्वयं अतीतकालीन घटनाओं और व्यक्तियों के लिए भी हो सकता है। जैसे सम्राट अशोक भारत के इतिहास निर्माता थे। अथवा महात्मा गांधी ने भारत के नए इतिहास का निर्माण किया आदि किन्तु शास्त्रीय या वैज्ञानिक विवेचना में लाक्षणिक प्रयोग अग्राह या त्याज्य ही समझे जा सकते हैं।

अत: भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों ही विद्वानों ने इतिहास का संबंध अतीतकालीन यथार्थ घटनाओं से माना है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इतिहास वह सामाजिक शास्त्र है। जो हमें भूतकाल के राजनीतिक

सामाजिक, आर्थिक धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन से परिचित कराता है। इसे विभिन्न भागों में विभक्त किया जा सकता हैं जैसे—राजनीतिक इतिहास, सांस्कृतिक इतिहास, साहित्यक इतिहास आदि।

1.1. उद्देश्य

हिन्दी साहित्य के इतिहास पाठयक्रम के प्रथम खण्ड की यह पहली इकाई हैं इस इकाई में हिन्दी साहित्य के इतिहास के लेखन पर प्रकाश डाला गया है। और हिन्दी साहित्य के इतिहास के लेखन पर विचार किया गया है। इसे पढ़ने के बाद आप—

इतिहास और हिन्दी साहित्य के इतिहास का स्वरूप स्पष्ट कर सकेंगे।

साहित्य के इतिहास लेखन के विभिन्न पक्षों को रेखांकित कर सकेंगें।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की विभिन्न पद्धतियों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

हिन्दी हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा पर प्रकाश डाल सकेंगे।

हिन्दी हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की विभिन्न समस्याओं को समझा सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

साहित्य नदी के प्रवाह की तरह होता है जो निरन्तर आगे बढता हैं उसमें न कोई रूकावट आती हैं; ओर न ही कोई उसे भंग करता है। हाँ समय के साथ-साथ उसमें परिवर्तन आते रहते हैं और परिवर्तन के अुनरूप साहित्य को नयी प्रवृत्तियाँ, नयी दिशाएँ मिलती हैं।

किसी भी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन करने की सर्वाधिक उपयुक्त प्रणाली उस साहित्य में प्रवाहित साहित्य धाराओं, विविध प्रवृतियों के आधार पर उसे विभाजित करना हैं। युग की परिस्थितियों के अनुकूल साहित्य की विषय तथा शैलीगत प्रवृतियाँ परिवर्तित होती रहती है। हिन्दी साहित्य के विषय में भी यही बात युक्तियुक्त प्रतीत होती है। एक विशेष काल में समाज की विशेष परिस्थितियाँ एवं तत्सम्बन्धी विचारधाराएँ रही है और उन्हीं के अनुरूप साहित्यिक रचनाएँ प्रस्तुत हुई है। अपवाद रहे अवश्य परन्तु गौण प्रवृत्ति के रूप में काल-विभाजन करते समय स्वयं आचार्य शुक्लजी ने विभाजन के आधार के सम्बन्ध में अपना मत स्पष्ट कर दिया हैं उन्होंने कहा है—"जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चितवृत्ति का संचित प्रतिबन्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्ही चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।"

1.3 इतिहास-दर्शन का अर्थ

दर्शन का शाब्दिक अर्थ है—देखना। **दृश्यतेऽतेन** इति **दर्शनम्** अर्थात जिसके द्वारा दर्शन करना संभव हो। साहित्य में इस शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है—

1. जीवन-दृष्टि

2. जीवन जगत के पारामार्थिक स्वरूप तथा मानव जीवन के चरम लक्ष्य का चिन्तन मनन और साक्षात्कार।

इतिहास दर्शन का अभिप्राय है—इतिहास से संबंधित विभिन्न धारणाओं एवं मान्यताओं का अध्ययन करना। डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित हिन्दी साहित्य के इतिहास में कहा गया है कि—इतिहास दर्शन इस दृष्टि गोणों, विचारों व अध्ययन पद्धतियों के समूह का सूचक हैं जिनका उपयोग इतिहास में संभव है।

भारतीय दृष्टि कोण प्रारम्भ से ही आदर्शवादी तथा अध्यात्मक परक रहा है। इतिहास के प्रति भारतवासियों का यही दृष्टिकोण दिखाई पड़ता हैं प्राचीन इतिहासकारों ने निरन्तर मूल्यों को अधिक महत्व देते हुए रचनाओं में चारित्रिक मूल्यों नैतिक उपदेशों तथा आध्यात्मिक रूपों का उद्‌बोधन किया है जबकि परवर्त इतिहासकारों की रचनाएँ शुद्ध इतिहास की अपेक्षा काव्यात्मक इतिहास का ऐतिहासिक काव्य के रूप में विकसित हुई।

1.4 साहित्य-इतिहास-दर्शन

सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ एवं मूल में उसका इतिहास छिपा हुआ है। तात्पर्य है कि प्रत्येक वस्तु अथवा पदार्थ का शनैः शनैः विकास होता हैं। साहित्य के संबन्ध में भी यही तथ्य दृष्टिगत होता है प्रत्येक भाषा के साहित्य के लिए उसके इतिहास का महत्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इतिहास के माध्यम से ही साहित्य का वास्तविक क्रमिक विकास स्पष्ट हो पाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है—"जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की निजवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की निजवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चलता है आदि से अन्त तक इन्हीं (जनता की) निजवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सांमजस्य दिखाना-ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।"

साहित्य के इतिहास में साहित्य की विकासमान परम्परा उसके उद्‌भव से आज तक की स्थिति का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास संबंधी दृष्टि कोण का उल्लेख उपयोगी होगा जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्रवशति का संचित प्रतिबिंध होता है। तब यह निश्चय है कि जनता का चित्रवशति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला गया है। आदि से अन्त इन्ही चित्रवृत्तियों की परंम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उसका सामंजस्य दिखाना साहित्य का इतिहास कहलाता है। साहित्य का इतिहास अतीत में लिख गये साहित्य का साहित्यकार का ब्यौरा मात्र नहीं है जिस प्रकार आज इतिहास राजाओं के जीवन चरित्र एवं राजनीतिक घटनाओं का संकलन मात्र नहीं है। उसी प्रकार साहित्य का इतिहास मात्र रचनाओं और रचियताओं का परिचय ग्रंथ नहीं है। किसी भी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए उससे संबधित जातीय परंपराओं का विवेचन-विश्लेशण जरूरी हैं। इसका कारण यह है कि किसी भी देश का साहित्य उस देश के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक वातावरण को प्रतिबिंबित करता है। साहित्य की प्रवृतियों समाज की प्रवृतियों का प्रतिबिम्ब होती है। साहित्य का इतिहास व्यक्ति विशेष की उपलब्धियों के साथ-साथ इन प्रवृत्तियों का भी विश्लेषण करता है।

साहित्य इतिहास क्या है। कैसा होना चाहिए, इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत प्रस्तुत है। साहित्य का इतिहास ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के उद्‌भव और विलय की कहानी नहीं है। वह कालस्रोत में बहते हुए जीवंत समाज की विकास कथा है। ग्रंथकार और ग्रथ उस प्राणधारा की ओर सिर्फ इशारा करते हैं। वे ही मुख्य नहीं है। मुख्य है वह प्राण धारा जो नाना परिस्थितियों से गुजरती हुई आज हमारे अपने आपको प्रकाशित कर रही है। साहित्य के इतिहास में हम अपने आपको प्रकाशित कर रही है। साहित्य के इतिहास में हम अपने आपको चढ़ने का सूत्र पाते हैं।

साहित्य का इतिहास केवल रूप और वस्तु का इतिहास नहीं वह रचना में व्यक्त रचनाकार की सृजनशील चेतना भी इतिहास होता है। साहित्येतिहास में विचार प्रक्रिया जिसमें प्रत्येक परिवर्तन की व्याख्या है। किसी भी साहित्येतिहास को समग्रता में प्रस्तुत करने में सक्षम होती है। समग्र साहित्य के इतिहास में एक ओर जनता की चित्रवशक्ति परखा, नये पुराने के संघर्ष का मूल्यांकन होता है। तो दूसरी ओर रचना और रचनाकार की सृजनात्मक क्षमता को भी वर्तमान की कसौटी पर परखा जाता है इस प्रकार साहित्य के इतिहास में समाज की विकास कथा तो होती ही है, साथ ही साथ इसमें कला पक्ष का मूल्यांकन भी होता है। वह मानव चिंताधारा के

विकास क्रम को निरूपित करने के साथ-साथ अभिव्यंजना शिल्प के क्रमिक विकास को भी दर्शाता है। उसमें युग विशेष के व्यकित्व का उद्‌घाटन होता है उसमें जहां एक ओर जातीय जीवन की प्रामाणिक झांकी देखने को मिलती, वहां दूसरी ओर साहित्यिक मूल्यों का मूल्यांकन भी होता है। यह एक मिली जुली विधा है। जिसमें शोध, इतिहास, समीक्षा सबके तत्व सम्मिलित होते हैं।

1.5 हिन्दी साहित्य लेखन के विविध पक्ष

साहित्य का इतिहास लिखते समय इतिहासकार को कई चरणों से गुजरना पड़ता है। पहले वह स्रोत सामग्री का संकलन करता है। परम्परा के वैज्ञानिक अनुशीलन के लिए वह काल विभाजन और नामकरण की समस्या पर विचार करता है। इसके लिए वह विभिन्न प्रवृतियों की खोज और विश्लेषण करता है। इसके बाद वह युग विशेष और प्रवृति के अंत: संबंध का विश्लेषण करता हुआ वर्तमान संदर्भ में उनका मूल्यांकन भी करता है। इस प्रयास में कई प्रयत्न करने पड़ते है। वह इतिहास लिखते समय विभिन्न चरणों से गुजरता है जैसे—

1.5.1 सामग्री संकलन—सामग्री संकलन इतिहास लेखन की पूर्वपीठिका के रूप में कार्य करता है। इतिहासकार के सामने तथ्य जुटाने के साथ-साथ तथ्यों के चुनाव की भी समस्या रहती है। तथ्यों की खोज क्रम में वह पुराने साहित्यक और साहित्यकार संबंधी अनुसंधानों कश्तियों के प्रमाणिक और सुसंगठित संस्करणों, आकार ग्रन्थ सूची, उपलब्ध पत्र पत्रिकाओं की फाइलो शिष्ट और लोक साहित्य की समुचित विवरणी और सामाजिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों के प्रमाणिक इतिहास ग्रन्थों से गुजरता हैं। इस आधारभूत सामग्री के अभाव में ऐतिहासिक बोध के बावजूद इतिहास त्रुटिपूर्ण हो सकता है। अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण सामग्री के आधार पर निर्दोष इतिहास लेखन सम्भव नहीं है।

1.5.2 काल विभाजन और नामकरण—सामग्री संकलन के बाद इतिहासकार पूरे इतिहास को विभिन्न कालों और युगों में विभाजित करता है। काल का प्रवाह अविच्छिन है और भूत, वर्तमान तथा भविष्य परस्पर एक दूसरे में अनुस्युत रहते हैं। पर अध्धयन की सुविधा के लिए काल विभाजन और नामकरण आवश्यक होता है। काल प्रवाह विभाजन और नामकरण आवश्यक होता है। कालप्रवाह अविच्छिन होता है तथा यह परिवर्तनशील भी होता है। इसलिए साहित्य इतिहास में ही नही अन्य प्रकार के इतिहासों में भी युग विभाजन को अनिवार्य माना जाता है। काल विभाजन का उद्देश्य अन्तत: इतिहास की विभिन्न परिस्थितियों के संदर्भ में उसकी घटनाओं एवं प्रवृत्तियों के विकास क्रम को स्पष्ट करना होता है। तथा साहित्य इतिहास पर भी यह बात लागू होती है। आचार्य नलिन विलोचन शर्मा के अनुसार "यदि हम मानते हैं कि मनुष्य के राजनीतिक, सामाजिक, बौद्धिक या भाषा—वैज्ञानिक विकास से संयुक्त रहते हुए साहित्य का स्वतंत्र विकास होता है और दूसरा पहले का निश्क्रिय प्रतिबिम्ब नहीं तो हम अनिवार्यत: इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साहित्यक युग विशुद्ध साहत्यिक मानदंड के सहारे निर्धारित होने चाहिए। अत: काल विभाजन और नामकरण यथासाध्य साहित्यक आधार पर किया जाना चाहिए।

1.5.3 मूल्यांकन—इतिहास मूलत: मूल्यांकन परक होता है। विचार करने वाली बात यह है कि अतीत की रचनाओं का मूल्यांकन अतीत के आधार पर ? वस्तुत: इतिहास में रचना के अतीत और वर्तमान को एक दूसरे से अलग करके नही रखा जा सकता है। जहाँ—एक तरफ रचना के अतीत के मीमांसा गलत इतिहास दृष्टि नहीं है वही उसे केवल वर्तमान के आलोक में रख कर देखना भी सही दृष्टि नहीं है। दरअसल रचना के अतीत और उसकी आज के संदर्भ में सार्थकता दोनों पक्षों पर विचार करना चाहिए। वस्तुत: मूल्यांकन का आधार इतिहासकार को अपने युग से प्राप्त होता है। अत: उसके लिए अतीत के सम्यक ज्ञान के साथ-साथ वर्तमान का सही बोध भी आवश्यक है।

1.6 साहित्य के इतिहास लेखन की अनेक प्रणालियाँ

साहित्य के इतिहास की अनेक प्रणालियाँ समय पर अपनाई गयी कभी वर्णमाला को आधार बनाया ग तो कभी कालानुक्रम को आधार बनाया गया किसी ने विधेयवादी पद्धति अपनाई तो किसी ने वैज्ञानिक प्रणार का सहारा लिया इसका कारण यह है इतिहास लेखन का कोई बना बनाया फार्मूला संभव नहीं है। सर्वाधि आवश्यक बात यह है। कि इतिहासकार में सही ऐतिहासिक बोध अंतदृष्टि और विवेक का होना आवश्यक है इसी स्थिति में सही और व्यवस्थित इतिहास लेखन संभव हो सकता है।

1.6.1 वैज्ञानिक प्रणाली—यह प्रणाली मुख्यत: शोध पर आधारित हैं इसमें शोध द्वारा तथ्यों व वैज्ञानिक और क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुत भर कर दिया जाता है। इसमें इतिहासकार निरपेक्ष बने रहने का प्रयत्न करता है। पर तथ्यों का संकलन इतिहास नहीं है। इतिहास तथ्य और व्याख्या का मिला जुला रूप है। डॉ नामवर सिंह के अनुसार मानव इतिहास की प्रवहमंण धारा में धारा और किनारा सब कुछ मनुष्य है। तटस्थ कोई नहीं जो विरोधी धाराओं के संघर्ष से घबराकर निश्पक्षता में विश्राम करना चाहता है। यद्यपि इन विद्वानों के तथ्य संग्रह नये इतिहास के लिए उपयोगी हो सकते हैं। फिर भी आज ऐसे नकारात्मक दृष्टिकोण से काम नह चल सकता।

1.6.2 विधेयवादी प्रणाली—विधेयवाद अंग्रेजी के पाजिटिविज्म का शब्दानुवाद है। इस प्रणाली असंबद्ध तथ्य एकत्रित किये जाते हैं तथा इसके अनुसार साहित्य की व्याख्या भौतिक विज्ञान की प्रणालियाँ क कार्य कारण और मीमांसा के आधार पर करनी चाहिए। इस प्रणाली के जन्म दाता तौर्य ने इस प्रणाली का जाति वातावरण और क्षण इन तीन शब्दों में सूत्रबद्ध किया है। किसी भी साहित्य के इतिहास को समझने के लि उससे संबधित जातीय परंपराओं राष्ट्रीय और सामाजिक वातावरण एवं सामाजिक परिस्थितियों का अवलोक विश्लेषण आवश्यक है। विधेयवादी इतिहासकार साहित्य संबंधी आंकड़े एकत्र करने के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक जीवन का अध्ययन करता है तथा समाज और साहित्य में कार्य कारण संबंध स्थापित करता है साहित्य निर्माण में परम्परा का भी योगदान होता है। विधेयवादी प्रणाली परम्परा का मूल्यांकन नहीं कर पाती है इसलिए विधेयवादी पद्धति से सामाजिक परिस्थितियों और साहित्य में संबंध स्थापित करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि साहित्य का कितना अंश सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित हैं और कितना अंश **परम्परा से प्रेरित** है।

1.6.3 वर्णानुक्रमी प्रणाली—वर्णानुक्रमी प्रणाली इतिहास लेखन की सबसे अविकसित और भोड़ी प्रणाली है। इसमें कृतिकारों का परिचय वर्णमाना के अक्षरक्रम से दिया जाता है। गार्सा-द तासी और शिव सिंह सेंगर ने इसी पद्धति को अपनाया है। इस प्रकार का इतिहास लिखने का मुख्य कारण है। अपेक्षित सूचनाओं क अभाव। वे अनेक कवियों और रचनाकारों के समय के बारे में निशिचित नहीं थे। अत: वे कालक्रम के अनुसार कृतिकारों को प्रस्तुत करने का प्रयास न कर सके। गार्सा—द—तासी ने अपनी पुस्तक में यह बात स्वीकार भ की है। बाद में जैसे-जैसे तथ्य सामने आते गये कवियों के संबंध में जानकारी बढी और उनके काल का निश्चित होता गया उसी तरह वैसे वैसे यह प्रणाली समाप्त होती गयी आज इस **प्रणाली का उपयोग** कोई इतिहास नहीं करता है।

1.6.4 कालानुक्रमी प्रणाली—इस प्रणाली का उल्लेख इतिहास में रचनाकारों ने उनके नामों के प्रथम अक्षर या महत्व के आधार पर न कर ऐतिहासिक तिथि क्रम के आधार पर किया जाता है। इससे सबसे पहली समस्या तो जन्म और रचना को लेकर शुरू हो जाती है। ऐतिहासिक कालक्रम का निर्धारण करते समय रचनाकार की जन्मतिथि को आधार बनाया जाए या उसकी रचना तिथि को ही आधार बनाना अधिक उपयुक्त होगा। साहित्य इतिहास का उद्देश्य कुछ प्रमुख रचनाकारों और उसके कशतित्व का परिचय प्रदान करना नही है। बल्कि उस व्यापक पृष्ठभूमि का आभास करना हैं जिसमें साहित्य रचा गया हैं। जब तक युग की पृष्ठभूमि की जानकारी नहीं होगी। तब तक कवि विशेष या उसकी रचना का मूल्यांकन संभव नहीं होगा। साहित्य के

इतिहास का उद्देश्य रचनाकारों के जन्म मृत्यु और उसकी रचनाओं के गुण दोषों से परिचित करना ही नही हैं बल्कि मानव चिन्ताधार के विकास क्रम का दस्तावेज भी है। संग्रहमूलक प्रणाली, चाहे वह ऐतिहासिक तिथिक्रम से ही क्यों न नियोजित हो, साहित्य के इतिहास के इस व्यापक उद्देश्य की पूर्ति से समर्थ हो सकती है। अत: यह प्रणाली भी साहित्य इतिहास लेखन के लिए विशेष उपयोगी नहीं है।

1.7 हिन्दी-साहित्य का इतिहास

साहित्य इतिहास की व्याख्या करते हुए विभिन्न विद्वानों ने अपने मत निर्धारित किए हैं। परन्तु उनके आधार पर किसी भी निश्चित स्पष्ट एवं समन्वित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता। इस सन्दर्भ में डॉ० गण्पतिचन्द्र गुप्त का मत उल्लेखनीय है—"आज साहित्य का अध्ययन विशेषण केवल साहित्य तक सीमित रहकर नहीं किया जा सकता, उसकी विषयगत प्रवृत्तियों का विवेचन विश्लेषण आवश्यक है।"

डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित इतिहास में साहित्य की विकास प्रक्रिया के अध्ययन के लिए उससे संबंधित पाँच तत्वों पर प्रकाश डाला गया है।

(1) सर्जन शक्ति साहित्य की प्रतिज्ञा और उसका व्यक्तित्व

(2) परम्परा साहित्यिक व सांस्कृतिक परम्पराएँ

(3) वातावरण युगीन परिस्थितियों प्रवृतियों एवं चेतना

(4) द्वन्द्व

(5) सन्तुलन

हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करने के लिए उपयुक्त पाचों तत्वों को ध्यान में रखना आवश्यक है। साहित्य का मूलाधार साहित्यकार की सर्जन शक्ति होती है। साहित्यक व सांस्कृतिक परम्पराएं युगीन परिस्थितियों, प्रवृतियों चेतना और वातावरण इसमें सहायक सिद्ध होते हैं। द्वन्द्ध इन सब को गति प्रदान करता है। द्वन्द्ध ही साहित्यकार की मूल प्रेरणा है। स्थिति और प्रेरणा के आधार पर इसमें परिवर्तन होता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि साहित्य के इतिहास का अध्ययन उपर्युक्त पांचों तत्वों के आधार पर किया जाना चाहिए।

1.8 हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा

हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन 19 वीं सदी से आरम्भ हुआ है यद्यपि इसके पूर्व अनेक लेखकों ने ऐसे ग्रन्थों की रचना की थी जिसमें हिन्दी के विभिन्न रचनाकारों के जीवनवृत कृत्तिव का परिचय दिया गया था पर इन्हें इतिहास की संज्ञा नही दी जा सकती है। इसमें काल क्रम सन-संवत का भी अभाव है। मूल्यांकन का तत्व तो इन ग्रन्थों में दूर दूर दृष्टिगोचर नहीं होता है। दो से वावन वैश्य वन भी वार्ता चौरसी वैश्णवन की वार्ता भक्त भल कतिमाला कालिदास—हजार ऐसे ही ग्रन्थ हैं।

1.9 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और इतिहास लेखन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते समय जहाँ युगीन परिस्थितियों पर बल दिया, आचार्य हजारी प्रासाद द्विवेदी ने परम्परा को इतिहासलेखन का आधार बनाया उन्होने रामचन्द्र शुक्ल के युग रूचि वादी दृष्टिकोण के समानान्तर अपने परम्परापरक दृष्टिकोण को स्थापित करके हिन्दी साहित्य के अध्येताओं के लिए व्यापक और संतुलित इतिहास दर्शन की भूमिका तैयार की। दरअसल परम्परा और युगीन परिस्थितियों के सम्यक मूल्यांकन से संतुलित इतिहास का निर्माण हो सकता है अत: यह कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी के मत एक दूसरे के पूरक हैं।

1.10 हिन्दी के साहित्य इतिहास लेखन की समस्या व रचनाओं और रचनाकारो का समावेश

हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते समय इतिहासकार को हिन्दी शब्द की व्यापकता हिन्दी साहित्य के इतिहास, गौण रचनाकारों के योगदान और कालविभाजन और नामकरण जैसी समस्याओं से भी जूझना पड़ता है। जहाँ तक हिन्दी शब्द का प्रश्न है उसके बारे में यह उचित प्रतीत होता है कि हिन्दी के अंतर्गत राजस्थान से बिहार तक की उन सभी बोलियो का उपभाषाओं में शामिल करना चाहिए जिनमें मूल शब्द भंडार संस्कृति साहित्यिक आदर्श, लिपि और एक सीमा तक व्याकरण की समानता है। गौण रचनाओं को शामिल किए जाने के संबंध में यह मत उचित प्रतीत होता है कि विभिन्न युगों की प्रवशति को परखने के लिए केवल प्रमुख साहित्यकारों पर ही नही गौण रचनाकारों पर भी ध्यान देना जरूरी है। इसके साथ ही साथ लोक साहित्य को भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में शामिल किया जाना चाहिए।

हिन्दी साहित्य लिखते समय इतिहासकार के सामने यह सबसे पहला सवाल उठ खड़ा होता है। कि इसमें किस प्रकार के साहित्य का मूल्यांकन किया जाना चाहिए कुछ विद्वान रसात्मक और ललित साहित्य का ही विवेचन करना चाहते हैं तो कुछ विद्वान ज्ञानात्मक साहित्य जैसे आयुर्वेद ज्योतिष इतिहास, भूगोल राजनीतिशास्त्र की भी चर्चा करने के पक्ष में हैं।

साहित्य के इतिहास में रसात्मक साहित्य के अतिरिक्त ज्ञान के साहित्य का समावेश किया जाए या नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि साहित्य के इतिहास लेखन का प्रयोजन क्या है वस्तुत: साहित्य के इतिहास को निरूपित करने के क्रम में दोनो प्रकार के साहित्य की सहायता ली जानी ही चाहिए निश्चित रूप से उसमें प्रधानता ललित साहित्य की होगी पर इसके अतिरिक्त उन कशतियों को भी स्थान दिया जाना चाहिए जो अतिभव्यक्ति के वैशिश्वय और भाषा शैली के विकास के निरूपण में सहायक सिद्ध हो सकें। आदिकाल की नाथपंथी रचनाएँ या मध्ययुगीन वार्ता ग्रन्थ शुद्ध साहित्य के इतिहास में इनका उल्लेख किया जाता है। क्योकि इनके माध्यम से भाषा के विकास की अवस्थाएँ प्रकट होती हैं। अत: भाषा साहित्य के विकास को निरूपित करने वाले सभी साहित्य ग्रन्थों की सहायता इतिहास लेखन क्रम में लेनी चाहिए।

1.11 आदिकाल:

हिन्दी साहित्य के आरम्भ के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। इस मतभेद का कारण अपभ्रंश भाषा को हिन्दी में स्वीकार या बहिष्कार करने से जुडा है। अपभ्रंश हिन्दी से पूर्व प्रचलित भाषा थी। उनमें कौन से परिवर्तन किस बिन्दु पर शुरू हुए जिससे धीरे धीरे हिन्दी भाषा का स्वतंत्र विकास हुआ इस प्रश्न का सीधा और स्पष्ट उत्तर नहीं दिया जा सकता। भाषा प्रयोग से भाषा का विकास होता है। भाषा प्रवाहिनी नदी के समान गतिशील है। भाषा की प्रवाह की प्रक्रिया में भाषा परिवर्तन को समझने में कठिनाई होती है। वस्तुत: अपभ्रंश जब साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। अपभ्रंश की जनभाषा से दूर हट गयी थी। अपभ्रंश की जनभाषा से हिन्दी का विकास होता है चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने इसे ही पुरानी हिन्दी कहा है। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि उभर अपभ्रंश ही पुरानी हिन्दी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के आरम्भ 993 ई० से मानते हैं जब अपभ्रंश भाषा घिस-घिस कर एक नई भाषा को विकसित करने में सक्षम हो रही थी। लेकिन हिन्दी के आरम्भिक रूप का पता उन्हें बौद्ध तांत्रिकों की रचना से मिलता है। उन्होंने लिखा है "अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिक और योगमार्गी बौद्धों की सांप्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवी शताब्दी के अन्तिम चरण में लगता हैं मुंज और भोज के समय (संवत् 1050) के लगभग तो ऐसी अपभ्रंश या पुरानी भाषा का पूरा प्रचार शुद्ध साहित्य और काव्य रचनाओं में पाया जाता है। अत: हिन्दी साहित्य का आदिकाल संवत् 1050 से लेकर संवत् 1375 तक अर्थात् महाराज भोज के समय से लेकर हम्मीर देव के समय के कुछ पीछे तक जा सकतो है।

1.12 निष्कर्ष

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि समग्र इतिहास जो चार कालों (आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल) में विभाजित हैं तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों की स्पष्ट झाँकी प्रस्तुत करना है वह जनता की चित्वृत्ति का संचित प्रतिविल्ब तो होता ही है, साथ ही साथ आदि से अन्त तक इन्हीं चितवृत्तियों की परम्परा के साथ सामांजस्य भी प्रस्तुत करता है। जैसे आदि काल जनता की युद्ध प्रियता एवं वीरता का द्योतक हैं तो शक्तिकाल निराक्ष जनता के हृदय में प्रादुर्जूत शक्ति भावना की ओर संकेत करता है। इसी प्रकार रीतिकाल श्रृंगारिकता तथा विलासिता को बताते हैं तो आधुनिक काल विविधता का सूचक है। इन सब में साहित्यकार की सृजन शक्ति का महत्वपूर्ण स्थान हैं कवि और समय एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

संदर्भित ग्रन्थ

हिन्दी का गद्य साहित्य	—	रामचन्द्र तिवारी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का अतीत भाग 1	—	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	—	राम कुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य की भूमिका	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
साहित्येतिहास : संरचना और "वरूप	—	सुमन राजे
साहित्येतिहास आदिकाल	—	सुमन राजे
हिन्दी साहित्य का आदिकाल	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	डॉ० नगेन्द्र
हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास	—	रामस्वरूप चतुर्वेदी
हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन	—	विद्यानिवास मिश्र
भारतीय साहित्यशास्त्र	—	गणेश त्रयम्बक देशपाण्डे
हिन्दी पुस्तक साहित्य	—	माताप्रसाद गुप्त
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	किशोरीलाल
हिन्दी साहित्य का रेखांकन	—	किशोरीलाल

बोध प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास दर्शन से आप क्या समझते हैं। स्पष्ट करते हुए हिन्दी साहित्यलेखन के विविध पक्षों का उल्लेख कीजिए।
2. इतिहास दर्शन का अर्थ बताते हुए हिन्दी साहित्य लेखन के विभिन्न पक्षों का उल्लेख कीजिए।
3. हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की विभिन्न प्रणालियाँ बताइए।
4. हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा और साहित्येतिहास लेखन की समस्या का वर्णन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. "इतिहास धर्मशास्त्र या भूत विज्ञान की तरह एक चिंतन पद्धति हैं। यह एक प्रकार का शोध है, खं अन्वेषण है।" इस पर अपनी टिप्पणी लिखिए।
2. 'इतिहास मूलत: मूल्यांकन परक होता है।' इस पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
3. इतिहास की वर्णानुक्रमी प्रणाली क्या है?
4. हिन्दी साहित्य के आरम्भ के विषय में विविध विद्वानों में क्या मतभेद हैं?

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. इतिहास शब्द की उत्पत्ति किस प्रकार हुई है?
2. गोविन्दचन्द पाण्डे ने इतिहास की क्या परिभाषा की है?
3. डॉ० गणपतिचन्द गुप्त का इतिहास के विषय में क्या मत है?
4. साहित्य इतिहास के विषय में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का क्या मत है?
5. 'साहित्य के इतिहास में रसात्मक साहित्य के अतिरिक्त ज्ञान के साहित्य का समावेश किया जाए अथ नहीं।' यह किस बात पर निर्भर करता है?

इकाई (Unit)

2

काल विभाजन और नामकरण

संरचना

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 काल विभाजन और नामकरण की आवश्यकता
2.4 हिन्दी साहित्य के काल विभाजन की समस्या
2.5 हिन्दी साहित्य के काल विभाजन के विभिन्न प्रयास
2.6 हिन्दी साहित्य में प्रंचलित काल विभाजन व नामकरण
बोध प्रश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई में कालविभाजन और नामकरण की समस्या पर विचार किया जा रहा है।

- इतिहास में कालविभाजन और नामकरण की आवश्यकता पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- कालविभाजन और नामकरण के आधारों को पहचान सकेगें।
- हिन्दी साहित्य के इतिहास कालविभाजन की समस्या को रेखांकित कर सकेंगे।
- हिन्दी साहित्य के विभाजन और नामकरण के विभिन्न प्रयासों का उल्लेख कर सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास के अंतर्गत उसकी दूसरी इकाई का अध्ययन आरम्भ कर रहे हैं ज़िसमें हम कालविभाजन और नामकरण की समस्या पर विचार करेंगे। प्रत्येक इतिहास में अतीत काल का अध्ययन किया जाता है किन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए अतीत काल को कई काल खण्डों या युगों में बांट लिया जाता है साथ ही प्रत्येक काल को किसी ने किसी नाम से पुकारा जाता है इसी प्रक्रिया को काल विभाजन और नामकरण की प्रक्रिया कहा जाता है, हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन के लिए भी उसका कालविभाजन और उसके काल खण्डों का नामकरण किया गया है। पर यह काल विभाजन और नामकरण किस आधार पर किया जाता है इसके करने की आवश्यकता क्या है अब तक अलग-अलग विद्वानों ने जो काल विभाजन किया है वह कहाँ तक उचित है इन प्रश्नों पर इस पाठ पर विचार किया जायेगा जिससे काल विभाजन और नामकरण की समस्या को भली भाँति समझा जा सके। काल विभाजन पर बात करते समय यह बात भली भाँति समझ लेनी चाहिए कि कालविभाजन केवल अध्ययन की सुविधा के लिए किया जाता है। जैसे हम एक राज्य की शासन व्यवस्था के लिए उसे कई जिलो में बाँट लेते हैं और जिलो को भी तहसीलो में बाँट लेते हैं फिर भी यह ध्यान में रखने की बात है कि हर एक विद्वान का विभाजन अपनी अपनी दृष्टि से करता है ऐसी स्थिति में यह न संभव है कि अलग अलग साहित्येतिहास लेखकों के द्वारा किया गया काल विभाजन आपस में मेल न खाए। अस्तु की इन बातों को ध्यान में रखते हुए ही हमें कालविभाजन की समस्या पर विचार करना है।

काल विभाजन कई प्रकार से हो सकते हैं, यथा—

1. कर्ता के आधार पर—प्रसाद युग, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग।

2. प्रवृत्ति के आधार पर—भक्तिकाल, संत काव्य, सूफी काव्य, रीतिकाल, छायावाद प्रगतिवाद

3. विकासवादिता के आधार पर—आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल।

4. सामाजिक एवं सांस्कृतिक घटनाओं के आधार पर—राष्ट्रीय धारा, स्वांतत्रयकाल, स्वातत्रयोत्तर काल

समाज और हमारे सांस्कृतिक जीवन में कुछ आन्दोलन ऐसे होते हैं। जिनका प्रभाव जीवन के वि क्षेत्रों में दिखाई पड़ता है। इस तरह के आन्दोलन को आधार बनाकर कालखण्ड नामकरण की व्यवस्था सा में है। शक्तिकाल हमारे इतिहास का मात्र एक साहित्यक आन्दोलन नहीं था। वह एक प्रकार का सांस्कृ आन्दोलन था। शक्ति की व्यापक चेतना का प्रसार कला और समाज के विविध आयामों में हुआ था। सम्पूर्णता में देखे तो चित्रकला नृत्य और संगीत में शक्ति संवेदना का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

साहित्य के इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति की भूमिका इतनी महत्वपूर्ण हो है कि उसके नाम पर एक युग ही चल पड़ता है। उस व्यक्ति विशेष के नाम पर साहित्य काल खण्ड का रख दिया जाता हैं उदाहरण के लिए भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग का नामकरण इसी प्रकार का है। लेकि नाम व्यक्ति वाचक न होकर एक विशिष्ट प्रकार के जीवन मूल्यों को सूचित करते हैं। भारतेन्दु युग मात्र भार के साहित्य को ही नहीं हिन्दी के आधुनिक काल खण्ड की प्रारम्भिक मंजिल पर ठहरे सभी साहित्यकार साहित्य के सामूहिक जीवन बोध का संदेश देता है। वह हिन्दी साहित्य के पुनर्जागरण काल के साहित्य विशिष्ट मूल्यों की अभिव्यक्त करता है। अंग्रेजी साहित्य में शासकों के नाम कई साहित्यिक काल खंडो नामांकन किया गया है। नामकरण रखने में विशेष प्रकार की सावधानी की आवश्यकता होती है। घटना सा पर प्रत्यक्ष पर या परोक्ष प्रभाव पड़ने की स्थिति में ही ऐसे नामकरण की सार्थकता होती है। वरना यह साधारण तरह का नाम होगा। घटना के आधार पर नामकरण रखने से पूर्व उस घटना के प्रभाव का मूल्य करना होता है।

2.3 कालविभाजन और नामकरण की आवश्यकता

इतिहास को सही ढंग से समझने के लिए कालविभाजन और नामकरण आवश्यक है साहित्येतिहास मे इसका अपवाद नहीं हैं कालविभाजन और नामकरण करने में इतिहास में एक प्रकार की व्यवस्था भी आती रेनवेलेक का कहना उचित हैं कि कालविभाजन के बिना साहित्य का दिशाहीन प्रवाह हो जाता है वस्त कालविभाजन से साहित्य के विकास की दिशा को प्रभावित करने वाले तत्वों विभिन्न परिवर्तनों और मोड़ो का चलता हैं इसके जरिए हम साहित्य विशेष की बदली प्रवृतियों को समझ पाते और उसका मूल्यांकन कर पाते हैं।

समय बदलने के साथ साथ की परिस्थितियाँ और प्रवृतियाँ बदलती रहती है। इतिहास का अध्ययन वा के लिए प्रत्येक युग की परिस्थितियों और प्रवृतियों पर विचार किया जाता है। सभी युगों की परिस्थितियों प्रवृतियाँ एक जैसी नहीं होती इसलिए इतिहास को उसकी परिस्थितियों के बदलाव के अनुसार अलग—अ काल में बांटना पड़ता है। फिर उन कालों को युगों की पहचान के लिए इतिहास के अध्ययन के कालविभा और नामकरण की आवश्यकता पड़ती है।

2.4 हिन्दी साहित्य के काल विभाजन की समस्या

कोई भी इतिहास यूँ तो निरंतरता की प्रवृतियों के कारण सम्रग होता है किन्तु उसकी समग्रता का अपब करने के लिए उसका वैज्ञानिक वर्गीकरण आवश्यक हो जाता है। इस दृष्टि में काल विभाजन की समस साहित्योतिहास लेखन में महत्तवपूर्ण हो जाती है।

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परंपरा में जो आरंभिक प्रयास थे चाहे वे 'भक्तिमाला' व 'कविमाला' सदृश रचनाएँ हो, चाहे गार्सा द तासी या शिवसिंह सेगर के प्रयास; उनमें काल विभाजन का प्रयास नहीं किया गया। यह प्रयास प्रथमत: जॉर्ज ग्रियर्सन ने किया व संपूर्ण साहित्य को 11 कालों में बाटा। इस विभाजन में समस्या थी कि इसमें कई कालखण्ड गैर साहित्यक आधारों पर स्थापित किये गये थे। यथा—'कम्पनी के शासन में हिन्दुस्तान', 'विक्टोरिया के शासन में हिंदुस्तान '18वी शताब्दी, कुछ काल व्यक्ति विशेष पर आधृत हो गए, यथा' जायसी की प्रेम कविता, तुलसीदास इत्यादि। उन्होंने पहले काल अर्थात् चारणकाल का निश्चित् समय 700 ई० से 1300 ई० को बताया किन्तु शेष कालों का निश्चित विभाजन न कर सके। कुल मिलाकार यह विभाजन अव्यवस्थित ही रहा। काल विभाजन का अगला प्रयास मिश्रबंधुओं ने किया व मूलत: पाँच काल खंडों को स्वीकृत किया। पुन: पहले तीन खंडों के दो-दो उपखंड बनाए जिससे कुल आठ काल निर्धारित हुए, जो इस प्रकार हैं—

1. पूर्व आरंभिक काल	643–1286 ई० आरंभिक काल
2. उत्तर आरंभिक काल	1287–1387 ई०
3. पूर्व माध्यमिक काल	1388–1503 ई० माध्यमिक काल
4. प्रौढ़ माध्यमिक काल	1504–1624 ई०
5. पूर्व अलंकृत काल	1624–1733 ई
6. उत्तर अलंकृत काल	1734–1832 ई० अलंकृत काल
7. परिवर्तन काल	1833–1868 ई०
8. वर्तमान काल	1869–अद्यतन

इस काल विभाजन की मूल समस्या यह है कि यह अत्यंत जटिल है व इसका पर्याप्त तार्किक व वैज्ञानिक आधार नहीं है।

हिन्दी साहित्य के काल विभाजन का सबसे ठोस प्रयास आचार्य शुक्ल ने किया व 900 वर्षों की परम्परा की उन्होंने चार कालों से विभाजित किया—

1. बीरगाथाकाल	1050–1375 संवत्
2. भक्तिकाल	1375–1700 संवत्
3. रीतिकाल	1700–1900 संवत्
4. आधुनिक काल	1900 संवत् अघतन

यह काल विभाजन न केवल वैज्ञानिक हैं बल्कि जटिलताओं से मुक्त भी है। इसमें समस्या मात्र यह आती है कि भक्तिकाल के अंत में रीतिकाल को प्रवृतियाँ दिखने लगती है व भारतेन्दु काल में भी रीतिकाल की छाप दिखती हैं इसकी व्याख्या शुक्ल जी ने इन्हें गौण प्रवृत्तियाँ कहकर की।

2.5 हिन्दी साहित्य के कालविभाजन के विभिन्न प्रयास

हिन्दी साहित्येतिहास के कालविभाजन का प्रथम श्रेय जार्ज ग्रियसन को जाता है। इसके बाद मिश्र बंधुओं, रामचंद्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य का काल विभाजन का प्रयत्न किया है। इसके अतिरिक्त भारतीय हिन्दी परिषद (डॉ० धीरेद्र वर्मा द्वारा सम्पादित) और डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त ने भी काल विभाजन का प्रयत्न किया है। आइए विभिन्न विद्वानों द्वारा किए गये कालविभाजन पर एक नजर डाले।

जार्ज ग्रियर्सन किया गया काल विभाजन—(क) चारण काल (700 ई० से 1300 ई० तक) (ख) पन्द्रहवी शती का धार्मिक पुनर्जागरण (ग) जायसी की प्रेम कविता (घ) कृष्ण समप्रदाय (ड) मुगल

दरबार (च) तुलसीदास (छ) प्रेमकाव्य (ज) तुलसीदास के अन्य परवर्ती (झ) अठारहवी शताब्दी (कम्पनी के शासन में हिन्दुस्तान (ढ) विक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्तान।

जार्ज ग्रियर्सन के कालविभाजन में व्यवस्था का अभाव दिखलायी पड़ता है। सबसे पहली बात तो य कि इसमें साहित्यक प्रवृत्ति को आधार नहीं बनाया गया है। मुगल दरबार, अठारहवी शताब्दी, कम्पनी के श में हिन्दुस्तान आदि के आधार पर किया गया। विभाजन किसी साहित्यक परिवर्त्तन का संकेत नहीं देते। निश्च ही हिन्दी साहित्य के कालविभाजन के प्रथम प्रयास के रूप में इसका अपना महत्व है। पर इस कालविभ को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

2.6 हिन्दी साहित्य में प्रचलित काल विभाजन व नामकरण

हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन और नामकरण साधारणत: आचार्य शुक्ल के इतिहास ही ग्रहण किया जा सकता है। आचार्य शुक्ल के नामांकन और सीमांकन की कुछ सीमाएँ भी है। जिसे स स्थान हम स्पष्ट करेंगे।

आदिकाल (वीरगाथाकाल) : संवत् 1050 से 1375 ई०

पूर्वमध्यकाल (भक्तिकाल) : संवत् 1375 से 1700 ई०

उत्तरमध्यकाल (रीतिकाल) : संवत् 1700 से 1900 ई०

आधुनिककाल (गाधाकाल) : संवत् 1900 से 1984 अब तक

अनेक विद्वानों द्वारा आदिकाल साहित्य के संबंध में आर्चाय रामचन्द्र शुक्ल की मान्यताओं का खं किया गया है। **जिस अपभ्रंश काव्य को वे परोक्ष रूप में स्वीकार करते हुए जो साहित्य में स्थान नहीं देते** इसी तरह रीतिकाल के संबंध में भी कुछ विवाद हैं। आधुनिक काल को सामान्यता 25-25 वर्षों के विभा के साथ हिन्दी साहित्य में रखा जाता है।

संदर्भित ग्रन्थ

हिन्दी साहित्य का आदिकाल	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी का गद्य साहित्य	—	रामचन्द्र तिवारी
साहित्येतिहास आदिकाल	—	सुमन राजे
हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन	—	विद्यानिवास मिश्र
भारतीय साहित्यशास्त्र	—	गणेश त्रयम्बक देशपाण्डे
हिन्दी पुस्तक साहित्य	—	माताप्रसाद गुप्त
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का अतीत भाग 1	—	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	—	राम कुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	किशोरीलाल
हिन्दी साहित्य का रेखांकन	—	किशोरीलाल

बोध प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. काल विभाजन और नामकरण का आधार बताते हुए काल विभाजन की समस्याओं पर प्रकाश डालिए
2. काल विभाजन की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए इसके विभिन्न प्रयास भी लिखिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. हिन्दी साहित्य के काल विभाजन के किन्हीं तीन प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
2. हिन्दी साहित्य के काल विभाजन की क्या आवश्यकता है?
3. मिश्रबन्धुओं द्वारा काल विभाजन की मूल समस्या क्या है उल्लेख कीजिए।
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का काल विभाजन किस प्रकार किया है?

अति लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. प्रवृत्ति के आधार पर काल को कितने भागों में बाँटा गया?
2. द्विवेदी युग और भारतेन्दु युग किस प्रकार का नामकरण है?
3. साहित्य के इतिहास को समझने के लिए क्या आवश्यक है?
4. जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा साहित्य के विभाजन ने किस समस्या को जन्म दिया?

इकाई (Unit)

3

आदिकाल की पृष्ठभूमि

संरचना

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 आदिकाल का अर्थ एवं महत्व
3.4 आदिकाल साहित्य की पृष्ठभूमि
3.5 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
3.6 राजनीतिक पृष्ठभूमि
3.7 सामाजिक पृष्ठभूमि
3.8 आर्थिक क्रियाकलाप
3.9 धार्मिक स्थिति
3.10 मिश्रित सांस्कृतिक प्रक्रिया
3.11 आदि साहित्य का वर्गीकरण
3.12 आदिकालीन साहित्य के प्रेरक बिन्दु
बोध प्रश्न

3.1 उद्देश्य

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकालीन साहित्य का परस्पर विरोधी चिंतनधाराओं की वैविध्यमय अभिव्यक्ति के कारण अपार महत्व है। हिन्दी साहित्य के इस श्री गणेश काल में परिस्थितियों प्रवृतियों, भाषाओं और विचारधाराओं को वैविध्य भी है और समन्वय भी। साहित्य इतिहास संबधी इस पाठ्यक्रम का यह दूसरा खंड हैं जिसमें आदिकालीन साहित्य का तीन इकाईयों में विवेचन किया जा रहा है। आदिकालीन परिस्थितियों का गहन एवं विस्तृत विवेचन करने वाली इस प्रथम इकाई के अध्ययन से आप—

- आदिकाल का स्वरूप एवं महत्व जान सकेगें तथा आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि बता सकेंगे।
- आदिकाल की राजनीतिक तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बता सकेंगे।
- आदिकालीन साहित्य के प्रेरक बिन्दुओं को बता सकेंगें।
- आदिसाहित्य का वर्गीकरण कर सकेंगें।

3.2 प्रस्तावना

साहित्य समाज के विविध भाषा एवं नित नवीन रहने वाली चेतना की अभिव्यक्ति हैं किसी काव्य विशेष के साहित्य की जानकारी से तद्युगीन मानव समाज को समग्रत: जाना जा सकता है। दूसरे शब्दों में—किसी काल विशेष के साहित्य में पायी जाने वाली प्रवृत्तियाँ तत्कालीन परिस्थितियों के सापेक्ष में होती है। यह सिद्धान्त इस बात की आवश्यकता पर बल देता है कि साहित्य के प्रेरक तत्व के रूप में इम युगीन परिवेश को अवश्य

जान लेना आदिकालीन साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। आदिकालीन साहित्य में प्राप्त होने वाली प्रवृत्तियाँ तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में देखी जानी चाहिए। आदिकाल में मुख्य रूप से रासो साहित्य की रचना हुई।

इससे पूर्व के खण्ड में आप साहित्य और इतिहास के अत: संबंध को समझ चुके हैं। किसी भी साहित्य या साहित्यधारा के काल-विभाजन के तथा नामकरण के अधिकारों को जान चुके हैं। साथ ही हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि का अध्ययन करते हुए अपभ्रंश-काव्य की गहन विवेचना भी कर चुके हैं। उसी खण्ड में अपने आदि काल को काल-सीमा तथा नामकरण समस्या का भी विश्लेषण किया है। आगे के सभी खण्डों में प्रथम खण्ड के परिपेक्ष्य में भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल की विभिन्न विधाओं एवं साहित्य धाराओं का विश्लेषण किया जायेगा। यह दूसरा खण्ड "आदिकालीन साहित्य" से सम्बद्ध है। आदिकाल की परिस्थितियों का विश्लेषित करने वाली इस इकाई के अतिरिक्त आप शेष दो इकाइयों में आदिकालीन साहित्य की प्रमुख प्रवृतियों का यह ससांकात्य का अध्ययन मनन करेगे। अत: इस इकाई में एक तरफ और आगे की दोनों इकाइयों की पृष्ठभूमि भी स्पष्ट हो सकेगी। प्रथम खण्ड के परिपेक्ष्य में आप यह बता सकेगे की आदिकालीन साहित्य और ऐतिहासिक संदर्भों में क्या तालमेल है। तथा परिस्थितियों के बदलाव किस तरह इस युग में साहित्य के अलग-अलग धाराओं या प्रावशक्तियो में ढालते रहे। अपभ्रंश साहित्य की आठवी और चौदहवीं शताब्दी तक अविरल गति से बहती धारा कैसे आदिकालीन साहित्य की विविध प्रवृतियों में घुल मिल गई तथा परिस्थितियों ने कैसे शृंगार, वीर या भक्ति और धाराओं को निर्मित या विकसित किया रासों कात्यधारा या अन्य लौकिक—एतिहासिक और धार्मिक आदि साहित्य ग्रंथों के निर्माण में युगीन परिवेश और परिस्थितियों ने क्या-क्या भूमिका निभाई। ये परिस्थितियों साहित्य की उन प्रवृत्तियों में कहाँ-कहाँ ओर किसी रूप में झांकती दिखाई पड़ती है। इस मूल विषय के अतिरिक्त इकाई में आदिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, काल, सीमा, नामकरण आदिकालीन साहित्य के प्रेरक बिन्दु तथा आदिकालीन साहित्य की सामग्री के स्वरूप आदि का भी विवेचन किया गया हैं। तो आइये सर्वप्रथम आदिकाल के अर्थ एवं स्वरूप की समीक्षा करें।

3.3 आदिकाल का अर्थ एवं महत्व

आदिकाल जैसा की नाम से ही स्पष्ट है किसी साहित्य धारा क़ा वह प्रांरम्भिक या पहला काल खण्ड होता है। जहाँ से शुरूआत होती हैं। वास्तविक रूप को जानलेना सहज नहीं है। किन्तु भारतीय चिंतन धारा के उस महत्वपूर्ण काल के रूप में इसे माना जा सकता है। जहाँ परस्पर विरोधी तत्वों को एक साथ साहित्य में देखा जाता है। राजनैतिक उथल-पुथल, विदेशी आक्रमण तथा दो-दो संस्कृतियों के मिलन का परिवेश वहाँ हैं अशान्ति बिखराव से छिन्न-भिन्न सामाजिक स्थिति, विविध धर्म, सम्प्रदाय एवं दर्शनों का फैलता प्रभुत्व भी वहाँ हैं। जन सामान्य को आकर्षित भ्रमित करते टोने-टोकटे, तंत्र-मंत्र तथा जादू-चम्त्कार और जैन, वैष्णव शैव का पालिक, शाक्त, सिद्ध एवं नाथ आदि कई धार्मिक सम्प्रदायों की बहुत सी प्रवृतियाँ भी इस युग के समग्र साहित्य में देखी जाती है। जिनमें अन्तराल जी है और विरोध भी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा भी है—शायद ही भारतवर्ष के साहित्य में इतने विरोधों और स्वतोव्याद्यातो का युग कभी आया होगा। इस काल में एक तरफ तो संस्कृत के ऐसे बड़े-बड़े कवि उत्पन्न हुए जिनकी रचनाएं अलंकृत काव्य-परम्परा की चरम सीमा पर पहुँच गई थी और दूसरी ओर अपभ्रंश के कवि हुए, जो अत्यन्त सहज सरल भाषा में अत्यंत संक्षिप्त शब्दों में, अपने मनोभाव प्रकट करते थे। फिर धर्म और दर्शन के क्षेत्र में भी महान प्रतिभाशाली आचार्यों का उद्भव इस काल में हुआ था और दूसरी ओर निरक्षर संतों के ज्ञान प्रचार का बीज भी इसी काल में बोया गया। (हिन्दी साहित्य का आदिकाल) यो तो हिन्दी साहित्य के विकास की शुरूआत भी यही से देखी जाती है। किन्तु साथ ही परवर्ती हिंदी साहित्य की अनेक स्थल भी यही माना जाता है। "भाषा की दृष्टि से इसमें शक्तिकाल से आधुनिक काल तक की सभी प्रमुख प्रवृतियों के आदिम बीज खोजे जा सकते हैं।" यदि कबीर आदि निगुर्णमतवादी संतों की वाणियों की बाहरी रूपरेखा पर विचार किया जाए तो मालूम होगा कि यह पूर्णत: भारतीय है और बौद्ध धर्म के

अन्तिम सिद्धों ओर नाथपंथी योगियों के पदादि से उसका सीधा संबंध हैं वे ही पद वे ही राग-रागनियां, वे ही दोहे, वे ही चौपाइयाँ कबीर आदि के व्यवहार की है।

3.4 आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि

आदिकालीन साहित्य पर निर्णय लेने के उपरान्त यह आवश्यक है कि हम उन परिदृश्यो की चर्चा भी करे जिनके बीच साहित्य निर्मित हो रहा था। साहित्य का वातावरण शून्य में निर्मित नहीं होता है। साहित्यक रचनाओं के पीछे ऐतिहासिक शक्तियों और सामाजिक संस्थाओं का योग होता है। सामाजिक संगठन काव्यनुभूति की जटिलता के बीच सक्रिय होता है। इसलिए हम काव्यनुभूति की जटिल संवेदना की उसी हद तक समझ सकते हैं। जिस हद तक समाज को समझने की क्षमता अर्जित करेंगे। समाज की भीतरी गति की पहचान से कलात्मक मूल्यों का प्रतिमान बनेगा। हम चाहे किसी भी युग के साहित्य की चर्चा करे, उसके साहित्यक मूल्य उसके अपने समाज की वास्तविक से ही प्रमाणिकता होते हैं। इसलिए साहित्य के सामाजिक मूल्य और उसकी कलात्मक व्याख्या के लिए समाज की जानकारी आवश्यक हो जाती है। इसलिए साहित्य के सभा, समाज, आर्थिक गतिविधि, धार्मिक विचार और दर्शन के साथ अन्त: संबंधों की जाँच पड़ताल जरूरी है।

3.4 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जिन स्थितियों परिस्थितियों ने हिन्दी साहित्य के उस काल का निर्माण किया है या कराया। जिसे आगे चलकर "आदिकाल" नाम से जाना गया, उनकी स्थिति अत्यन्त चिंतनीय रही है। उस युग का भारत छिन्न-भिन्न हो रही सत्ता का भारत था। अंतिम हिन्दू सम्राट हर्ष का एकछत्र राज्य तब बिखरने लगा था पूर्व से खालों, दक्षिण में राष्टकूटों तथा पश्चिम में प्रतिहारों की राज्यशक्ति को सुदृढ़ बनाने के प्रयास भी विफल होते गए। राजपूतों के उदय होते ही तोमर, राठौर, चौहान, गुर्जर, चालुक्य, चंदेल तथा परमार आदि राजवंश राज्य की दौड़ में शामिल होने लगे परिणामत: केन्द्रीय शक्ति की अभावंटी अराजकता का कारण बन गया। परस्पर इन सत्ताधारियों ने लड़ना प्रारम्भ कर दिया। राजनीति युद्ध लिप्सा से घिर गई।

ऐसे विघटन भरे वातावरण में ही साहित्य को राज्यश्रय प्राप्त होने लगा। राजाओं ने देश-भाषा के प्रोत्साहन में योगदान दिया। भाषा और साहित्य विकसित होने लगे आक्रमणों और युद्धों के अंचल में पलने वाले साहित्य भी परिस्थितियों में जूझने लगा। पश्चिम से मुसलमानों के आक्रमण और राजपूतों के पारस्परिक झगडें सब ने परिवेश को युद्ध—उन्माद और शौर्य गायन से जीवन निर्वाह की राह दिखाई। दरबारी कवियों ने स्वामियों और आश्रयदाताओं की प्रशस्ती प्रारम्भ कर दी। इन्हें ही चारण भी कहा गया। वीर गाथाओं से सम्बंध अधिकांश साहित्य इन्हीं का रचा हुआ है।

अत: आदिकाल की इस युद्ध विघटन एवं सत्ता मद की स्थितियों ने एक तरफ तो अपने प्रभाव से साहित्य को जकड़ा। दूसरी तरफ जैन, बौद्ध तथा सिद्ध नाम आदि हिन्दी क्षेत्र के मत इन राजनीतिक, परिस्थितियों से दूर किन्तु सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितयों से प्रभावित होकर सामने आ रहे थे। तंत्र-मंत्र तथा टोने-टोकटे धीरे-धीरे जन-जन को भयभीत कर रहे हैं। ऐसे में गुर्जर सम्राट सिद्धराज जयसिंह के जीवनकाल में जैन साहित्य को प्रोत्साहन मिलने लगा था। प्राकश्त-व्याकरण "सिद्ध हेमचन्द्र शव दानुशासन" के रचयिता हेमचन्द्र इन्हीं के दरबारी आश्रित थे। हेमचन्द्र ने भी जैन धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अपना पूरा योगदान दिया। यही कारण है कि इस युग में पर्याप्त जैन प्रबंध-काव्य, पुराण तथा चरित काव्यों की रचना भी होती रही।

3.6 राजनीतिक पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी का यह प्रांरभिक काल भारतीय राजनीतिक जीवन के विश्रांवलता होने का काल हैं सातवीं, आठवी शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक के राजनीतिक घटना चक्र ने हिन्दी साहित्य को भाषा

और भाव दोनों ही दृष्टियों से प्रभावित किया। विशृंखलता तथा राजनीतिक असंतुलन के इस युग का प्रारम्भ राजवर्धन की मृत्यु के पश्चात उसके अनुज और सशक्त हिन्दी सम्राट हर्षवर्धन के सिंहासनारूढ़ होने से होता है। हर्षवर्धन ने सन 606 ई० में सिंहासन संभाला और अपनी योग्यता तथा प्रतिभा से अपने विरोधियों की वश में कर लिया। उसने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया और उत्तर भारत के अधिकतम क्षेत्रों को एक सूत्र में बांधने में सफल हुआ। हर्षवर्धन के शासन में ही चीनी यात्री ह्वानसांग भारत आया था और उसने उस समय के भारत में धर्म और समाज के व्यवस्थित होने का उल्लेख किया था। 647 ई० में हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात उत्तर भारत का साम्राज्य एक सूत्र होकर न रह सका और छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गया। इस समय का राजनीतिक परिदृश्य बहुत ही उलझा हुआ था। कुछ थोड़े समय के लिए काफी शक्तिशाली बने मगर उनमें से कोई भी अपनी प्रभुसत्ता कायम नहीं कर पाया। ये राज्य एक दूसरे के साथ लगातार चढ़ाईयों में उलझे रहे। परन्तु उनमें से अजमेर के चौहान कन्नौज के गाहडवाल और अलावा के परमार अपनी सभा थोड़े समय तक प्रतिष्ठित करने में सफल हो गए थे।

इन राजवंशों के पारस्परिक युद्ध दिन-दिन रात का कलह तथा बढ़ते हुए विघटन से सामन्तवादी प्रथा को प्रोत्साहन मिला। निरंकुश एकतंत शासन प्रणाली के स्थापित होने से राजनीतिक चेतना प्रणाली के स्थापित होने से मुकाबला करने की शक्ति क्षीण होने से और विदेशी आक्रमणकारियों से मुकाबला करने की शक्ति क्षीण होकर नष्ट होने लगी। 12 वीं शताब्दी में चौहान वंश के नरेश विग्रहराज या बीसलदेव ने दिल्ली, झांसी तथा पंजाब के पूर्वी भाग पर तुर्कों से युद्ध किया तथा अपना राज्य स्थापित किया उसके शौर्य का वर्णन चारण कवियों ने किया। मुहम्मद गौरी और पृथ्वीराज चौहान की ऐतिहासिक युद्ध का विवरण पृथ्वीराज रसों में मिलता है।

उस युग की राजनीतिक व्यवस्था में मुख्य दो बातें मिलती है---केन्द्रीय सत्ता का हास और छोटे-छोटे राज्यों का उदय। कला में स्थानीय संस्कृति का प्रभाव बढ़ने लगा। स्थापत्य में स्थानीय विशेषता से युक्त महल और मंदिर बनने लगे। इसका उदाहरण मध्यप्रदेश में खुजराहों, उड़ीसा में भुवनेश्वर के मन्दिर तथा दक्षिण भारत के मन्दिरों में देखने को मिलता है। बोलचाल की भाषा में संस्कृत भाषा की केन्द्रीयता भी समाप्त होती दिखाई पड़ती हैं बोलचाल की भाषा में साहित्य रचना होने लगी थी। प्राकृत और अपभ्रंश भाषा को महत्व दिया जा रहा था। भाषा के स्तर पर हिन्दी बंगला, उडिया, असमिया आदि भाषा के निर्माण की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। राजनीतिक परिदृश्य के संबंध में दूसरी जो हिन्दी महत्वपूर्ण बात थी वह आपसी संघर्ष से संबंधित थी। छोटे-छोटे राज्य आपसी प्रभाव वृद्धि के लिए परस्पर लड़ा करते थे। इसलिए हम देखते हैं कि राजनीतिक संगठन का प्रभाव केवल राजनीति तक सीमित नहीं होकर साहित्य को भी प्रभावित करता है। आदिकाल का रासों साहित्य इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

3.7 सामाजिक पृष्ठ भूमि

विदेशियों के भारत् आगमन से समाज में एक प्रकार की हलचल महसूस होनी लगी। विदेशियों (मुसलमानों को छोड़ कर हिन्दू समाज में घुल मिल जाने से नई जातियों का उद्य हुआ। राजपूतों का उदय कुछ इसी प्रकार से हुआ था उनका दबदबा बढ़ा बाह्मणों के वर्चस्व को थोड़ा खतरा महसूस हुआ इसलिए उन्होंने वर्णवाद की कटटरता को थोड़ा लचीला बनाकर राजपूत को क्षत्रिय की संज्ञा दी। दूसरे वर्गों ओर जातियों के लोग भी बाह्मणों के वर्चस्व को चुनौती देने के मुद्रा में खडे होने लगें।

इस युग में शिक्षा की व्यवस्था के अभाव में साम्प्रदायिक तनाव सती, प्रथा स्त्रियों की सुरक्षा के लिए पर्दा प्रथा, तथा विविध प्रकार बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र इन चारों वर्णों की प्रधानता थी। भारत सामाजिक आदर्श खो चुका था। जाति-पाति के बन्धन और अधिक कसते जा रहे हैं।

3.8 आर्थिक क्रिया कलाप

इस युग का समापन पूरी तरह से आधारित समाज था। किसानों की पैदावार से ही हर छोटे-बडें राज्य का पोषण होता था। राज्य के उच्च पदाधिकारियो और सरदारों को नगद वेतन नहीं मिलता था। अपित इन्हें जागीर दी जाती थी। सारे मध्यस्थ समुदाय खेती नहीं करते थे। ये बड़े ऐशो आराम से जीवन गुजारते थे। किसानों की पैदावार में राज्य का हिस्सा 50 प्रतिशत तक होता था। समाज दो वर्गों में बंटा हुआ था। उत्पादक और उपभोक्ता, उत्पादक वर्ग को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता था। क्योंकि वे श्रम करते थे। उपभोक्ता सुख से रहते थे। इसलिए उनका सम्बन्ध उच्च वर्ग से था। कृषक को साहित्य में कोई स्थान नहीं मिला। जबकि शक्ति कालीन साहित्य ने किया वर्ग और किसानों की पीड़ा को साहित्यक अभिव्यक्ति दी है।

3.9 धार्मिक स्थिति

सम्राट हर्षवर्धन के समय ब्राह्मण और बौद्ध धर्मों का समान आदर था यद्यपि हर्ष बौद्ध मतावलल्वी था और उसके समय में बौद्ध धर्म का पर्याटन प्रचार-प्रसार भी था तो भी उसमें एक प्रकार की उदारता और धार्मिक सहिष्णुता थी। फलत: उसके समय में विभिन्न धर्मों में आपसी मेल-जोल था। किन्तु हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद धार्मिक स्थिति भी बदली। किसी केन्द्रीय सत्ता के अभाव में जब देश खंड राज्यों में विभक्त हो गया तो धीरे-धीरे धर्म के क्षेत्र में अराजकता फैल गयी। वेद-शास्त्रों के विधि-विधान और कर्म-काण्डों को लेकर चलने वाले ब्राह्मण धर्म तथा बौद्ध धर्म में भी संघर्ष होने लगे—विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय अपने पवित्र रूप को सुरक्षित न रख पाये तो विकृत होकर नये-नये रूपों में जनता के सामने आने लगे परिणामत: आम आदमी धर्म के वास्तविक आदर्श को भुलाकर जादू टोने और तंत्र-मंत्र में विश्वास करने लगे थे। बौद्ध धर्म की इन शाखाओं में मंत्र-तंत्र हठयोग आदि मद्य तथा मुद्रा को विशेष स्थान प्राप्त होता जा रहा था इसके बिना साधना अधूरी मानी जाती थी। तंत्र-मंत्र जादू-टोने तथा भोग विलास को लेकर चलने वाले ये वामगर्गी ही बौद्ध-सिद्ध कहलाए तथा दूसरी तरफ धर्म-नियम संचालन और हठयोग साधना के रूप में जाने गए पर अपने मूल रूप से ये दोनों ही बौद्ध थे जो धीरे-धीरे बौद्ध धर्म के विकृत या परिवर्तित रूप में ढलते चले गये।

3.10 मिश्रित सांस्कृतिक प्रक्रिया

सातवीं से बारहवीं शताब्दी का भारत एक मिश्रित संस्कृति के निर्माण की प्रक्रिया में था। मिश्रित कहने का अर्थ है कि अनेक धाराएँ उसमें आकर मिली है और मिलकर लय हुई है। भारतीय संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति का संपर्क परस्पर बढ़ रहा था। प्रारम्भ में ये दोनों संस्कृतियाँ एक दूसरे के सामने प्रतिद्वन्द्वी के रूप में जम कर खड़ी होती है, पर जैसे-जैसे सत्ता में मुगलों का प्रभाव बढ़ता गया। वैसे-वैसे इस्लाम संस्कृति का प्रभाव हिन्दू संस्कति पर पड़ता गया। तत्कालीन कला और संस्कृति के क्षेत्र में परस्पर आदान प्रदान को सहज ही देखा जा सकता है। कला के गतिमान और सर्जनात्मक रूप में यह प्रवृति दिखाई पड़ रही थी। भाषा में अरबी और फारसी शब्दों का मिश्रण हो रहा था। स्थानीय स्थापत्य कला का भी मुस्लिम स्थापत्य से सहयोग बढ़ रहा था, उदाहरण के लिए राजपूताना शैली और गुजरात शैली का नाम गिनाया जा सकता हैं। संगीत के क्षेत्र में नये-नये यंत्रों और नए रागों का प्रचलन बढ़ रहा था। साराशं यह है कि भारतीय संस्कृति के समावेशी तत्व का विकास हो रहा था।

3.11 आदि साहित्य का वर्गीकरण

आदिकालीन साहित्य में धार्मिक, श्रृंगारिक, वीर रस-प्रधान आदि अनेक प्रकारके प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती है। अध्ययन की सुविधा के लिए हम आदिकालीन साहित्य को निम्न वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

(क) सिद्ध साहित्य

(ख) नाथ साहित्य

(ग) जैन साहित्य धर्म संबंधी साहित्य

(घ) रासों काव्य

(ड़) लौकिक साहित्य

(च) गद्य रचनाएँ

हिन्दी कविता का प्रारंभिक प्रारूप भारत में सिद्धों की रचनाओं में मिलता है। सिद्धों का संबंध बौद्ध धर्म से था। बौद्ध धर्म कालांतर में परिवर्तित हो गया। वज्रयान इसी प्रकार की साधना थी। इसमें पूजा पाठ के स्थान पर रहस्य और गुप्त साधना का प्रचलन था। सिद्धों ने अपने साहित्य में कायायोग, सहज, शून्य और समाधि की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया है। सिद्ध साहित्य का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उनका विरोध मात्र सामाजिक संस्था के स्तर पर नहीं दिखाई देता अपितु उसी विद्रोही प्रवृत्ति का प्रभाव साहित्यिक अनुभूति व भाषा की अभिव्यंजना में भी सर्वत्र प्राप्त होता है। उन्होंने अपभ्रंश की साहित्यिक भाषा को छोड़कर जनता की भाषा को अपनाया। नाथ संप्रदाय का प्रारम्भ सिद्धों के थोड़े समय बाद हुआ। नाथ पंथ की दार्शनिकता का आधार शैव मत है। व्यवहार में उन्होंने पंतजलि के हठ योग को अपनाया है। इन्हीं कुछ धाराओं पर उन्होने अपने संप्रदाय को सैद्धान्तिक रूप दिया हैं सिद्धों की साधना के विपरीत उन्होने मधमांस त्याग तथा मानसिक शुचिता पर बल दिया है। सिद्धों ने साधना को विकृत बना दिया था लेकिन नाथ पंथियों ने उसे फिर से जनता के लिए संभव बनाने पर जोर दिया। इड़ा-पिंगला, नाद-बिन्दु की साधना, षटचक्रभेदन, शून्य चक्र में कुंडलिनी का प्रवेश आदि नाथों की साधना में मुख्य अंग है। नाथ साहित्य में दो महत्वपूर्ण बातों की ओर ध्यान दिया जाता हैं पहली यह कि नाथ साहित्य में धर्म निरपेक्ष दृष्टि दिखाई देती है। इसे धार्मिक कटटरता नहीं मिलती हैं दूसरी महत्वपूर्ण बात नाथों के साहित्य में यायावरी साहित्य का गुण मिलता हैं। नाथ योगी अपने धर्म प्रचार के लिए विभिन्न प्रदेशों की संस्कृति, भाषा और व्यवहार से परिचय होता हैं यह प्रभाव उनकी भाषा पर भी पड़ता है। जो एक कमजोर नाथों के साहित्य में प्राप्त होती है। वह है गृहस्थ जीवन के प्रति उनमें आपेक्षा का भाव। इसलिए लोक जीवन की वास्तविक अनुभूतियों और स्वाभाविक दशाओं का वर्णन उनके साहित्य में नहीं मिलता है। नाथ साहित्य का व्यापक योगदान संतसाहित्य की परम्परा को अपना आधार सौपने में है। जैन साहित्य की अधिकांश रचनाएँ उपभ्रंश साहित्य के अंग हैं जिन्हें हिन्दी भाषा और साहित्य की रचना कहा जा सकता हैं इन रचनाओं में कुछ का उल्लेख किया जा सकता है। शालिभद्र सूरि की रचना, भरतेश्वर बाहुबली रास (1884 ई०) असुग की कृति "चंदनबाला रास" (1200 ई०) जैन धर्म सूरि कृत 'स्थलिभद्र रास' (1209 ई०) विजय सेन सुरि की रचना 'रेवन्तगिरिरास' (1231 ई०) सुमतिगण का 'नेमिनाथ रास' जैसे कुछ साहित्यिक कृतियों को हिन्दी को साहित्य में स्थान मिलना चाहिए। आचार्य शुक्ल अवश्य धार्मिक साहित्य के आधार पर जैन ग्रन्थों को हिन्दी से बाहर रखना चाहते हैं। धार्मिकता साहित्यिक संवेदना का अवरोध तत्व नहीं है नहीं तो हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग नहीं होता।

रासों काव्य परम्परा में दूसरे प्रकार की रचना वीरगति के रूप में मिलती हैं बीसल देव रासो और परमाल रासो वीरगति है। गेय काव्य की यह विशेषता है कि उसका निवास लोक कंठ में होता है वह लोक कंठ में ही पीढ़ी दर पीढ़ी होती रहती हैं लोक काव्य लोक जीवन के कितना निकट होता है। इसका प्रमाण रासों में मिलता है। समय प्रवाह में भाषा बदल गई, अर्थ बदल गए लेकिन भाव ज्यों के त्यों बने हुए हैं। आज भी आल्हा गाने वाले आल्हा की धुनों पर झूमते हुए मिल जायेंगे।

आदि काल में साहित्य धार्मिक साहित्य और चारणों की रचनाओं तक ही सीमित नहीं था उस लोक साहित्य का क्षीण धारा भी सक्रिय थी। जो सही अर्थ में देश भाषा काव्य थी। लौकिक साहित्य तीन क्षेत्रों में प्राप्त होते हैं राजस्थान, दिल्ली और मिथिला। इन तीनों क्षेत्रों के साहित्य में उस काल की लोक संवेदना की थोड़ी बहुत झाँकी मिल सकती है। इस साहित्य के अर्न्तगत भक्ति तथा श्रृंगार को लेकर काव्य रचना की गई।

आदिकाल में पद्य रचनाओं के साथ कुछ-कुछ गद्य रचनाएँ भी होती रहती थी। लेकिन गद्य में उस वास्तविक का वर्णन नहीं है जिसमें जीवन के यथार्थता को रचने की शक्ति होती है। इस काल की तीन उल्लेखनीय गद्य रचनाएँ हैं—रोडा की कृति 'राहुल खंल' दामोदर भट्ट की कृति 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' और ज्योतिरीश्वर ठाकुर कृत 'वर्णरत्नाकर'।

3.12 आदिकालीन साहित्य के प्रेरक बिन्दु

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आरंभिक वर्षों के रूप में जिस समय की चर्चा की गई है। उसमें मुख्यत: संस्कृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी भाषाओं में रचित साहित्य ही मिलता है। इसमें भी संस्कृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में धार्मिक तथा लौकिक साहित्य आर्थिक मिलता है। इन भाषाओं का परस्पर एक अटूट तथा क्रमबद्ध संबंध भी रहता है अपभ्रंश भाषा और साहित्य ने हिन्दी साहित्य को कई तरह से प्रभावित किया तो संस्कृत भाषा और साहित्य ने अपभ्रंश और हिन्दी दोनों को। वास्तव में संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रभाव से तो हिन्दी भाषा और साहित्य इस रूप में ऋषि है वह कभी इसमें मुक्त ही नहीं हो सकते। हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि तैयार करने वाले अपभ्रंश काल में भी संस्कृत भाषा तथा साहित्य का अत्यंत व्यापक क्षेत्र में लेखन प्रचलन चल रहा था। अत: विषय वैविध्य तथा परंपरा बाहुल्य हिन्दी को संस्कृत से ही मिला । संस्कृत साहित्य की पूर्ववर्ती—परम्पराओं की छाया भी हिन्दी साहित्य के लगभग सभी कालों में यह तब देखी जा सकती है साथ ही अपभ्रंश साहित्य के सिद्ध और जैन साहित्य का प्रभाव भी यहाँ अत्यंत मुखर है। यहाँ एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि इस युग का संस्कृत साहित्य अगर धर्म, अर्थ काम, मोक्ष, नीति, दर्शन, जीवन काव्यशास्त्र काव्य, सम्प्रदाय, इतिहास, पुराण भूगोल, कथा ज्योतिष, मन्त्र जीवनी तथा काव्य एवं नाटक आदि अनेक विषय लेकर चिंतन मनन कर रहा था तो अपभ्रंश साहित्य केवल धार्मिक धाराओं से सिमटा हुआ था। हिन्दी साहित्य में आदिकाल से आधुनिक काल तक के पूरे साहित्य को देखने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत की इस व्यापक साहित्यधारा से कवियों और साहित्यकारों में पर्याप्त ऊर्जा तथा प्रभाव भी ग्रहण किया है।

संदर्भित ग्रन्थ

हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	—	राम कुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य की भूमिका	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
साहितयेतिहास: संरचना और स्वरूप	—	सुमन राजे
साहित्येतिहास आदिकाल	—	सुमने राजे
हिन्दी साहित्य का आदिकाल	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन	—	विद्यानिवास मिश्र
आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	लक्ष्मीसागर वाष्णेय
हिन्दी साहित्य का रेखांकन	—	किशोरीलाल
हिन्दी साहित्य के नये प्रयोग	—	क्षेमचन्द
हिन्दी साहित्य विमर्श	—	पं० लाल पु० लाल बक्शी
हिन्दी साहित्य के सौ साल	—	ब्रजकिशोर मिश्र
साहित्य दिशाएँ	—	मृत्युंजय उपाध्याय

बोध प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. आदिकाल का स्वरूप बताते हुए आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए?
2. आदिकाल साहित्य के प्रेरक बिन्दु क्या है? इसके वर्गीकरण का उल्लेख भी कीजिए?

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. आदिकाल का यह नाम कितना सार्थक है? स्पष्ट कीजिए।
2. 'साहित्य का वातावरण शून्य से निर्मित नहीं होता है।' इस पर अपने विचार लिखिए।
3. आदिकाल का भारत छिन्न-भिन्न हो रही सत्ता का भारत था। इस विषय पर आदिकाल के विषय में टिप्पणी लिखिए।
4. आदिकाल के लौकिक साहित्य और जैन साहित्य की तुलनात्मक विवेचना कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. साहित्यिक रचनाओं के पीछे किन शक्तियों का योगदान होता है?
2. हेमचन्द किसके आश्रय दरबारी थे?
3. आदिकाल की राजनीतिक सत्ता की दो प्रमुखताएँ लिखिए।
4. आदिकाल के चारण साहित्य की कोई रचना लिखिए।

इकाई (Unit)

4

नाथ सिद्ध और जैन साहित्य

संरचना

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 सिद्ध साहित्य
4.4 नाथ कवि
4.5 जैन कवि—1. स्वयंभू, 2. पुश्पदन्त
4.6 नाथ परम्परा
4.7 सिद्ध नाथ में अन्तर
4.8 नाथ पंथ की सांस्कृतिक विशेषता
4.9 नाथ साहित्य
4.10 सिद्धों का परिचय
4.11 सिद्ध साहित्य
4.12 रूढ़िवादी मानसिकता का खण्डन
4.13 सिद्धों के साहित्य में अभिव्यंजना
4.14 जैन साहित्य, जैन साहित्य के प्रकार
बोध प्रश्न

4.1 उद्देश्य

पिछली इकाई में आप आदिकालीन पृष्ठभूमि का अध्ययन कर चुके हैं। यह इकाई आदिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों से संबधित है।

- धर्म संबधी साहित्य के अंतर्गत जैन, नाथ तथा सिद्ध साहित्य की विशेषताओं को समझा सकेंगें।
- सिद्ध नाथ में अंतर तथा नाथ पंथ के सांस्कृतिक विशेषता समझ सकेंगे।
- सिद्धों के साहित्य की अभिव्यंजना कर सकेंगे।
- जैन साहित्य तथा इसके प्रकार के बारे में जान सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल को आदिकाल कहा जाता है। हिन्दी साहित्य के आरंभिक समय की रचनाएँ साहित्य के विकास के अध्ययन के लिए अत्यंत आवश्यक है। परन्तु अधिकांश आदिकालीन ग्रंथों का उपलब्ध न होना, प्रामाणिकता में संदिग्धता, कालनिर्धारण में सामंजस्यन बैठना आदि कठिनाईयों के साथ साहित्य के विद्वानों, आचार्यों द्वारा व्यवस्थित धारणा बना लेना बहुत ही कुशलता का कार्य है।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल जिसे वीरगाथा काल, चारणकाल, सिद्ध सामन्त युग, बीजवपन काल, वीरकाल अनेक संज्ञाओं से विभुषित किया है, हिन्दी का सबसे विवादग्रस्त काल रहा है। इस काल में संस्कृत के ऐसे बडे-बडे कवि उत्पन्न हुए जिनकी रचनाएँ संस्कृत काव्य-परम्परा की चरम् सीमा पर पहुँच गयी थी तो दूसरी ओर अपभ्रंश के कवि उत्पन्न हुए जो अत्यन्त सरल एवं सहज भाषा में अत्यन्त संक्षित शब्दों में अपने मार्मिक भाव प्रकट कर रहे थे। वस्तुत: इस काल में जहाँ एक ओर सिद्ध नाथ और जैन साहित्य का निर्माण हुआ जिसे धर्माश्रय प्राप्त होने के कारण वह फूलता-फलता रहा, वहाँ दूसरी ओर राजस्थान के चारण कवियों द्वारा चरित काव्य भी रचे गये, जिन्हें राजाश्रय मिलने के कारण वह प्रशंसा का विषय बना। परन्तु इस काल में इन दोनों काव्य-धाराओं से भिन्न लोक साहित्य की भी रचना हुई, वह लोकाश्रित होने से सुरक्षित न रह सका। अनेक कारणों से यह साहित्य लुप्त सा हो गया। उससे इतना अवश्य ज्ञात होता है कि आदिकाल में लोक साहित्य प्रचलित रहा है। उपयुक्त आदिकालीन सभी साहित्य को प्रवृत्तियों के आधार पर निम्न रूप से वर्गीकृत केया जा सकता है—

आदिकालीन साहित्य

धार्मिक साहित्य	लौकिक साहित्य	रासो साहित्य (वीर काव्य)
↓	↓	↓
1. सिद्ध साहित्य	1. ढोला मारू रा दूहा	1. खुमान रासो
2. नाथ साहित्य	2. बीसलदेव रासो	2. परमाल रासो
3. जैन साहित्य	3. बसंत विलास	3. हम्मीर रासो
	4. राउल वेल	4. विजयपाल रासो
	5. उक्ति-व्यक्ति प्रकरण	5. बीसलदेव रासो
	6. वर्ण-रत्नाकर	6. पृथ्वीराज रासो।
	7. खुसरो का काव्य	
	8. विद्यापति पदावली।	

4.3 सिद्ध साहित्य

सिद्धों ने बौद्ध-धर्म के वज्रयान तत्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य जन-भाषा में लिखा। वह हिन्दी के सिद्ध-साहित्य की सीमा में आता हैं राहुल सांकृत्यायन ने चौरासी सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है, जेनसे सिद्ध सरहपा से यह साहित्य आरम्भ होता है। इन सिद्धों में सरहपा, शबरपा, लूइपा, डोम्भिपा, कण्हपा एवं कुक्कुरिपा हिन्दी के मुख्य सिद्ध कवि है। यहाँ संक्षेप में इनके व्यक्तिव और कृतित्व का परिचय देकर हम साहित्य के विकास में इनकी भूमिका को स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे।

सरहपा—ये सरहपाद, सरोजवज्र, राहुलभ्रद आदि कई नामों से प्रख्यात है। जाति से ये ब्राह्मण थे। इनके रचना-काल के विषय में सभी विद्वान एकमत नहीं है। राहुल जी ने इनका समय 761 ई० माना है जिससे अधिकाश विद्वान सहमत है। इनके द्वारा रचित बत्तीस ग्रथ बनाए जाते है। जिनमें से 'दोहाकोश' हिन्दी की रचनाओं में प्रसिद्ध है। इन्होने पाखंड और आडंबर का विरोध किया है तथा गुरू-सेवा का महत्त्व दिया है ये सहज भोग-मार्ग से जीव को महासुख की ओर ले जाते हैं। इनकी भाषा सरल तथा गेय है एवं काव्य में भावों का सहज प्रवाह मिलता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

नाद व बिन्दु न रवि न शशि मण्डल,

विचराअ सहाबे मुकल।

अजुरे उजु छाड़ि मा लेहु रे बंक,

निअहि बोहिमा जाहु रे लोक।

हाथेरे कांकाण मा लोउ दापण,

अपणे अपा बुझतु निअन्मण।

सरहपा की इस कविता से स्पष्ट है कि उनकी भाषा तो हिन्दी ही है, केवल उस पर यत्र-तत्र अ- प्रभाव है। भाव और शिल्प की जो परम्परा संत-साहित्य से जाकर नए रूप में उभरी, उसका बीज-रूप स के काव्य में दृष्टव्य है।

शबरपा—इनका जन्म क्षत्रिय कुल में 780 ई० में हुआ था। सरहपा से इन्होंने ज्ञान प्राप्त किया- शबरों का-सा जीवन व्यतीत करने के कारण ये शबरपा कहे जाने लगे। 'चर्यापद' इनकी प्रसिद्ध पुस्तक माया-मोह का विरोध करके सहज जीवन पर बल देते हैं और उसी को महासुख की प्राप्ति का मार्ग बतला। इनकी कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

हेरि ये मेरि तइला बाड़ी खसमें समतुला

षुकड़ए सेरे कपासु फुटिला।

तइला वाड़िर पासेर जोहणा वाड़ी ताएला

फिटेल अंधारि रे आकाश फुलिआ।

लुइपा—ये राजा धर्मपाल के शासन-काल में कायस्थ-परिवार में उत्पन्न हुए थे। शबरपा ने इन्हें उ शिष्य बनाया था इनकी साधना का प्रभाव देखकर उड़ीसा के तत्कालीन राजा तथा मंत्री इनके शिष्य हो गए चौरासी सिद्धों में इनका सबसे ऊँचा स्थान माना जाता है। इनकी कविता में रहस्य-भावना की प्रधानता है। उदाहरण देखिए—

क्राआ तरूवर पंच विड़ाल, चंचल चीए पइठों काल।

दिट करिअ महासुह परिमाण, लुइ भरमई गुरू पूच्छि अजाण।।

डोम्भिपा—मगध के क्षत्रिय वंश में 840 ई० के लगभग इनका जन्म हुआ था। विरूपा से इन्होंने ली थी। इनके द्वारा रचित इक्कीस ग्रंथ बताए जाते हैं, जिनमें 'डोम्बि-गितिका', 'योगचर्या', 'अक्षरद्विकोपे आदि विशेष प्रसिद्ध है। इनकी कविता का एक उदाहरण इस प्रकार है—

गंगा जउना माझेरे बहर नाइ।

तांहि बुडिली मातंगि पोइआली ले पार करई।

बाहतु डोम्बी बाह लो डोम्बी वाटत भइल उछारा।

सद्गुरू पाऊ पए जाइब पुणु जिणउरा।।

कण्हपा—इनका जन्म कर्नाटक के ब्राह्मण वंश में 820 ई० हुआ था। बिहार के सोमपुरी स्थान प रहते थे। जालंधरपा को इन्होंने अपना गुरु बनाया था। कई सिद्धों ने इनकी शिष्यता स्वीकार की थी। इनके चौहत्तर ग्रंथ बताए जाते हैं, जिनमे अधिकांश दार्शनिक विषयों पर हैं। रहस्यात्मक भावनाओं से परिपूर्ण गीत रचना करके ये हिन्दी के कवियों में प्रसिद्ध हुए। इन्होंने शास्त्रीय रूढियों का भी खंडन किया है। इनकी का का एक उदाहरण देखिए—

आगम वेअ पुराणे, पंडित मान बहंति।

पक्क सिरिफल अलि, जिस वाहेरित भ्रमयंति।

कुक्कुरिपा—इनका जन्म कपिलवस्तु के एक ब्राह्मण वंश में माना जाता है। इनके जन्म काल का पता नहीं चल सका है। चर्पटिया इनके गुरु थे। इनके द्वारा रचित सोलह-ग्रंथ माने जाते हैं। ये भी सहज जीवन के समर्थक थे। इनकी कविता का एक उदाहरण इस प्रकार है—

हांउ निवासी खमण भतारे, मोहोर विगोआ कहण न जा।

फेटलिउ गो माए अंत उड़ि चाहि, जा एथु बाहाम सो एथु नाहिं।

इन प्रमुख सिद्ध कवियों के अतिरिक्त अन्य सिद्ध कवि भी जन भाषा में अपनी वाणी का प्रचार पद्य में करते थे; किन्तु उसमें कवित्व का उतना अंश नहीं, जिसके आधार पर उसे साहित्य के विकास में योगदाता माना जा सके जिन कवियों की पहले चर्चा की गई है, उनका साहित्य ही हिन्दी के सिद्ध-साहित्य के लिए गौरव का विषय है। इन कवियों ने हिन्दी-साहित्य में कविता की जो प्रवृत्तियाँ आरम्भ की, उनका प्रभाव भक्तिकाल तक चलता रहा। रुढियों के विरोध का अक्खड़पन जो कबीर आदि की कविता में मिलता है, इन सिद्ध कवियों की देन हैं। योग-साधना के क्षेत्र में भी इनका प्रभाव पहुँचा। सामाजिक जीवन के जो चित्र इन्होंने उभारे व भक्तिकालीन काव्य के लिए सामाजिक चेतना की पीठिका बन गए। कृष्ण-भक्ति के मूल में जो प्रवृत्ति-मार्ग है, उसकी प्रेरणा के सूत्र भी हमें इनके साहित्य में मिलते हैं।

भारतीय साधना के इतिहास में 8 वीं सदी में सिद्धों की सत्ता देखी जा सकती है। सिद्ध परम्परा का जन्म बौद्ध धर्म की घोर विकृति के फलस्वरूप माना जाता है। बुद्ध का निर्वाण 483 ई० पूर्व में हुआ। उनके निर्वाण के लगभग 48 वर्ष तक बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का खूब प्रचार हुआ। इस धर्म की विजय-दुदुंभि देश तथा विदेशों में बजती रही। बौद्ध धर्म का उदय वैदिक कर्मकाण्ड की जटिलता एवं हिंसा की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। यह धर्म सहानुभूति और सदाचार के मूल तत्वों पर आधारित था। परन्तु आगे चलकर इस धर्म के अनुयायियों में कतिपय सैद्धान्तिक और साधनात्मक प्रश्नों को लेकर मतभेद आरम्भ हो गया। ईसा की प्रथम शताब्दी में बौद्ध महायान तथा हिनयान दो शाखाओं में विभाजित हो गया। महायान बड़े रथों के आरोही थे और हिनयानी छोटे रथों के आरोही। महायान में व्यवहारिकता का प्राधान्य रहा जबकि हीनयान में सिद्धांत पक्ष का प्राधान्य रहा। इनमें महायानी लोक निर्वाण के समर्थक थे और हीनयानी व्यक्तिगत साधना के समर्थक। महायान वाले अपने रथ में उँचे-नीचे, छोटे-बड़े, गृहस्थी-संन्यासी सबको बैठाकर निर्वाण तक पहुँचाने का दावा करते थे। हीनयान केवल विरक्त और सन्यासियों को आश्रय देता था। इनका जीवन सरल था, किन्तु महायानियों में मठों और विहारों के निर्माण पर जोर दिया। उसने स्त्रियों एवं गृहस्थों के लिए मोक्ष का द्वारा खोल दिया। इसी कारण अधिकाअधिक लोग उसकी ओर आकृष्ट होने लगे। स्वर्ण और सुन्दरी है योग से उसमें भ्राष्टाचार का प्रवेश हो गया। जादू-टोणा और मंत्राचार बढ़ने लगा। मंत्रों के इस महत्व एवं प्रचार के कारण महायान यंत्रयान बन गया।

सातवीं शताब्दी के आसपास मंत्रयान से एक अन्य उपयान निकेला, जिसे वज्रयान या सहजयान कहते हैं। कंचन-कामिनी के योग से मंत्रयान की लोकप्रियता बढ़ चुकी थी और उसमें व्यभिचार भी बढ़ रहा था। धीरे-धीरे कामपरक भावनाओं को सैद्धान्तिक और दार्शनिक रूप देने की चेष्टा की गई। वज्रयान पंचमकारों में बंध गया। मंत्र, मध, मैथुन, मांस और मुद्रा वज्रयान के मूल आधार बन गये। इस प्रकार वज्रयान में यौन संबंन्धों की स्वच्छंन्दता को बढ़ावा दिया। समाज पर इसका दूषित प्रभाव पड़ा। इस तरह बौद्ध धर्म महायान, यंत्रयान, वज्रयान आदि में विभक्त होता हुआ क्रमशः पतनोन्मुख होता गया।

तंत्रों मंत्रोद्वारा सिद्धि चाहने वाले सिद्ध कहलाये। ये सिद्ध वज्रयानी अथवा सहजयानी ही थे। वज्रयानी सिद्धों ने अपने मत-प्रचार के लिए जो साहित्य लिखा, वह आदिकालीन सिद्ध साहित्य कहलाता है। सिद्धों की

संख्या 84 मानी जाती है जिनमें 23 सिद्धों की रचनाएँ उपलब्ध होती है। प्रत्येक सिद्ध के नाम के पीछे 'या' शब्द जुड़ा हुआ है। सरहाया हिन्दी के प्रथम सिद्ध माने जाते हैं। उनका 'देहाकोश' ग्रन्थ विख्यात है इनके अलावा शबरया, लुझँ, डौबियँ, कलयँ, कुकुरिया, मुंडरिये, शांतिपा और बाणापा आदि सिद्ध कवियों में भी आदिकालीन सिद्ध साहित्य को समृद्ध बनाने में अपना योगदान दिया है।

इन सिद्धों ने गृहस्थ जीवन पर बल दिया है। इसके लिए स्त्री का सेवन, संसार रूप विषय से बचने के लिए था। जीवन के स्वभाविक भोगों में प्रवृत्ति के कारण सिद्ध साहित्य में भोग में निर्वाण की भावना मिलती है जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों में विश्वास के कारण इन सिद्धों का सिद्धान्त पक्ष सहज मार्ग कहलाया।

सिद्ध प्राय: अशिक्षित और हीन जाति से संबंन्ध रखते थे, अत: उनकी साधना की साधनभूत मुद्राएँ कापाली, डोम्बी आदि नायिकायें भी निम्न जाति की थी क्योंकि इनके लिए ये सुलभ थी। उन्होंने धर्म और आध्यात्म की आड़ में जन-जीवन के साथ विडम्बना करते नारी का उपभोग किया। उनके कमल और कलिश योनि और शिश्न के प्रतीक मात्र है। सिद्धों ने सरल या सहज जीवन पर जोर दिया है। समस्त बाह्य साक्षात्कार मे संदेह व्यक्त किया है। शरीर को समस्त साधनों का केन्द्र तथा पवित्र तीर्थ बताया है, आत्मा-परमात्मा की एकता में विश्वास व्यक्त किया है, सामरस्य भाव तथा महासुख की चर्चा की है और पाप-पुण्य दोनों को बन्धन का कारण बताया है। सिद्ध साहित्य का मूल्यांकन करते हुए डॉ० रामकुमार वर्मा लिखते हैं—"सिद्ध साहित्य का महत्व इस बात में बहुत अधिक है कि उससे हमारे साहित्य के आदिरूप की सामाग्री प्रामाणिक ढंग से प्राप्त होती है। चारणकालीन साहित्य तो केवल मात्र तत्कालीन राजनीतिक जीवन की प्रतिच्छाया हैं यह सिद्ध साहित्य शताब्दियों से आनेवाली धार्मिक और सांस्कृतिक विचारधारा का स्पष्ट रूप है। संक्षेप में जो जनता नरेशों की स्वेच्छाभारिता पराजय या पतन से त्रस्त होकर निराशावाद के गर्त से गिरी हुई थी, उसके लिए इन सिद्धों की वाणी ने संजीवनी का कार्य किया।"

सिद्ध साहित्य की भाषा को अर्धनागधी अपभ्रंश के निमट माना जाता है। चूंकि इस साहित्य की भाषा को अपभ्रंश तथा हिन्दी के सान्धी काल की भाषा माना जाता है। अत: इसे "संध्या या संध्या भाषा" का नाम भी दिया गया है।

4.4 नाथ कवि

नाथ संप्रदाय को सिद्धों की परम्परा का विकसित रूप माना जाता है। नाथ साहित्य का प्रवर्तक गोरखनाथ को स्वीकार किया जाता है। इस सम्प्रदाय के रचनाकारों ने सिद्ध साहित्य को और अधिक पल्लार्वत किया। इनकी साधना सिद्ध साधना से अलग है। इन्होंने सिद्धों द्वारा अपनाये नए योग प्रधान योगमार्ग के स्थान पर छठयांग साधन को मार्ग अपनाया इस संप्रदाय ने शैवमत के सिद्धान्तों को स्वीकार किया तथा शिव को आदिनाथ माना। इनके योग मार्ग में मूलत: संयम तथा सदाचार पर बल दिया गया।

आइए अब हम योगियों के साहित्य के मूल विषय तथा सिद्धांत की थोड़ी चर्चा करे। नाथ संप्रदाय को अनेक नामों से जाना जाता है। जैसे सिद्ध मत, योग मार्ग, योग, संप्रदाय अक्घूत मत, सिद्ध मार्ग आदि। "नाथ" शब्द का अर्थ "मुक्ति देने वाला" प्रचलित है। उन्होंने अपने साहित्य में स्पष्ट किया है कि इस मार्क्स सांसकारिक आकर्षणों एवं भोग विलास से है। इस प्रकार इस संप्रदाय के योगियों ने निवशत्ति के मार्ग पर जोर दिया तथा उन्होंने गुरू को ही इस मार्ग का मार्गदर्शक माना। उनके साहित्य के विविध साधना द्वारा कुण्डलिनी जाग्रत पर परमानंद आदि की क्रिया का विवरण मिलता है। उनके अनुसार गुरु से दीक्षा लेकर उनके उपदेश द्वारा वैराग्य प्राप्त किया जा सकता है। विरागी होने पर शिक्षय प्रावसाधना के माध्यम कुंडलिनी जाग्रत कर मन को अंतर्मुखी कर लेता है। जिससे उसे अपने भी ही परम आनन्द की प्राप्ति होती है। इस सम्प्रदाय में प्राण साधना से पहले इन्द्रीय निग्रह पर बल दिया गया है। इन्द्रिय निग्रह के अंतर्गत नारी से दूर रहने की प्रवृत्ति प्रमुख है। क्योंकि नारी ही चाहित्रिक पतन का कारण है। गोरख के काश्टय से यह प्रवृत्ति विशेष रूप से द्रष्टव्य है

आगे चलकर भक्तिकाल में कबीर ने भी इसी प्रवृत्ति को अपनाया तथा नारी का विरोध स्पष्ट शब्दों में किया। उनके तथा अन्य संत कवियों के काव्य में द्रश्टत्य प्राप्त साधना, कुण्डालिनी जागरण एवं मनसाधना आदि की क्रियाओं का वर्णन भी नाथ योगी कवियों का प्रभाव कहा जा सकता है। नाथ योगियों का काव्य भी सिद्ध साहित्य की ही भांति सिद्धांत प्रतिपादन हेतु लिखा गया था। इसलिए इनका साहित्य प्रतिकात्मक शैली में रचित है। इन्होंने अनेक प्रतीकों के माध्यम से अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इनके साहित्य में प्रयुक्त, प्रतीक सूर्य, चन्द्र, गगन, कमल आदि। इनके यहाँ सूर्य "ह" के तथा चन्द्र "द" के प्रतीक है। सूर्य तथा चन्द्र के मिलन को ही "हठयोग" कहा गया है। इनकी योग साधना का ज्ञान होने पर ही इन प्रतीकों को ठीक से समझा जा सकता हैं इनकी रचनाओं की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित पुरानी हिन्दी है। जिनमें पंजाबी, भूडा, अवधी आदि के शब्दों का सम्मिलन हो गया है। आचार्य शुक्ल ने इन ग्रंथों को भाषा देशभाषा मिश्रित अपभ्रंश अर्थात् पुरानी हिन्दी मानी है ब्रज के जिन शब्दों का प्रयोग इस साहित्य में किया गया है। उनमें लशार्वे, वहणें, दीसे, तहा, आदि प्रमुख है। अवधी के शब्दो में होई, भैला, जाब, कहै, बाजे आदि प्रयोग किये गए हैं।

4.5 जैन कवि

जिस प्रकार हिन्दी के पूर्वी क्षेत्र में सिद्धों ने बौद्ध धर्म के वज्रयान मत का प्रचार हिन्दी-कविता के माध्यम से किया उस प्रकार पश्चिमी क्षेत्र में जैन साधुओं ने भी अपने मत का प्रचार हिन्दी कविता के माध्यम से किया। इन कवियों की रचनाए आचार, रास, फागु, चरित आदि विभिन्न शैलियों में मिलती हैं। आचार-शैली के जैन-काव्यों में घटनाओं के स्थान पर उपदेशात्मकता को प्रधानता दी गई है। फागु और चरित काव्य शैली की समानता के लिए प्रसिद्ध है। 'रस' शब्द संस्कृत-साहित्य में क्रीडा और नृत्य से संबंधित था। भरत मुनि ने इसे 'क्रीडनायक' कहा है। वात्स्यायन के 'काम सूत्र' के रचना-काल तक 'रास' में गायन का भी समावेश हो गया था। अभिनवगुप्त ने 'रास' को एक प्रकार का रूपक माना है। लोक जीवन में श्री कृष्ण की लीलाओं के लिए 'रास' शब्द रूढ हो गया था और आज भी सामान्य जनता उसी अर्थ में इसका प्रयोग करती है। जैन-साधुओं ने रास को एक प्रभावशाली रचना-शैली का रूप दिया। जैन-तीर्थकरो के जीवन-चरित तथा वैष्णव अवतारों की कथायें जैन-आदर्शों के आवरण में 'रास' नाम से पद्यबद्ध की गई। जैन मंदिरों में श्रावक लोग रात्रि के समय ताल देकर 'रास' का गायन करते थे। चौदहवीं शताब्दी तक इस पद्धति का प्रचार रहा। अत: जैन-साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय रूप 'रास' ग्रंथ बन गये। वीर गाथाओं में 'रास' को ही 'रासों' कहा गया है, किन्तु उनकी विषय भूमि जैन रास-ग्रंथों से भिन्न हो गई है।

पूर्वोक्त प्रमुख शैलियों में लिखित आदिकालीन हिन्दी—जैन-साहित्य का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

इनके अतिरिक्त जैन कवियों ने रहस्यमयी काव्यों की भी सशिट की। वास्तव में इन कशतियों की भाषा ही अधिक शिश्ट एवं परिनिशिठत है। इनमें योगीन्द्र मुनि रचित "परमात्मा प्रकाश" दोघ "पाछुड़"उल्लेखनीय है। जैन कवियों में रासों काव्यकारों के अतिरिक्त जिन प्रमुख कवियों का उल्लेख किया जाता है। वे स्वयंमू तथा पुश्पदंत है। हम इन्ही दो मुख्य जैन कवियों तथा उनकी प्रमुख रचनाओं का उल्लेख यहाँ करेंगे।

4.5.1. श्रावकाचार—देवसेन नामक प्रसिद्ध आचार्य ने 933 ई० में इस काव्य की रचना की थी। ये एक अच्छे कवि तथा उच्च कोटि के चिंतक थे। उन्होंने अपभ्रंश में भी 'दब्ब-सहाव-प्रयास' नामक काव्य लिखा था। हिन्दी में लिखित इनकी अन्य रचनाएँ 'लधुनयचक्र' तथा 'दर्शनसार' है जो काव्य की सीमा में नहीं आती। 'श्रावकाचार' में 250 दोहों मे श्रावक-धर्म का प्रतिपादन किया गया है। कवि ने गृहस्थ के कर्त्तव्यो पर भी विचार किया है। इसकी रचना दोहा छंद से हुई है। एक उदाहरण इस प्रकार है—

जो जिण सासण भाषियउ, सो मइ कहिमउ सारु।

जो पालइ सइ भाउ करि, सो सरि पावइ पारु।।

4.5.2. भरतेश्वर-बाहूबली राम—मुनि जिनविजय ने इस ग्रंथ जैन साहित्य की रास परंपरा का प्रथ ग्रंथ माना है। इसकी रचना 1184 ई० में शालिभद्र सूरि ने की थी। ये अपने समय के प्रसिद्ध जैन आचार्य तथ अच्छे कवि थे। इस ग्रंथ में भरतेश्वर तथा बाहुबली का चरित्र-वर्णन हैं ये दोनों चरित-नायक संस्कृत प्राकृत तथा अपभ्रंश में भी काव्य-रचना का विषय रहे हैं। प्रस्तुत कृति में इनकी जो कथा वर्णित है, उसमें इ- अयोध्यावासी ऋषभ जिनेश्वर के यहाँ सुनंदा और सुमंगला से उत्पन्न बताया गया है। भरत आयु में बड़े थे ए पराक्रमी भी अधिक थे। वे अयोध्या के राजा बनाए गए और बाहुबली को तक्षशिला का राज्य मिला। कवि दोनों राजाओं की वीरता, युद्धों आदि का विस्तार से वर्णन किया है। किन्तु हिंसा और वीरता के पश्चात् विरक्ति और मोक्ष के भाव प्रतिपादित करना कवि का मुख्य लक्ष्य रहा है। अत: वीर और श्रृंगार रसों का निर्वेद में अं हुआ है। 205 छंदी में रचित यह एक सुंदर खण्डकाव्य है। इसकी भाषा में नाटकीयता, उक्ति-वैचित्र्य तथ रसात्मकता के सर्वत्र दर्शन होते हैं। आगे की 'रास' या 'रासी' रचनाओं को इस ग्रंथ ने अनेक रूपों में प्रभावि किया है। इसकी कविता का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

बोलह बाहुबली बलवंत। लोह खण्डि तउ गरवीउ हंत।

चक्र सरीमउ चुनउ करिउ। सयलहं गोत्रह कुल सहरउं।।

4.5.3. स्वयम्भू—इन्हे अपभ्रंश का प्रथम जैन कवि माना जाता है। अनुमानत: इनका जन्म सातवी शत में हुआ था। इनकी उल्लेखनीय कशतियों तीन है। जिनके नाम रिटणेमि चरित्र (अरिश्ट नेमि चरित) पउम चरिउ (पदम चरित) तथा स्वयंमू छदंस है। पदम चरिउ इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। यह जैन रामायण है तथा इनमें राम की कथा है। उन्होंने जैन धर्म की रीति नीति के अनुसार राम कथा में परिवर्तन किया है अपनी इस कशति में कवि ने कुछ नवीन प्रसंगों की संरचना भी की है। इन्होंने अपनी इस कशति को पांच खण्डों में विभक्त किया है। इस ग्रंथ में कवि ने प्रकशति वर्णन, युद्ध वर्णन आदि का विराट अंकन किया है। इस कशति के काव्य सौन्दर्य के आधार पर ही स्वयत्नू को अपभ्रंश का वाल्मीकि कहा जाता है। राहुल सांस्कृत्यायन में स्वयंभू द्वारा रचित इस रामायण को हिन्दी का सबसे पुराना एवं उत्तम काव्य माना है।

"पउम चरित" में कवि ने अलंकारों का प्रसंगानुकूल एवं सशक्त प्रयोग किया है। कवि ने राम कथा के सौदंर्य को बताने के लिए रूपक अलंकार का सुंदर प्रयोग करते हुए कहा है—

"दोह समाज पवाहवंकिय।

सक्कय पायय-पुलिणालंकिय।।

रिट्ठणेमि चरिउ में महाभारत और कश्ण की कथा है यह कशति चार कांडो—यादवकांड, कुरूकांड युद्धकांड तथा उत्तराकांड में विभक्त है। प्रत्येक कांड का विभाजन संधियों में हुआ है। यादव कांड का विभाजन संधियों में हुआ हैं यादव कांड में कृष्ण के जन्म एवं उनके विवाह आदि की कथा है। कुरूकांड कौखड़े तथ पांडवों के जन्म, उनमें हुए वैमनस्य तथा युधिष्ठर द्वारा जुए में सब कुछ हार कर अपने भाइयों सहित वन मे प्रस्थान करने से सम्बद्ध है। युद्धकांड में कौरव पांडवों का युद्ध तथा उत्तरकांड में उपसंहार है।

इस ग्रंथ में भी स्वयंभू जैन धर्म की रीति नीति के अनुसार कृष्ण का चरित्र परिवर्तित कर उन्हें महामानव के रूप में चित्रित किया है।

4.5.4. पुष्पदंत—पुश्पदंत का आविर्भाव काल दसवी शती के प्रारम्भ में माना जाता है। पहले ये शैव थे परन्तु बाद में जैन धर्म में दीक्षित हो गए थे। इनकी उल्लेखनीय कशतियाँ तिसट्ठिमहापुरिस गुणंलकार महापुराण तथा णायकुमार चरिउ (नाग कुमार चरित) है।

4.5.5. चंदनवालाराम—यह पैंतीस छंदों का एक लघु खंडकाव्य है। जिसकी रचना 1200 ई० के लगभग आसगु नामक कवि ने जालौर में की थी। इसकी कथा नायिका चंदनबाला चंपा नगरी के राजा दधिवाहन की पुत्री थी। एक बार कौशांबी के राजा शतानीक ने चंपा नगरी पर आक्रमण किया जिसमें उसका सेनापति

चंदनबाला का अपहरण कर ले गया, और एक सेठ को बेच दिया। सेठ की स्त्री ने उसे अपार कष्ट दिया। चंदनबाला अपने सतीत्व पर अटल रहकर सब दु:ख सहती रही और अंत में महावीर से दीक्षा लेकर मोक्ष को प्राप्त हुई। इस लधु कथानक पर आधारित यह जैन-रचना करूण रस की गंभीर व्यंजना करती है। भाव-सौंदर्य के जितने चित्र इसके रचयिता ने अंकित किए है, सभी ने उसकी काव्य-निष्ठा व्यंजित है।

4.5.6. स्थूलिभद्ररास—1209 ई० में रचित इस काव्य को जिनधर्मसुरि को कृति माना जाता है। स्थूलिभ्रद और कोशा वेश्या के विषय में अन्य रचनाएँ भी मिलती है, किन्तु इस कृति की सभी घटनाओं से उनका प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। अवांतर घटनाओं के माध्यम से लौहघट के रूप में स्थूलिभद्र का संयम चित्रित करके कवि ने काव्य को विशिष्ट बना दिया है। कोशा वेश्या के पास भोग-लिप्त रहने वाले स्थूलिभद्र को कवि ने जैन धर्म की दीक्षा लेने के बाद मोक्ष का अधिकारी सिद्ध किया है। काव्य की भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव अधिक हैं, फिर भी इसकी भाषा का मूल रूप हिंदी है। धार्मिक दृष्टि से प्रेरित होने पर भी इसका भाव-भूमि और अभिव्यंजना काव्यानुकुल है।

रेवंतगिरिरास—यह विजयसेन सूरि की काव्य-कृति है। 1231 ई० के लगभग लिखित इस काव्य में तीर्थकर नेमिनाथ की प्रतिमा तथा रवतगिरि तीर्थ का वर्णन है। यात्रा तथा मुर्ति-स्थापना की घटनाओं पर आधारित यह 'रास' वास्तुकलात्मक सौन्दर्य का भी आकृर्षण प्रस्तुत करता है। प्रकृति के रमणीक चित्र इस काव्य के भाव तथा कलापक्षी का शृंगार करते हैं। एक उदाहरण देखिए।

कोयल कलयलो मोर केकारओं
सम्मए महुयर महुर गुंजारवो।
जलद जाल बंबाले नीझरणि रमाउलु रेही
उज्जिल सिहरू अलि कज्जल सामलु।।

4.5.7. नेमिनाथरास—इस काव्य की रचना सुमति गणि ने 1213 ई० में की थी। अट्ठावन छंदों की इस रचना में कवि ने नेमिनाथ का चरित्र सरस शैली में प्रस्तुत किया है। नेमिनाथ के प्रसंग में श्रीकृष्ण का वर्णन इस काव्य का विषय है और इन दोनों के माध्यम से विभिन्न भावों की व्यंजना हुई है। रचना की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित राजस्थानी हिंदी है।

इनकी प्रथम कशति तिसद्विमहापुरिस गुणालंकार महापुरूष दो भागों में विभाजित है आदि पुराण एवं उत्तर पुराण में दोनों भाग खंडों में विभक्त है। आदि पुराण खण्ड में प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव, तेईस तीर्थकरों एवं भरत के चरित्र का वर्णन हैं उत्तरपुराण खंड में रामायण तथा महाभारत की कथा वर्णित है। रामायण की कथा वाले भाग को पउम चरिउ तथा महाभारत वाले भाग को हरिवंश पुराण कहा गया है।

4.6 नाथ परम्परा

नाथ पंथ के साधकों ने अपने को योगी कहकर संबोधित किया है। योगी के विषय में एक कहावत है रमता जोगी बहता पानी, मतलब यह कि इनकी दिशा क्या होगी, इसका कुछ भी ठिकाना नहीं है। नाथ पंथ का उद्‌भव किस प्रकार हुआ इस पर विद्वानों में मतभेद है। नाथों का सिद्धों से गहरा संबंध था। सिद्धों की परम्परा से भी था। नाथ परम्परा में मत्सयेंद्र नाथ के गुरू जलंधर नाथ माने जाते हैं। तित्वत के ग्रंथों में जो सिद्ध जलंधर आदि नाथ कहे गये है। आचार्य शुक्ल का विचार है कि जलंधर ने ही सिद्धों से अपनी परम्परा अलग की और पंजाब चले गये जलंधर के शिष्य मंछदर और मंछदर के शिष्य गोरखनाथ थे। गोरखनाथ अपने युग के महान धर्म नेता थे। जिस प्रकार सिद्धों की संख्या चौरासी प्रसिद्ध है, उसी प्रकार नाथों की संख्या नौ बताई जाती है। इन नौ नाथों में नागार्जुन जडभरत हरिश्चन्द्र सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरखनाथ, चर्पट, जलंधर, मलयार्जुन का नाम गिनाया जाता है।

4.7 सिद्ध और नाथ में अन्तर

सिद्ध और नाथ के बीच कई तात्विक समता और विषमता देखने को मिलती हैं। यांत्रिक साधन व्यापक स्वीकृति नाथों के साहित्य में भी प्राप्त होती है, परन्तु नाथों ने साधना में योग क्रिया को ही अपना ल बनाया। नाथों का सिद्धों से विरोध वामार्गी साधना को लेकर हुआ था। वाममार्गी साधना में लोकाचार से ह सिद्धों में प्रमुखता दी सिद्धों की साधना के ये अनिवार्य अंग थे। नाथों के लोक जीवन में सुचिता अहिंसा आचरण की पवित्रता जैसे श्रेष्ठ मानवीय मनोभाव को प्रधानता देना अपने पंथ का लक्ष्य रखा। नाथ शैवदर्शन और पंतजलि के हठयोग को मिलाकर अपने पंथ का वैचारिक आधार तैयार किया। सामा विषमता, उदाहरण के लिए जातिप्रथा, बाह्याचारों का विरोध नाथों ने भी किया कुछ सामाजिक मर्यादा के को छोड़कर सिद्धों से नाथों की व्यापक सहमत थी।

4.8 नाथ पंथ की सांस्कृतिक विशेषता

सिद्धों का प्रभाव क्षेत्र उत्तर पूर्वी था। नाथों का प्रभाव समस्त देश में व्याप्त था। पश्चिमी भारत से नाथ विशेष सम्बन्ध था। नाथों का स्थानीय संस्कृति के साथ संवाद होता था। नाथ पंथ ने मिश्र होती संस्कृ प्रक्रिया को और अधिक तीव्रता प्रदान की। इस पंथ की ओर मुसलमानों का भी आकर्षण था। ईश्वर से मि वाला योग हिन्दू और मुसलमानों दोनों के लिए एक सामान्य साधना के रूप में प्रचलित हुआ था। नाथों में धर्म के प्रति आत्मयीता और जैन धर्म से भी प्रभावित है। सनातन धर्म के प्रति आस्था व मुस्लिम धर्म के विश्वास है। गोरखनाथ जोगी को संबोधित करते हुए कहते हैं—

कोई वादी कोई विवादी जोगी कौ वाद न करना।
अडसाठे तीरथ समंद समानै यू जोगी को गुरू मसि मरने।।

4.9 नाथ साहित्य

नाथ पंथ के मुख्य रचनाकारों में गोरखनाथ, चौरंगीनाथ गोपीचंद, धणुकरनाथ, भरथरी आदि का प्रसिद्ध है। इनमें से किसी के साहित्य की प्रमाणिता असंदिग्ध नहीं है। गौरखनाथ की देशभाषा में लिखी रचनाओं में गोरखनाथ साखी, नरवई बोध, विराट पुराण गोरखबोध, गौरखनाथ की सतह कला क्त गो संवाद योगेशवरी गौरख सार तथा माथ बानी उपलब्ध हैं इसके अतिरिक्त गोरखनाथ की कुछ पुस्तकें संस्कृ भी मिलती है। जिस भाषा का प्रयोग गोरखनाथ के साहित्य में मिलता हैं उससे अनुमान लगाया जाता है। भाषा का प्रचलन गोरखनाथ काल में नही था।

4.10 सिद्धो का परिचय

सिद्ध बज्रयावी थे। बज्रयान बौद्ध की एक शाखा थी ईसा की आंरभिक सदी में बौद्धधर्म का दो भाग विभाजन हो गया। ये दो पंथ हीनयान ओर महायान नाम से प्रसिद्ध हुए। हीनयान ने पारम्परिक रूप से व सिद्धान्त को अपनाया और महायान ने उसमें कुछ मौलिक परिवर्तन कर अपने पथ का आधार तैयार कि महायान में बोधिसत्व के गुणों का मानवीकरण हुआ। बोधिसत्व की परिकल्पना देवता और देवियों के समान्ना की गई। महायान सम्प्रदाय में जटिल कर्मकाण्ड का विकास हुआ। जो नवीन ऐन्द्रजालिक रहस्यवाद से सं था। इस प्रकार महायान में भी एक नवीन संप्रदाय का उदय हुआ। इस नवीन संप्रदाय ने ऐन्द्रजलिक शाक्ति को वज्र कहते थे। अतएव बौध धर्म के इस नवीन संप्रदाय का नाम बज्रयान पडा।

4.11 सिद्ध साहित्य

सिद्ध साहित्य में हमारा तात्पर्य बज्रयान परम्परा के उन सिद्धाचार्यों के साहित्य से हैं जो अपभ्रंश के द तथा चर्या पद के रूप में उपलब्ध है। सिद्धों ने अपनी साधना का लक्ष्य ज्ञान को न मानकर अनुभूति को मा

तब से प्रभावित होकर उन्होने अपने समस्त ज्ञात साधना पद्धति हठयोग को अनुभूति के रंग दिया। उसके पीछें सिद्धों का उद्देश्य था। बौध धर्म के निवृतिमूलक दुखवादी रूप का निराकरण करके आनन्द की भावना की प्रतिष्ठा, आनन्द को सिद्धों ने आध्यात्मिक गहनता माना है।

साहित्य में प्रणव के प्रसंग-सिद्धों ने बौध परम्परा से चली आती है। निवार्ण भावना का तिरस्कार कर महासुख की अनुभूति को प्रमुखता प्रदान की बौध धर्म में निवार्ण के तीन अवयव ठहराए गए हैं। शून्य विज्ञान ओर महासुख वज्रयान के महासुख का प्रर्वतन हुआ। वज्रयान में निर्माण के सुख का स्वरूप ही सहवास सुख के समान बताया गया है। इसीलिए सिद्धों के साहित्य में प्रणव के प्रसंग अधिक मिलते हैं।

4.12 रूढ़िवादी मानसिकता का खण्डन

सिद्धों के साहित्य में दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति खण्डन की प्रवृत्ति हैं। सरहपा, मिट्टी, पानी और कुश लेकर संकल्प करने वाले, घर में बैठकर अग्नि होम करने वाले, होम के कडुए धुएँ से आँख को कष्ट देने वाले की हँसी उड़ाते हैं। कण्हपा ने भी यही चर्चा अपनी रचना में की है। उनका कथन है—

आगम वेअ पुरापेहिं पंडित मान वहन्ति।

पख्ख सिरीपले अलिअ जिम बोहरी अख्यन्ति।।

अर्थात पंडित लोग आगम वेद और पुराण पढ़कर मान करते हैं। पर तत्व की बात समझने का प्रयत्न नहीं करते हैं। यह उसी प्रकार का प्रयत्न है जैसे पके बेल के चारो ओर भोरा चक्कर लगाता रहता है।

4.13 सिद्धों के साहित्य में अभिव्यंजना

सिद्धों की काव्यानुभूति को समझने के बाद अनकी भाषा को भी समझना अनिवार्य होगा। सिद्धों ने अपनी दार्शनिक अनुभूति को अभित्यंजित करने के लिए प्रतीक भाषा का प्रयोग किया जाता है। इस भाषा को पंडित महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने संधा भाषा कहा है इस भाषा की शैली धूप-छाँव की शैली है। संधा भाषा संश्लिष्ट अनुभूति की भाषा थी इसमें लौकिक अर्थ कभी-कभी लोकविरुद्ध भी होते थे। इसे सामान्यत: उलटबाँसी के रूप में समझा जाता है। सिद्धों ने भाषा में अपभ्रंश के साहित्यिक वर्चस्व के स्थान पर देशभाषा को अपनी रचना का आधार बनाया है। साहित्य के हर क्षेत्र में चाहे वह भाषा हो बिंब हो, अनुभूति हो, सिद्धों का योगदान एक दम मौलिक है। साहित्य में उन्होंने नये सौंदर्य बोध को प्रस्तावित किया है।

4.14 जैन साहित्य

जैन साहित्य स्वद्ध अधिकांश रचनायें अपभ्रंश में लिखी गयी हैं। लेकिन वह हिन्दी साहित्य से अलग नहीं हैं। जैन अपभ्रंश साहितय का व्यापक प्रभाव परवर्ती हिन्दी साहित्य में देखने को मिलता है। जैन साहित्य में आदिकाल की भाषा और सामाजिक गति का महत्वपूर्ण तथ्य छिपा हुआ है। इसलिए जैन साहित्य का अध्ययन अनिवार्य है। उसे मात्र धार्मिक साहित्य कहकर हिन्दी साहित्य को खारिज नहीं किया जा सकता। जैन साहित्य का अध्ययन किया जाए तो उसमें जीवन का अद्भुत सौंदर्य देखने को मिलता हैं। मानवीय मनोभाव की जटिलता को जैन रचनाकरों ने गहराई से स्पर्श किया है।

4.14.1. जैन साहित्य के प्रकार—जिस प्रकार बौद्ध धर्म ने देश के पूरबी क्षेत्र में अपने मत को स्थापित करने के लिए जनभाषा को अपनाया। यह जनभाषा अपभ्रंश भाषा थी। जैन साधुओं ने इसी अपभ्रंश भाषा में अपना साहित्य रचा। जैन साहित्य में तीन प्रकार की रचनाएं मिलती हैं। प्रथम पौराणिक काव्य, द्वितीय मुख्यतक रचना, तृतीय हेमचंद्र और मेरूतुंग की रचनाओं को लिया जा सकता है।

4.14.2. पौराणिक तथा चरित काव्य—पौराणिक विषयों को लेकर जैन कवियों ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में विपुल साहित्य की रचना की। जैन अपभ्रंश काव्य की समस्त प्रबंधात्मक कृतियाँ पद्यबद्ध हैं।

जिसके रचित नायक तो पौराणिक हैं या जैन के निष्ठापूर्ण अनुयायी। मध्यकाल में धर्म प्रसार के लिए ब्राह्मणों और जैनों द्वारा पुराण साहित्य की रचना हुई। काव्य में जीवन की धार्मिक अनुभूतियों और दशाओं का वर्णन मिलता है। मनुष्य के सुख-दुख, राग-विराग सफलता-असफलता को उद्देश्य विशेष के अधीन होना पड़ता है। पौराणिक काव्यों को श्रेष्ठ साहित्यिक रचना स्वीकार कर सकते हैं। स्वयं भू और पुष्पदंत पौराणिक काव्य के विशिष्ठ कवि हैं।

4.14.3. मुख्यतक काव्य—जैन साहित्य में काव्य के अतिरिक्त मुख्यतक काव्य की रचनाएं भी हुई हैं। मुक्त साहित्य में दो प्रकार की भावधारा मिलती हैं। प्रथम वे रचनाएं जो साधकों को लक्ष्य रखकर लिखी गई हैं। दूसरे प्रकार की काव्य रचना का संबंध जैन काव्य के आचरण शास्त्र से है।

4.14.4. रहस्यात्मक साहित्य—रहस्यानुभूति का प्रभाव जैन साहित्य में भी देखने को मिलता है। जैन धर्म में रहस्यवादी काव्य की संख्या अल्पमात्रा में ही उपलब्ध होती है। जो इन्दु का परमात्मा प्रकाश और योगसार तथा मुनिराम सिंह का पाहुड दोहा जैन साहित्य की उल्लेखनीय रहस्यवादी काव्यकृतियाँ हैं।

4.14.5. जैन रास साहित्य—परवर्ती जैन साहित्य में रास ग्रंथों की प्रचुरता दिखाई पड़ती है। वस्तुतः रास नृत्य गीत और अभिनय के सभ्यकृत मनोभाव को सूचित करता है। ताल देकर काव्य का गायन किया जाता था इसलिए इसमें नृत्य, संगीत और अभिनय का स्वभाविक जुड़ाव हो गया। रूप गठन की दृष्टि से प्रबंध और मुक्तक दोनों में रास काव्य लिखे गये। प्रमुख रास ग्रन्थों में भरतेश्वर बाहुबली रासा (1184 ई०) चंदनबाला रास तथा उपदेश रसायन रास नाम गिनाया जा सकता है।

4.14.6. जैन रचनाकारों के व्याकरणिक ग्रंथ और साहित्य—जैन रचनाकारों ने अपभ्रंश में व्याकरण ग्रंथ का निर्माण किया था। आचार्य हेमचन्द्र का सिद्ध हेम चन्द्र शब्दानुसार अपभ्रंश व्याकरण का ग्रंथ है। इस ग्रंथ की रचना (1143 ई०) के आसपास हुई थी। इस ग्रंथ से संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश-तीनों भाषाओं का समावेश मिलता है। इस व्याकरण ग्रंथ में हेमचन्द्र ने संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के उदाहरण में उन्होने संपूर्ण गाथा एवं छंद दे दिए हैं।

4.14.7. सिद्ध नाथ और जैन साहित्य का परवर्ती हिन्दी के विकास में योगदान—हिन्दी की प्रारंभिक संवेदना का विकास सिद्ध नाथ और जैन साहित्य की विद्रोही चेतना से ही माना जा सकता है। इस धारा के संबंध रचनाकर एक खास वर्ग के सामाजिक वर्चस्व के खिलाफ खड़े हुए थे। भक्तिकाल के दो बड़े कवियों के माध्यम से परवर्ती हिंदी में सिद्ध नाथ और जैन साहित्य का प्रभाव तुलनात्मक रूप से देखा जा सकता है।

संदर्भित ग्रन्थ

सूफी मत साधना और साहित्य	–	रामपूज तिवारी
हिंदी साहित्य का इतिहास	–	रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य की भूमिका	–	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास	–	रामस्वरूप चतुर्वेदी
हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन	–	विद्यानिवास मिश्र
भारतीय साहित्यशास्त्र	–	गणेश त्रयम्बक देशपाण्डे
साहित्य सहचर	–	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी पुस्तक साहित्य	–	माताप्रसाद गुप्त
भारतीय वाङ्मय	–	लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

हिन्दी साहित्य चिन्तन	—	इन्द्रपाल सिंह
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	किशोरीलाल
हिन्दी साहित्य का रेखांकन	—	किशोरीलाल
हिन्दी साहित्य विमर्श	—	पं० लाल पु० लाल बक्शी
साहित्य दिशाएँ	—	मृत्युंजय उपाध्याय
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	रामचन्द्र शुक्ल

बोध प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. सिद्ध और नाथ के विषय में बताते हुए इन दोनों में अंतर बताइये ?
2. नाथ कवि और जैन कवि पर टिप्पणी कीजिए ?
3. स्वयंभू पर टिप्पणी कीजिए ?

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. आदिकालीन साहित्य का प्रवृत्तियों के आधार पर वर्गीकरण कीजिए।
2. सरहपा की भाषा सरल तथा गेय है। उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए।
3. लुइपा की कविता में रहस्य-भावना प्रधान रूप से थी। उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।
4. कण्हपा कौन थे? इनका हिन्दी साहित्य में क्या योगदान रहा?
5. पुष्यदंत कौन थे?

अति लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. 'योगचर्या' और 'चर्यापद' के लेखक कौन थे?
2. नाथ सम्प्रदाय के दो अन्य नाम लिखिए।
3. नाथ सम्प्रदाय के अनुसार हठयोग किसे कहा गया है?
4. 'पउम चरित' तथा 'परमात्मा प्रकाश' किनकी रचना है?

इकाई (Unit)

5

रासो काव्य एवं लौकिक साहित्य

संरचना

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 रासो साहित्य की पृष्ठभूमि
5.4 रासो काव्य परम्परा का विकास
5.5 रासो साहित्य की प्रवृत्तियाँ
5.6 लौकिक साहित्य
5.7 संदेश रासक
5.8 गद्य रचनाएँ
5.9 ढोला मारू रा हूहा
5.10 बीसल देव रासो
5.11 उक्ति-व्यक्ति प्रकरण
5.12 वर्ण रत्नाकर
5.13 राड़लवेल
5.14 वसत विलास
5.15 अमीर खुसरो
5.16 विद्यापति की पदावली
5.17 लौकिक साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

5.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन में आप—

- रासो साहित्य का स्वरूप एवं महत्व जान सकेगें तथा आदिकालीन रासों साहित्य की पृष्ठभूमि बत सकेंगे।
- आदिकालीन रासो साहित्य परम्परा का विकास और उसकी प्रवृत्तियाँ का विवरण जान सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

हिंदी-साहित्य के आदिकाल में रचित जैन 'रास-काव्य' वीरगाथाओं के रूप में लिखित रासो-काव्यों से भिन्न है। दोनों की रचना-शैलियों का अलग-अलग भूमियों पर विकास हुआ है। जैन रास-काव्यों में धार्मिक दृष्टि के प्रधान होने से वर्णन की वह पद्धति प्रयुक्त नहीं हुई जो वीरगाथापरक रासों ग्रंथों में मिलती है। इन काव्यों की विषयवस्तु का मूल संबंध राजाओं के चरित्र तथा प्रशंसा से है। फलत: इनका आकार रचनाकारों की मृत्यु के पश्चात् भी बढ़ता रहा है। रासो काव्यों को देखने से पता चलता हैं कि उनके रचयिता जिस राजा के चरित्र का वर्णन करते थे। उसके उत्तराधिकारी राजगण अपने आश्रित अन्य कवियों में उसमें अपने चरित भी

सम्मिलित करा देते थे। यही कारण है कि इस ग्रंथों में मध्यकालीन राजाओं का भी वर्णन मिलता है तथा भाषा में भी उत्तरवर्ती भाषा रूपी की झलक पाई जाती है। राजस्थान के कृतिपय वृत्त संग्रहकर्ताओं ने अधिकांश रासों काव्यों को इन्हीं बातों के कारण अप्रमाणिक रचनाएँ माना हैं। भाषा वैज्ञानिकों से उन्हें समर्थन मिल गया है।

5.3 रासो-साहित्य की पृष्ठभूमि

रासो-काव्य के रचना-स्वरूप के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार की धारणाओं को व्यक्त किया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार बीसलदेव रासों में प्रयुक्त 'रसायन' शब्द ही कालान्तर में 'रासों' बना। मोतीलाल मेनारिया के अनुसार—"जिस ग्रंथ में राजा की कीर्ति, विजय, युद्ध तथा वीरता आदि का विस्तृत वर्णन हो, उसे 'रासो' कहते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार—'रासो' तथा 'रासक' पर्याप्त है और वह मिश्रित गेय-रूपक है। डॉ० भागप्रसाद गुप्त के अनुसार विविध प्रकार के रास, रासावलय रासा और रासक छन्दों रासक और नाट्य—रासक, उपनाटकों रासक' रास तथा रासो-नृत्यों से भी रासों-प्रबन्ध-परम्परा का संबंध रहा है—यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

रास काव्य मूलत: रासक छन्द का समुच्चय है। अपभ्रंश में 29 मात्राओं का एक रासा या रास छंद प्रचलित था। विद्वानों ने दो प्रकार के 'रास' काव्यों का उल्लेख किया है—कोमल और उद्वत। प्रेम के कोमल रूप और वीर के उद्वत रूप का सम्मिश्रण पृथ्वीराज रासों में है।

चारण साहित्य की जिस समय रचना हो रही थी वह समय अनुकूल नहीं था, क्योंकि पूरा देश छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। प्रत्येक राज्य का राजा अलग होता था। प्रत्येक राज्य में आये दिन युद्ध करते थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन सामाजिक स्थिति खंडित पड़ी हुई थी। उस समय एक धर्म के लोग दूसरे धर्म और सम्प्रदाय के लोगों को नीचा दिखाने की चेष्टा में लगे हुए थे। रासों साहित्य सामंती-व्यवस्था प्रकृति और संस्कार से उपजा हुआ साहित्य है।

(i) राज काव्य परंपरा का विकास—रासो-काव्यों की परंपरा संस्कृत व प्राकृत में नहीं मिलती है। अपभ्रंश वैविध्य में जैसा कि विवेचन मिलता है। रासा ग्रंथों का संक्षेप में विवेचन इस प्रकार है—

(क) उपदेश रसायन—इसके रचनाकार श्री जिनदत्त सुरि है। इसका रचनाकाल 1200 वि० के लगभग है। इसका विषय जैसा कि नाम से प्रकट है, धर्मोपदेश है।

(ii) भरतेश्वर बाहुबली रास—इसके रचनाकार शलिभद्र सूरि हैं इसकी रचना संवत् 1241 में की गई। इस ग्रंथ में भरतेश्वर तथा बाहुबली का चरित्र वर्णन हैं कवि ने इन दोनों राजाओं की वीरता युद्ध आदि का विस्तार से वर्णन किया है, किन्तु हिंसा और वीरता के पश्चात् विरिक्त और मोक्ष के भाव प्रतिपादित करना कवि का मुख्य लक्ष्य रहा है। 205 छंदों में रचित यह एक सुन्दर खंडकाव्य है।

(iii) स्थूलभद्र रास—जिन धर्म सूरि ने 1209 ई० में इस ग्रंथ की रचना की। इस कृति का नायक स्थलिभद्र कोषा नाम की वेश्या के साथ भोगलिप्त रहता है। अंत में स्थलिभद्र को कवि ने जैन धर्म की दीक्षा लेने के बाद मोक्ष का अधिकारी सिद्ध किया है। इस काव्य की भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव अधिक है फिर भी इसकी भाषा का मूल रूप हिन्दी ही है।

(iv) चंदनबाला रास—उसके रचियता कवि आसगु है। यह कृति पैतीस छंदों का एक लघु खंड काव्य है, जिसकी रचना 1200 ई० के लगभग आसगु नामक कवि ने जालौर में की थी। इसकी कथानायिका चन्दनबाला चम्पा नगरी के राजा दधिवाहन की पुत्री थी। एक बार कौशाम्बी के राजा शतानकि के चम्पा नगरी पर आक्रमण किया, जिसमें उसका सेनापति चन्दनबाला का अपहरण कर ले गया और एक सेठ को बेच दिया।

सेठ की स्त्री ने उसे अपार कष्ट दिए। चन्दनबाला अपने सतीत्व पर अटल रहकर सब दु:ख सहती रही अं अंत में महावीर से दीक्षा लेकर मोक्ष को प्राप्त हुई। इस प्रकार लघु कथानक पर आधारित यह जैन रचना करू रस की गंभीर व्यंजना करती है।

(v) नेमिनाथ रास—इस ग्रंथ की रचना सुमति मणि ने 1213 ई० में की थी। 58 छंदों की इस रच में कवि ने नेमिनाथ का चरित्र सरस शैली में प्रस्तुत किया है। रचना की भाषा अपभ्रंश से प्रभावित राजस्था हिंदी है।

(vi) रेवतं गिरी रास—इस काव्य कृति के रचियता विजयसेन सूरि है। उन्होंनपे इस ग्रंथ की रच 1231 ई० में की थी। इस काव्य में तीर्थकर नेमिनाथ का प्रतिमा तथा रेवतागिरी तीर्थ का वर्णन हैं प्रकृति रमणीक चित्र इस काव्य के भाव पक्ष तथा कलापक्षों का शृंगार करते हैं।

5.4 रासो काव्य परम्परा का विकास

इतिहास के मर्म का समझने वाले विद्वान उन वन संग्राहकों के कथनों में विश्वास नहीं करते। सत्य यही कि रासो-काव्यों की रचना आदिकाल में ही हुई थी। उनमें जो अंश उत्तरवर्ती राजाओं में सम्बधित हैं, वे प्रक्षि है। इसी मान्यता के आधार पर हम रासो-ग्रंथों को आदिकाल का साहित्य स्वीकार करके यहाँ उनका संक्षि परिचय प्रस्तुत करेंगे।

5.4.1. खुमाण रासो—आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसको नवीं शताब्दी की रचना माना है। क्योंकि इस नवी शताब्दी के चित्तौड़-नरेश खुमाण के युद्धों का चित्रण है। राजस्थान के वृत्त-संग्राहकों ने इसको सत्रह शताब्दी को रचना बताया है, क्योंकि इसमें सत्रहवी शताब्दी के चितौड़-नरेश राजसिंह तक के राजाओं व वर्णन मिलता है और इसी आधार पर वे इसको आदिकाल की रचना नहीं मानना चाहते। वास्तविकता यह है कि इस काव्य का मूल रूप नवीं शताब्दी में ही लिखा गया था। तत्कालीन राजाओं के सजीव वर्णन, उस समय व परिस्थितियों के यथार्थ ज्ञान तथा भाषा के 'आरंभिक हिंदी रूप' के प्रयोग से इसी तथ्य के प्रमाण मिलते वृत्त-संग्राहकों के पास इतिहास का समझने को पैनी दृष्टि नहीं थी, इसलिए राजस्थान में रहते हुए भी आदिकाल की संपत्ति को भक्तिकाल और रीतिकाल के भण्डार में डालने का दुराग्रह करके यश अर्जित कर रहे हैं, जबकि वह संपत्ति उन कालों की प्रवृत्तियों से किसी भी रूप में मेल नहीं खाती। इन लोगों ने रचनाक के नामों के संबंध में भी भ्रम पैदा किया है। अधिकांश विद्वानों ने नवी शती के खमाण नरेश के समकालीं दलपत विजय को 'खुमाण रासो' का रचयिता माना है। जबकि वृत्त-संग्रहकर्ताओं ने यह सिद्ध करने व असफल चेष्टा की है कि उसका रचयिता सत्रहवी शती ईस्वी का दलपत विजय नाम का कोई जैन साधु थ रचना-शैली तथा विषय-वस्तु से सिद्ध है कि यह काव्य किसी जैन साधु की रचना नहीं हो सकती। यदि जै साधु ने इसे लिखा होता तो निश्चय ही इसमें धर्म भावना किसी न किसी रूप में व्याप्त मिलती।

इस ग्रंथ की प्रमाणिक हस्तलिखित प्रति पूना के संग्रहालय में सुरक्षित हैं यह पाँच हजार छंदों का विशा काव्य ग्रंथ है। राजाओं के युद्धों और विवाहों के सरल वर्णनो से इस काव्य की भाव भूमि का विस्तार हुआ संदर्भानुसार नायकिाभेद, षटऋतु आदि के चित्रण भी मिलते हैं। राजाओं की प्रशंसा काव्य का मुख्य प्रतिप है। वीर रस के साथ-साथ शृंगार की धारा भी आदि से अंत तक चली है। वस्तु वर्णनों में पर्याप्त रमणीयता इसमें दोहा, सवैया, कवित्त आदि छंद प्रयुक्त हुए हैं तथा इसकी भाषा राजस्थानी हिंदी है। राजाओं के वर्णनों प आधारित होने पर भी इसमें काव्यात्मक सरस वर्णनों का प्राचुर्य है। एक उदाहरण देखिए—

पिउ चित्तौड़ न आविऊ, सावण पहिली तीज।
जोवै बाट बिरहिणी खिण-खिण अणवै खीज।।
संदेसो पिण साहिबा, पाछो फिरिय न देह।
पंछी घाल्या पिंज्जरे, छूटण रो संदेह।।

प्राचीन काल में मुद्रण के अभाव के कारण लिपिकर्ता जैसा लिखते थे, वैसा ही ग्रंथ की भाषा का रूप हो जाता था। धार्मिक साहित्य में धार्मिक भावना के कारण शब्दों के मूल रूप की रक्षा का प्रयत्न किया जाता था। किन्तु रासो काव्य के प्रति वैसा कोइ आग्रह नहीं होता था। अत: उनकी भाषा पर लिपिकर्त्ताओं की भाषा के रूपों के प्रभाव पड़ते रहते थे। इस काव्य की भाषा के साथ भी यही हुआ है। वस्तुत: इस ग्रंथ के मूल रूप तक पहुँचने के लिए प्रमाणिक पाठ-संपादन की आवश्यकता है।

5.4.2. बीसलदेव रासो—इस ग्रंथ की रचना नरपति नाल्ह कवि ने 1155 ई० में की थी, जैसा कि निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट है—

बारह से बहोत्तराहां मंझारि। जेठ वदी नवमी बुधिवारि।

नाल्ह रमायण आरंभई। सारदा तूठी ब्रह्म कुमारि।

कासमीरा मुख मंडनी। रास प्रसागों वीसलदेराइ।

प्रथम पंक्ति से संवत् 1272 वर्ष को भी माना गया है, किन्तु अधिकांश विद्वान 1292 वि. ही स्वीकार करते हैं। कुछ वृत्त-संग्रहकर्त्ताओं ने इस ग्रंथ को भी आदिकाल की रचना नहीं माना। यह संभव है कि इसमें भी कुछ परिवर्तन होते रहे हो, किन्तु उससे इसकी प्राचीनता समाप्त नहीं हो जाती। डॉ० मोतीलाल मेनारिया सोलहवी शताब्दी के नरपति नामक एक गुजराती कवि को इसका रचयिता बतलाते हैं, किन्तु डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने कई प्राचीन प्रतियों के आधार पर सिद्ध किया है कि यह कृति चौदहवीं शताब्दी ईस्वी में लिखी गई थी। नवीन खोजों में एक प्राचीन प्रति मिली है। जिससे इस काव्य की रचना-काल 1016 ई० सिद्ध होता हैं उसमें एक पंक्ति मिलती है।—"संवत् सहस तिहत्तर जानि, नाल्ह कबीसर सरसीय वाणि।"

'बीसलदेव रासो' मूलत: गेय काव्य था, अत: इसके रूप में परिवर्तन होता रहा है। डॉ० मेनारिया का मत है कि वह काव्य गेय नहीं था। शायद वे गेयता का अर्थ 'लोकगीतो की तरह गाया जाना' लगाते हैं और इस आधार पर यह कहते हैं कि राजस्थान में कभी भी यह गेय नही रहा। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने 128 छंदों की एक प्रति का संपादन किया है। यह पाठ 'बीसलदेव रासो' का मूल रूप बताया जाता है। इसकी भाषा आदिकालीन आरंभिक हिन्दी का सहज स्वरूप सिद्ध होती है।

'बीसलदेव रासो' हिन्दी के आदिकाल की एक श्रेष्ट काव्य कृति है। इसमें भोज परमार की पुत्री राजमनी और अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव तृतीय के विवाह, वियोग एवं पुर्नमिलन की कथा सरस शैली में प्रस्तुत की गई है। राजमती की बातो से रूष्ट होकर स्वाभिमानी राजा उड़ीसा चला जाता हैं बारह वर्ष तक राजमती उसके विरह में दुखी रहती है। वह राजभवन की दीवारों को कोसती हुई वन में रहने की कामना करती है। सांमती जीवन के प्रति गहरी अरूचि का सजीव चित्र इस काव्य में मिलता है। 'संदेशरासक' के समान ही 'बीसलदेव रासो' की भाव-भूमि प्रेम की निश्छल अभिव्यक्ति से सरस है। 'मेघदूत' और 'संदेशरास' की संदेश परंपरा भी इसमें मिलती है। राजमती एक पंडित के द्वारा अपने पति के पास संदेश भेजती है। जब वह लौट आता है तब राजमती शृंगार करके उससे मिलती है शृंगार के वियोग और संयोग पक्षों के अत्यंत मार्मिक चित्र कवि ने प्रस्तुत किए हैं। राजमती में एक कुलीना गृहिणी का स्वाभिमान है, जो विरह के चित्रों का कांतिमय बनाता है। संयोग के समय भी यही कांति काव्य-सौंदर्य की वृद्धि करती है। राजमती की वाणी व्यंग्यमयी हो उठती है, जिससे उसके पति का हृदय हिल जाता है। पति के हृदय को वेधनेवाला राजमती का एक कुलीनता-संस्कार ही उसकी समस्त विरह-वेदना का आधार है, वही उसे इस विवशता तक पहुँचाता है—

अस्त्रीय जनम काई दीधउ महेस।

अवर जनम थारई घणा रे नटेस।

राणि न सिरजीय घउलीय गाइ।

वणषण्ड काली कोइली।

हउ बइसती अंबा नइ चंपा की डाल।

भषती दोष बीजोरड़ी।

इणि दृष झुरड अवलाजी बाल।

इस प्रकार इस काव्य के वर्णनों में एक संस्कार-दृष्टि मिलती है जो नारी-गरिमा की स्थापना करती है। कवि ने प्रकृति के रमणीय चित्रों से भी भाव-चित्रण को सौंदर्य दिया है। बारह मासों तथा ऋतुओं के प्राकृतिक चित्र संयोग और वियोग में उद्दीपन का काम करते हैं। विरह की विभिन्न दशाओं का वर्णन में समस्त प्रकृति सहायक हुई है तथा अनुभूतियों को भी उसने सुकुमारता प्रदान की है।

'बीसलदेव रासो' की शृंगार-परंपरा का आदिकाल में ही अंत नही हो जाता। विद्यापति से होती हुई यही परंपरा भक्तिकाल में प्रेमाख्यानक काव्यों तक पहुँची, कृष्ण-भक्तों को भी उसने प्रभावित किया तथा रीतिकाल में जाकर उसका समय शृंगार-काव्य के रूप में चरम विकास हुआ।

5.4.3. हम्मीर रासो—'प्राकृत-पैंगलम' में इस काव्य के कुछ छंद मिले थे और उन्हीं के आधार पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसके अस्तित्व की कल्पना की थी। उनका अनुमान था कि इसमें हम्मीर और अलाउद्दीन के युद्धों का वर्णन तथा हम्मीर की प्रशंसा चित्रित होगी। किंतु राहुल जी ने उन पद्यों का जज्जल नामक किसी कवि को रचना घोषित किया है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि 'हम्मीर' शब्द अमीर का विकृत रूप है, जो किसी पात्र का नाम न होकर एक विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। अत: शार्ङ्गधर-कृत इस 'हम्मीर रासो' का अस्तित्व संकट में पड़ा हुआ है। अभी तक इसकी कोई प्रगति उपलब्ध नहीं हो सकी है।

5.4.4. परमाल रासो—उत्तर प्रदेश में 'आल्हखंड' के नाम से जो काव्य प्रचलित है वही 'परमाल रासो' के मूल रूप का विकसित रूप माना जाता है। यह रासो लोक गेय काव्य था अत: इसके मूल की सुरक्षा नहीं ही सकी। इसमें अनेक अंश बाद में जोड़े गए हैं तथा अनेक अंशों में वर्णन और भाषा संबंधी परिवर्तन किए गए हैं। धीरे-धीरे 'आल्हा' लोकगीत की एक शैली ही बन गया है। अत: आधुनिक विषयों पर भी 'आल्ह' लिखे जाने लगे है।

प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के अभाव में मौखिक रूप में उपलब्ध 'आल्हखंड' के आधार पर 'परमाल रासो' के साहित्य स्वरूप के विषय में कुछ भी कहना कठिन है। 1865 ई० में चार्ल्स इलियट ने जिस 'आल्हखड' का प्रकाशन कराया था, वह मौखिक परंपरा पर ही आधारित है। इसी प्रति के आधार पर डॉ० श्यामसुंदर दास ने 'परमाल रासो' का पाठ-निर्धारित किया और उसे नागरीप्रचारिणी सभा से प्रकाशित कराया। इस नए रूप में उपलब्ध 'परमाल रासो' यद्यपि सर्वथा प्रणाणिक कृति तो नहीं है, यथपि आदिकाल में रचित मूल 'परमाल रासो' के ऐतिहासिक अस्तित्व को समझने में सहायक अवश्य है।

'परमाल रासो' का रचयिता जगनिक नामक कवि माना जाता है, जो महोबा के राजा परमर्दिदेव का आश्रित था। उसने इस काव्य में आल्हा और ऊदल नामक दो वीर सरदारों की वीरतापूर्ण लड़ाइयों का वर्णन किया है। इसी आधार पर इसका रचना-काल तेरहवी-शती का आरंभ माना जाता है। इसमें वीर-भावना का जितना प्रोढ़ रूप मिलता है, उतना अन्यत्र दुर्लभ हैं आज भी जब इसे गायक संगीत के साथ गाते हैं तब दुर्बला में भी तलवार चलाने की स्फुर्ति आ जाती है। विवाह और शत्रु-प्रतिशोध वीरता के प्रदर्शन का आधार रहे हैं वृद्धों के अत्यंत प्रभावशाली वर्णनों की इस काव्य में भरमार है। भावों के अनुसार ही भाषा भी चली है। और उसमें एक विशेष शब्द ध्वनि सर्वत्र व्याप्त हो गई है। गेयता का गुण इस काव्य को विकासशील लोकगाथा काव्यकी श्रेणी में ले जाता है, किन्तु इसकी रचना लोक गाथा के रूप में न होकर शुद्ध काव्य के रूप में ही हुई है।

भाषा की दृष्टि में इस काव्य का मूल्याकन कर पाना संभव नहीं, क्योंकि मूल-रूप का कोई भी अंश अब शुद्ध रूप में सुरक्षित नहीं है। उसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहे हैं। छंद-विधान की दृष्टि से इस काव्य

की एक विशेष शैली है, जिसे आल्ह-शैली कहना ही उचित है। इसकी वर्णन-शक्ति और प्रभावोत्पादकता की समझाने में निम्नांकित पंक्तियाँ कुछ सहायक हो सकती है—

बारह बरस लो कूकर जीवै, अरू तेरह लौ जियै सयार।

बरस अठारह क्षत्रिय जीवे, आगे जीवन को धिक्कार।

5.4.5. पृथ्वीराज रासो—आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि "(चंद) हिन्दी के प्रथम महाकवि माने जाते हैं और इनका 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है।" उन्होंने चंदबरदायी को दिल्ली-नरेश पृथ्वीराज चौहान का सामंत और राजकवि माना है। महामहोपाध्याय पं. हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार चंदबरदायी का जन्म लाहौर में हुआ था। इनके जन्म-काल के संबंध में कई धारणाएँ हैं। शुक्ल जी ने इनका जन्म-वर्ष 1168 ई० माना है तथा लिखा है कि "रासो के अनुसार ये भट्ट जाति के जगात नामक गोत्र के थे। इनके पूर्वजों की भूमि पंजाब थी, जहाँ लाहौर में इनका जन्म हुआ था। इनका और महाराज पृथ्वीराज का जन्म एक ही दिन हुआ था और दोनों ने एक ही दिन यह संसार भी छोडा था।" शुक्ल जी ने हरप्रसाद शास्त्री द्वारा प्राप्त चंद का एक वंश-वृक्ष भी प्रस्तुत किया है। वह वंश-वृक्ष शास्त्री जी को नानूराम भाट से प्राप्त हुआ था, जो स्वयं को चंद का वंशज मानता था। उसके कथनानुसार चंद के चार पुत्र थे, जिनमें से चतुर्थ पुत्र जल्ल था। जिस समय पृथ्वीराज को मुहम्मद गौरी बंदी बनाकर अपने देश ले जा रहा था, उस समय चंद भी महाराज के साथ गया था तथा अपने पुत्र जल्ल को 'पृथ्वीराज रासो' सौंप गया था। इस संबंध में यह उक्ति प्रसिद्ध है—"पुस्तक जल्हण हत्थ दै, चलि गज्जन नृप काज।" कहा जाता है कि जल्ल ने चंद के अधूरे महाकाव्य को पूर्ण किया था—

रघुनाथ चरित्र हनुमंत कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।

प्रथिराज सुजस कवि चंद कृत, चंद नंद उद्धरिय तिमि।।

यह प्रसिद्ध है कि चंद ने स्वामी के हितार्थ अपना बलिदान किया था। वह बहुत प्रतिभाशाली, दूरदर्शी, वीर तथा स्वामिभक्त कवि था। पृथ्वीराज उसे सदा अपने सखा के समान साथ रखते थे एवं उसकी हर बात मानते थे।

पृथ्वीराज रासो के संस्करण—सभा में 1584 ई० में लिखित प्रति के आधार पर 'रासो' का संपादन कराया था। इस संस्करण में 69 समय (खंड) तथा 16306 छंद है। द्वितीय रूप में उपलब्ध 'पृथ्वीराज रासो' 7000 छंदों का काव्य माना जाता है। इसका प्रकाशन नहीं हुआ, किंतु अबोहर एवं बीकानेर में इसकी प्रतियाँ सुरक्षित हैं, जो सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी में लिखी गई हैं। तीसरा लघु संस्करण 3500 छंदों का है, जिसमें केवल 19 समय हैं। इस संस्करण की हस्तलिखित प्रतियाँ भी बीकानेर में सुरक्षित हैं। चौथा संस्करण सबसे छोटा है, जिसमें केवल 1300 छंद हैं इसी को डॉ० दशरथ शर्मा आदि कुछ विद्वान मूल रासो मानते हैं।

प्रमाणिकता—इन चारों संस्कारणों को देखकर यह प्रश्न सहज रूप में उत्पन्न होता हैं कि इसमें से प्रमाणिक संस्करण कौन-सा है? और इसी से लगा हुआ वह विवाद भी बढ़ जाता है, जिसके अनुसार 'पृथ्वीराज रासो' को एक जाली ग्रंथ माना गया है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक ग्रंथ इस दृष्टि से सर्वाधिक विवादास्पद रहा है। विद्वानों में कई वर्ग बन गए हैं। डॉ० श्यामसुंदरदास, मोहनलाल विष्णुलाल षंड्या, मिश्रबंधु, कर्नल टॉड आदि विद्वानों ने यह माना है कि 'पृथ्वीराज रासो' की जो संस्करण सभा से प्रकाशित हुआ है, वही प्राणाणिक है। दूसरा वर्ग रामचंद्र शुक्ल, कविराज, श्यामलदान गौरीशंकर, हीराचंद ओझा, डॉ० वूलर, मुंशी देवीप्रसाद आदि विद्वानों का है जो 'रासो' को सर्वथा अप्रामाणिक ग्रंथ घोषित करते हैं आश्चर्य हैं कि शुक्ल जी अप्रणाणिक मानते हुए भी उसे अपने इतिहास में आदिकाल के अंतर्गत स्थान देते हैं। तृतीय वर्ग के विद्वान-मुनि जिनविजय, डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि—यह मानते हैं कि पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि चंदरबरदायी ने ही 'पृथ्वीराज रासो' लिखा था, किन्तु मूल रूप

आजकल उपलब्ध नहीं है। चौथा मत नरोत्तमदास स्वामी का है। उन्होंने सबसे अलग यह बात कही कि पृथ्वीराज के दरबार में रहकर मुक्तक रूप में 'रासो' की रचना की थी। उनके इस मत से की 'रासो' प्रबंधकाव्य नही था अन्य कई विद्वान सहमत नहीं हैं।

वस्तुत: आरम्भ में यह ग्रथ विवादास्पद नहीं थी। कर्नल टांड ने इसकी वर्णन-शैली तथा काव्य- पर रीझकर इसके लगभग 30 हजार छंदों का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया था। तासी भी इसकी प्रमाणि संदेह नहीं करते थे। बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ने इस ग्रंथ का मुद्रण भी आरम्भ कराया थ 1875 में डॉ० बुलर ने 'पृथ्वीराज विजय' ग्रंथ के आधार पर इसे अप्रमाणिक रचना घोषित किया। राजस्थान के कुछ इतिवृत-खोजियो-कबिराज, मुरारिदान, श्यामलदान, गौरीशंकर, हीराचंद ओझा आदि काव्य को अप्रमाणिक सिद्ध करने के सायास तर्क जुटाए। इन विद्वानों के तर्कों का निराधार सिद्ध कर प्रयत्न किया डॉ० दशरथ शर्मा ने। वस्तुत: यह विवाद इतना उलझ गया कि अब तक कुछ विद्वा अप्रमाणिक कृति सिद्ध करने में जुटे हुए हैं। वे एतदर्थ नए-नए खोजते रहते हैं। कुछ विद्वान ऐसे भी उनके द्वारा खोजे गए तर्कों को निराधार सिद्ध के लिए सामग्री जुटाते रहते हैं।

रासो साहित्य सामंती व्यवस्था, प्रकृति और संस्कार में उपजा हुआ साहित्य है। जिसका संबंध प हिंदी प्रदेश से है। इसे 'देशभाषा काव्य' नाम से भी अभिहित किया जाता है। इस साहित्य के रचनाका हिन्दू राजपूत राजाश्रय में रहने वाले चारण या भाट समाज में सम्मान का स्थान प्राप्त था। ये चारण कला म और कला-रचना में निपुण होते हैं। ये लोग योद्धा भी थे।

जब भी कोई लिपिकार किसी पुरानी पोथी को लिपिबद्ध करता है तो वह अपने समकालीन राजा सम्बन्ध कथानकों को इसलिए जोड़ देता है ताकि इसके आश्रयदाता को भी महत्त्व मिल जाये। यह 'खुमाण रासो' में जुड़े बाद के प्रक्षिप्त अंश को देखने से स्पष्ट हो जाता है। डा० नगेंद्र के शब्द "वृत्त-संग्राहकों के पास इतिहास को समझने की पैनी दृष्टि थी, इसीलिए राजस्थान में रहते हुए भी वे आदि की समाप्ति को भक्तिकाल और रीतिकाल के भण्डार में डालने का दुराग्रह करके यश अर्जित कर र जबकि वह सामग्री उन कालों की प्रवत्तियों से किसी भी रूप में मेल नहीं खाती। इन लोगों ने रचनाकारों के में भी भ्रम पैदा कर दिया है।"

इस ग्रंथ की प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति-पूना संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें कुल पाँच हजार छं इसमें समकालीन राजाओं के आपसी विवादों के बाद हुई एकता के साथ-साथ अब्बासिया वंश अर खलीफा और खुमाण के साथ हुए युद्ध का चित्रण मिलता है। इस कृति का प्रमुख सरोकार राजा खुमाण चित्रांकन करना है। उनके चरित्र के दो प्रस्थान बिंदु हैं-एक युद्ध और दूसरा प्रेम। इसकी भाषा राजस्थानी है। यथा —

"पिउ चितौड न आविऊ सावण पहिली तीज।
जोवै वाट रति विरहिणी, खिण-खिण अणवै खीज ॥
संदेसो पिउ साहिबा, पाछो फिरिय न देह।
पंछी घाल्या पीज्जरे, घूटण रो संदेस"॥

5.4.6. विजयपाल रासो—मिश्रबंधुओं ने इस परम्परा की एक कृति 'विजयपाल रासो' का उल्ल किया है जिसके रचियता नल्लसिंह है। इस कृति का नायक विजयपाल सम्भवत: विश्वामित्र गोजीय शुहिलवं राजा विजयपाल से भिन्न हैं जिसने 'काई' नामक वीर योद्धा को पराजित किया था। इस राजा के प्रयौत्र वि सिंह का एक हिन्दी शिलालेख दमोह (म०प्र०) में प्राप्त हुआ है। इस रचना में रचनाकार ने राजा विजय सिंह और बंगराजा के बीज हुए युद्धों को सजीव रूप से चित्रित किया है। इसका रचनाकाल सन् 1298 ई० आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसी नाम की दूसरी कृति का उल्लेख भी किया हैं जिसके रचनाकार मल्ल है। शिल्प विधान की दृष्टि से यह आदिकाल के बाद की रचना ठहरती है।

5.5 रासो साहित्य की प्रवृत्तियाँ

रासो साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं—

5.5.1.वस्तुपरक तथा कथ्यपरक प्रवृत्तियाँ—

5.5.1.1 वस्तु कथ्य में अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन की अधिकता—समकालीन कवियों ने अपने आश्रयदाता राजा को श्रेष्ठ वीर, पराक्रमी, सम्राट, दानवीर, दृढ़ प्रतिज्ञा, शरणागत रक्षक और अनुपम सौन्दर्यशाली सिद्ध कर उसका अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया है। राजाओं का चरित्रांकन करना ही उस काल के रचनाकारों का मुख्य मकसद रहा था। रचनाकार दिन-रात शूर-वीर राजाओं के साथ रहता था। युद्ध के समय भी वह राजा का साथ नही छोड़ता था। वह युद्ध के समय सेना का नेतृत्व करता था और अपनी ओजस्वी कविताओं से सम्पूर्ण वातावरण और परिवेश को वीरोचित भावना से आपूरित करता था। इस उत्साह, संघर्ष और युद्ध के बीच भी वह राजाओं के यशोगान को बढ़ा चढ़ाकरह वर्णित करना नहीं भूलता था।

''चढ़ि तुरंग चहुआन, आन फेरीति पर द्धर।

तास युद्ध इंडयौ, जास जानयौ सवर वर।''

5.5.1.2. *सामंती समाज तथा उसमें निहित संस्कृति का चित्रण*—चारण साहित्य प्रमुखत: सामान्तों का साहित्य हैं इस साहित्य में सामंती सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक व्यवस्था के जिन सन्दर्भों का वर्णन किया गया है, वे अतिश्याक्तिपूर्ण अवश्य हैं पर उसमें यथार्थता भी है जिसे नकारा नहीं जा सकता। सामंतों की उपरोक्त संस्कृति के अनेक चित्र इसमें सरलता से खोजे जा सकते हैं। विलासिता की प्रत्येक वस्तु के प्रति उनका गहरा लगाव है। कंचन और कामिनी के प्रति जितने वे जागरूक हैं उतने निम्न और निम्न मध्यवर्ग के प्रति नहीं। सामाजिक कुरीतियों के अन्तर्गत बहु-विवाह, अनमेल-विवाह, गन्धर्विवाह, सतीप्रथा जैसे अनेक रीति-रिवाजों का प्रचलन था। 'पृथ्वीराज रासो' में इन सामाजिक कुरीतियों का सविस्तार वर्णन मिलता है। उस काल में धर्म के नाम पर हिन्दू-मूसलमानों में आए दिन युद्ध होता रहता था।

''दोउ दीन दीनं कढी बंकि अस्सी।

किधौं मेघ में बीज कोहिन्नि कस्सीं।।

किये सिप्परं कोर ता सेल अग्गी।

किधौं बद्दर कोर नागिन्न नग्गी।।''

5.5.1.3. युद्धों का जीवन्त वर्णन सामान्य जन-जीवन नगण्य—चारण काल की रचनाओं में सामंती परिवेश ओर जीवन को विभिन्न स्तरों के माध्यम से चित्रित किया है। इसमें सामान्य जन-जीवन का वर्णन नगण्य रहा है। दरबारी रचनाकारों से इस प्रकार की अपेक्षा करना गलत होगा कि वे सामान्य जन-जीवन की व्याख्या करें। उस समय के रचनाकार अपने आश्रयदाताओं को युद्ध के लिए प्रेरित करने वाली कविताओं का सृजन किया करते थे। यथा—

''बज्जिय घोर निसानं सन चौहान चहूँ दिसि।

सकल सूर सामंत समर बल जंत्र मंत्र तिसी''।।

उठ्ठि राज प्रथिराज वाग लग्ग मनहु वीर नट।

कढ़त तेग मन बेगं लगत मनहु बीजु घट्ट।।''

5.5.1.4. अर्द्धप्रामाणिक रचनाओं की अधिकता—चारण साहित्य के अन्तर्गत आने वाली अधिकांशत: रचनाएँ अर्द्धप्रामाणिकता के झूले पर झूल रही हैं। 'पृथ्वीराज रासो' प्रामाणिकता के अभाव में पूर्ण प्रतिष्ठा नहीं पा सकी। 'खुमाण रासो' (आल्हाखण्ड) की जो प्रति उपलब्ध है उसका रूप बदला हुआ है।

विषयवस्तु और शिल्प की दृष्टि से इन रचनाओं के संबंध में कहा जा सकता है कि इनमें कई शताब्दियों में परिवर्तन और परिवर्द्धन होते रहे हैं जिसके कारण इनका मूल रूप खत्म-सा हो गया है।

5.5.1.5. प्रकृति के बहुआयामी स्वरूप की चर्चा—चारण साहित्य में प्रकृति के भिन्न-भिन्न स्वरूप की चर्चा की गई है। उनमें प्रमुख ये हैं—आलम्बन, उद्दीपन, परिगणन, आलंकारिक, मानवीकरण आदि। प्रकृति को जहाँ आलम्बन और परिगणन रूप में प्रस्तुत किया गया हैं वहाँ यथार्थता की प्रधानता है, शेष प्रकृति-प्रस्तुत में काल्पनिकता की अधिकता है। इनमें ऋतुओं के जो चित्र उकेरे गए हैं उनमें अवान्तर रूप से कहीं पुरुष और कहीं स्त्री-विरह ही माध्यम बने हुए हैं। भावप्रवणता और प्राकृतिक सौन्दर्य के स्तर पर प्रकृति का उद्दीपन रूप अनुपम हैं बसंत ऋतु का चित्रण करते हुए कवि चन्दबरदाई लिखते हैं—

''मवरि अंब फुल्लिंग कदंपब रयनी दिघ दींस।

भंवर भाव भुल्ले, भ्रमंत मकरंदव सींस।

बहत बात उज्जलति, मोर अति विरह अगति किय।

कुलकहंतकल कंठ, पत्र राषस रवि अग्गिय''।

5.5.2. भावपरक प्रवृत्तियाँ—

5.5.2.1 वीर तथा शृंगार रस वर्णन—तत्कालीन साहित्य में दो प्रकार की रचनाएँ लिखी हैं प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य। दोनों ही प्रकार की रचनाओं में शृंगार या वीर रस की उद्भावना अवश्य देखी जा सकती है। प्रबन्ध काव्यों में एक साथ दोनों रसो का चित्रण मिलता है। चारणों ने अपनी रचनाओं में एक ओर युद्धों के वर्णन में वीरता और पराक्रम की अद्भुत सृष्टि की है। तो दूसरी ओर रूप-सौन्दर्य, वस्तु-सौन्दर्य और प्रेम से परिपूर्ण सरस चित्र भी उतारे हैं। नारी दोनों रसों के केन्द्र में हैं। नारी प्राप्ति के लिए ही युद्ध होता है और उसकी प्राप्ति के बाद वातावरण विलासपूर्ण हो जाता है। 'पृथ्वीराज रासो' एक ऐसा अनूठा ग्रंथ हैं जिसमें वीर और शृंगार रसों की नियोजना के लिए ही अन्य रसों को भी समाहित किया गया है। शृंगार रस का उदाहरण दर्शनीय है—

''चंद बदन चष कमल, भौंह जनु भ्रमर गंधरत।

कीर नास बिबोष्ठ दसन दामिनी दमक्कत।

भुज प्रनाल कुच कोक, सिंह लंकी गति वारून।

कनक कंति दुति देह, जंघ कदली दल आसन।''

इन रचनाकारों की रचनाओं का प्रमुख सरोकार सामंतों के विलासपूर्ण जीवन तथा उनकी वीरता और पराक्रम को वर्णित करना था।

5.5.2.2. विरहानुभूति वर्णन—इस काल के सांमतों की यह विशेषता थी कि वे एक साथ कई नारियों से प्रेम करते थे। उनके जीवन में नई नारियों का क्रम लगातार चलता रहता था। नई नारियों के आ जाने पर पुरानी नारियों के प्रगति सामंतों की प्रीत कमजोर पड़ जाती थी। जिससे वे निरंतर दुखी रहती थी। कभी-कभी विरहानुभूति का कारण प्रवास भी हुआ करता था। 'बीसलदेव रासो' एक विरह प्रधान काव्य है जिसमें मान और प्रवास से ही विरह का प्रारम्भ दिखाया गया है। इस काल में नारी की कोई सामाजिक स्थिति नहीं थी। वह मात्र विलासिता की वस्तु थी। उसका समाज में कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। 'पृथ्वीराज रासो' में संयोगिता के विरह-वर्णन का दृश्य अनूठा रहा है—

''बढ़ि वियोग बहुबाल, चंद विय पूरन मान।

बढ़ि वियोग बहुबाल, वद्ध जीवन सम मानं।

बढ़ि वियोग बहुबाल, दीन पावस रिति बढ्ढै।

बढ़ि वियोग बहुबाल, जज्जि कुल बधु दिन चढ्ढै।''

उस बाला का वियोग ऐसे बढ़ा जैसे द्वितीय का चन्द्रमा दिन प्रतिदिन बढ़ कर पूर्णिमा तक विकसित होता है या जैसे यौवन वृद्धावस्था की ओर बढ़ने लगता है या जैसे पावस की रात बढ़ती है या दिन चढ़ने पर कुलवधू की लज्जा।

5.5.3. शिल्पगत प्रवृत्तियाँ—

5.5.3.1. रासो काव्य ग्रन्थों का सर्जन—सामंतों के आश्रय में रहकर चारणों ने जिन काव्य ग्रन्थों की रचना की हैं उन ग्रंथों के नाम के साथ रासों शब्द जुडा हुआ है। इस रासो शब्द के सन्दर्भ में अनेक विचार प्रचलित हो चुके हैं। अनेक विद्वानों ने इस शब्द की व्युत्पति राजसूर्य (गार्सा द तासी), रासा (डॉ० हरप्रसाद शास्त्री), रासक (पं० चनद्रबली पाण्डेय) और रसिया शब्दों आदि से मानते हैं। जो नवीनतम खोजों के आलोक में समीचीन नहीं है। पं० मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या के अनुसार—"रासो शब्द संस्कृत के 'रास अथवा रासक' से बना है और संस्कृत भाषा में 'रास' के शब्द, ध्वनि, क्रीडा, शृंखला, विलास, गर्जन, नृत्य और कोलाहल आदि के अर्थ और रासक के काव्य अथवा दृश्य काव्यादि के अर्थ प्रसिद्ध है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'रासो' शब्द का मूल रूप 'रासक' को माना है। 'रासक' एक छंद भी है औरा काव्य रूप भी।

5.5.3.2. काव्य रूप—चारण साहित्य में सांमतों के चरित्रों को उद्घाटित करने के लिए जिस अतिरंजनापूर्ण शैली को अपनाया गया था, वे प्रबन्ध काव्य के अधिक निकट थी। वीर और पराक्रम के साहसपूर्ण कारनामों और साहसिक कार्यों को मुक्तक काव्य की अपेक्षा प्रबंध काव्य में सफलतापूर्वक वर्णित करने की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं। इसलिए इन चरितप्रधान काव्यों में प्रबंधात्मक शैली को ग्रहण किया गया।

5.5.3.3. अलंकार विधान—अलंकारों के प्रयोग से काव्यवस्तु की शोभा बढ़ जाती है। चारणों की कविता में अलंकारों का प्रयोग इसी आश्य से किया गया है। अलंकार यही अंग न होकर अंगी है। शब्दालंकार के रूप में इन काव्यों में अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति के अच्छे प्रयोग दिखलाई पड़ जाते हैं। यमक अलंकार का उदाहरण दृष्टव्य है—

"अंग सुलच्छिन हेम तन, नग धरि सुदरि सीस।

गौरी ग्रहि गोरी गयो, बिना जुद्ध बुझि रीस"।

इन रासो ग्रंथों में अर्थालंकार के फलन प्रयोग भी किए गए हैं। उपमा, रूपक, उत्पेक्षा, संदेह, दीपक, भ्रम, अतिश्योक्ति, प्रतीप दृष्टान्त जैसे अनेक अलंकारों का प्रयोग काव्य-परम्परा को ध्यान में रखकर किया गया है। प्रचलित उपनामों के साथ कुछ नवीन उपनामों के प्रयोग से वस्तु, भाव और शिल्प में रोचकता और प्रभाव बढ़ा है। वे नवीन उपनाम अपनी अर्थ सुलभता और लोक-प्रसिद्धि के कारण अर्थ-गौरव में भी नि:संदेह वृद्धि कर सके हैं। यथा—

"जनू छैलनि कुलटा मिलै। बहुत दिवस रस षंक॥"

सांगरूपकों के प्रयोग से चारणों ने पुरातन कथा सूत्रों सौन्दर्य और मौलिक उद्भावनाओं को साकार रूप दिया है—

"बाल नाल सरिता उतंग। आनंग अंग सुज॥

रूप सु तट मोहन तड़ाग। भ्रम भए कटाच्छ दुज।"

(i) छंद विधान—रासो साहित्य में छंदों के विविध प्रयोग मिलते हैं जिनमें कुछ ऐसे हैं जिनके रूप का पता नहीं है। छंदों के प्रयोग से रचनाकार की प्रतिभा औरा दूरदर्शिता का पता चलता है। मात्रा और वृत्त से संबंधित इन छंदों को प्रयोग रासो में अधिक हुआ है। यथा—आर्मा, दूहा, पद्धरी, चौपाई, रासा, रोला, सोरठा,

करषा, साटक, छप्पय आदि। 'पृथ्वीराज रासो' में अडसठ छंदों का प्रयोग मिलता है। इससे यह स्पष्ट हो जा है कि इस काल में रचनाकारों को छंदों का विशिष्ट ज्ञान था। छंदों के सर्वाधिक प्रयोग के कारण ही 'चन्दवरदाई' को 'छप्पय का राजा' कहा गया है।

(ii) शिल्प विधान—शिल्प एक गतिशील प्रक्रिया है। जो रचना की सृजनात्मकता को सार्थक बना है। शिल्प का रचाव बहुत कुछ भाषा के रचाव पर निर्भर करता है। भाषा की एक विशेष संरचना होती है रचनाकार लोक—जीवन से उन सार्थक शब्दों को चुनता है जो उनके वस्तुलोक और भावलोक को सम्प्र करते हैं। रचना की सम्प्रेषणीयता के आधार यही शब्द हैं चारणों ने रचना को स्तर पर जिन भाषाओं का प्रयो किया है वे डिंगल और पिंगल भाषाएँ हैं, ये भाषाएँ लोकजीवन से जुड़ी हुए भाषाएँ हैं। लोक से जुडे हुए शब्द लोकोक्तियों और मुहावरों से भाषा सजीव और जीवंत हो गई है। शैली का जुड़ाव रचनावस्तु से होता रचनावस्तु को प्रभावी बनाने के लिए वह जिस प्रणाली को अपनाता है उसे ही 'शैली ' कहते हैं। चारण साहित्य का अपना एक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और साहित्यक महत्व है। ऐतिहासिक परिप्रेय में यह साहित्य सा सामतों के शोषण-कर्म को उजागर करता है जिसका संबंध जर, जोरू और जमीन से था। उनके द्वारा जो यु युद्ध किए जाते रहे उनका संबंध केवल उन्हीं से था। सामान्य जनता से इसका दूर तक नाता नहीं था। युद्ध व जीत रूप में हस्तगत नारी केवल सामंतों की भोग्या बन कर रह गई थी। सामान्य जनता के हित-चिन्तन जै सरोकारों से उसका कोई संबंध नहीं था। राजनीति के नाम पर जो भी हथकण्डे अपनाए जाते थे उससे मा सामंतों का हित-चिन्तन होता था। युद्ध इस काल में सामंतों की प्रसिद्धि और गौरव का कारण बने हुए थे। मान समाज और सर्वहारा वर्ग के बारे में सोचने के लिए उनके पास अवकाश नहीं था। युद्ध जाति विशेष का पेश बन गया था। इन सामतों के दो ही कर्म प्रमुख थे—युद्ध करना और युद्ध से प्राप्त वस्तुओं का उपभोग करना नारियों को भोग्य वस्तु बनाकर इन सामंतों ने अपने सामाजिक स्तर को और भी गिरा दिया था। बाह आक्रमणों ने देश, जाति और समाज की स्थिति को अवन्ति के कगार पर पहुँचा दिया।

5.6 लौकिक साहित्य

आदिकालीन साहित्य में धार्मिक साहित्य और चरणों की प्रशस्तिपरक रचनाओं से जिन दूसरे प्रकार के साहित्य की लोकधारा भी प्रवाहशील थी। लौकिक साहित्य ने जीवन की रची-बसी विषय बनाया इसलि कविता या गद्य अलंकार न होकर जीवन की स्वाभाविक दशाओं का वर्णन हैं लौकिक साहित्य के विभिन्न अं केवल शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से ही अध्ययन के विषय न होकर सांस्कृतिक अर्थात मानव विज्ञान तथ समाजशास्त्र की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में जैन एवं सिद्ध साहित्य धर्मश्रित होने के कारण तथा रासो साहित राजश्रित होने के कारण सुरक्षित रह गया, परन्तु इस काल में इन दोनों काव्य धाराओं से भिन्न लोक साहित्य व भी रचना हुई लेकिन वह लोकश्रित होने के सुरक्षित न रह सका। अनेक कारणों से वह साहित्य लुप्त हो गय विभिन्न लोकागीतों के माध्यम से लोक में जो थोड़ा-बहुत शेष रह गया उससें इतना अवश्य ज्ञात होता है कि आदिकाल में लौकिक साहित्य भी लोक प्रचलित रहा है। उपलब्ध लोक साहित्य में "ढोला मारू रा दूहा" "बीसलदेव रासो", "बसन्त विलास", "राउलवेल", "उक्ति व्यक्ति प्रकरण", "वर्ण रत्नाकर", "अमी खुसरो की रचनाएँ" तथा "विद्यापति की पदावली" को देखकर तत्कालीन लोक साहित्य के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है।

5.7 संदेश रासक

संदेश रासक की रचना बारहवीं-तेरहवी शताब्दी में अपभ्रंश भाषा में हुई थी परन्तु वह अपभ्रंश भाष बोलचाल के अधिक नजदीक थी। संदेश रासक दूत काव्य है। दूत काव्य की परम्परा संस्कृत और प्राकृत में भ

मिलती है। मेघदूत के पूर्व-मेघ और उत्तर मेघ के समान संदेश रासक तीन प्रक्रमों में विभाजित है। प्रथम प्रक्रम प्रस्तावना रूप में द्वितीय प्रक्रम में वास्तविक कथा का प्रारम्भ होता हैं और तृतीय रूप में षड़ऋतु का वर्णन होता है।

5.8 गद्य रचनाएं

आदिकाल में जितने प्रकार की गद्य रचनाएं मिलती हैं उनमें कहीं न कहीं तत्कालीन जीवन की यथार्थताओं का वर्णन हैं इस युग की गद्य कृतियों में दामोदर भट्ट रचित 'उक्तिव्यक्तिप्रकरण' (12 वी शताब्दी) ज्योतिरीश्वर ठाकुर कृति 'वर्ण रत्नाकर' (14 वी शताब्दी) तथा विद्यापति की 'कीर्तिलता' ओर 'कीर्तिपताका' (14 वीं शताब्दी का नाम उल्लेखनीय है।)

5.9 ढोला मारू रा दूहा

राजस्थान में जन-जन का कण्ठहार "ढोला मारू रा दूहा" है। जिसमें कछवाहा वंश के राज नल के पुत्र ढोला और पूगल के राजा पिंगल की रूपवती कन्या मारवाणी की प्रेमकथा है। यद्यपि मूल कथा का सम्बन्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों से है, किन्तु राजस्थान के लोक जीवन से जुड़ने के कारण यह काव्य कृति पश्चिमी राजस्थान में अति लोकप्रिय हैं यह एक लोकगाथा काव्य है जो राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है। राजस्थान में ढोला और मारवणी को प्रेम के प्रतीक के रूप में स्मरण किया जाता है। "सन्देश रासक" एवं 'बीसलदेव रासो'" की भाँति यह भी एक विरहकाव्य है। जिसका कथासार इस प्रकार है—बचपन में ही ढोला और मारवणी का विवाह हो जाता है। युवा होने पर मारवणी अपने बचपन के पति ढोला की चर्चा सुनती है तो इसके विरह में व्याकुल हो जाती है। वह अपने पति का पता लगाने के लिए कई संदेशवाहक भेजती है लेकिन कोई लौटकर नहीं आता। सभी संदेश वाहकों को मारवणी की सौत मालवणी मरवा देती है और ढोला तक संदेश पहुँचने नहीं देती। अन्त में मारवणी लोकगीत के गायक ढाढ़ी को संदेश देकर भेजती है। वह ढोला तक पहुँचने में सफल हो जाती है। ढाढ़ी के प्रयतन से ढोला और मारवणी का पुनर्मिलन होता है।

"ढोला मारू रा दूहा" में परम्परागत बारहमासा का वर्णन नहीं मिलता। इसमें केवल पावस ऋतु का वर्णन है और वह भी विस्तार से। "ढोला मारू रा दूहा" में मारवाड का वास्तविक जीवन प्रतिबिम्बित हो उठा हैं इसमें राजस्थानी जनजीवन, प्रकृति, समाज, वातावरण, लोकाचार एवं लोकविश्वासों का जैसा सरस सजीव और स्वाभाविक चित्र उभरा है, वैसा अन्यत्र दुलक्ष है। शैली की दृष्टि से 'ढोला मारू रा दूहा" लोकगीत की श्रेणी में आता है।

5.10 बीसलदेव रास्गे

हिन्दी के आदिकाल की इस श्रेष्ठ रचना के रचनाकार नर पति नाल्ह है। यह एक प्रेम काव्य है, जिसमें संयोग-वियोग के गीत गाये गए है। इस कृति में अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज (बीसलदेव) तथा भोज परमार की पुत्री राजमती के विवाह, वियोग एवं पुनर्मिलन की कथा सरल एवं सरस शैली में प्रस्तुत की गई है। राज बीसलदेव अपनी नवविवाहिता रानी राजमती के व्यंग्य बाणों से रुष्ट होकर उड़ीसा राज्य चला जाता है तथा बारह वर्ष तक लौटकर, नहीं आता । पति के वियोग से अत्यन्त दुखित रानी एक पंडित द्वारा अपने पति बीसलदेव को सन्देश भेजती है। अन्त में बीसलदेव के लौट आने पर दोनों का पुनर्मिलन हो जाता है। सम्पूर्ण कथा 120 छन्दों और चार खण्डों में विभक्त है।

बीसलदेव रासो में शृंगार रस के संयोग ओर वियोग दोनों पक्षों का बड़ा ही सुन्दर एवं हृदयग्राही वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है। प्रेषितपतिका की विरह व्यन्जना बड़ी मार्मिक बन गई है। बारहमासा वर्णन के अन्तर्गत प्रकृति का चित्रण बढ़ा ही सजीव बन गया है। बिरह काव्य होने के कारण बीसलदेव रासो में संयोग के मंसलता पूर्ण चित्तों का प्राय: अभाव है। इस काव्य की नायिका राजमती की आत्म विद्रोहिणीमन अभिमानी और

जबान प्रखर है। उनका चरित्र बड़ा ही सजीव तथा बिलक्षण बन पड़ा है। "मध्ययुग के समूचे हिन्दी साहि जबान की इतनी तेज और मन की इतनी खरी नायिका नही दीख पड़ती है।" अभिव्यक्ति की ताजगी और की तीव्रता के कारण यह रचना लोकमानस में अपना अक्षुण स्थान बनाए हुई है।

5.11 उक्ति-व्यक्ति प्रकरण

इस ग्रन्थ की रचना दामोदर शर्मा ने की है। 12 वीं शताब्दी का यह एक महत्वपूर्ण "व्याकरण ग्र माना जाता है, इसमें बनारस और आसपास के प्रदेशों की तत्कालीन संस्कृति और भाषा आदि पर पर्याप्त प्र डाला गया है। इसकी भाषा के अध्ययन से तत्कालीन गद्य और पद्य दोनों शैलियों की हिन्दी भाषा में त पदावली के प्रयोग की बढ़ती हुई प्रवृति का पता चलता है। अत: हिन्दी भाषा के ऐतिहासिक अध्ययन मे ग्रन्थ अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ है।

5.12 वर्णरत्नाकर

मैथिली हिन्दी में रचित गद्य का यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं इसका लेखक ज्योतिशेखर ठाकुर न मैथिल कवि था। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार इसकी रचना चौदहवी शताब्दी में हुई होगी। यह शब्दकोशनुमा ग्रन्थ है, परन्तु सौन्दर्य ग्राहिणी प्रतिभा भी उसमें निहित है। उसकी भाषा में कवि अलंकारिकता, तथा शब्दों की तत्समता की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। हिन्दी गद्य के विकास में 'राउलवेल' पश्चात "वर्णरत्नाकर" का योगदान भी कम नहीं कहा जा सकता।

5.13 राउलवेल

वह गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू-काव्य की प्राचीनतम हिन्दी कृति है। इसका रचयिता रोढ़ा नामक कवि जाता है। विद्वानों ने इसका रचना-काल दसवीं शताब्दी माना हैं इसकी रचना "राउल" नायिका के नखशि वर्णन के प्रसंग में हुई है। आरम्भ में कवि ने राउल के सौंदर्य का वर्णन पद्य में किया है और फिर गद्य का प्र किया गया है। इस कृति से ही हिन्दी में नखशिख वर्णन परम्परा आरम्भ होती है। इसकी भाषा में हिन्दी की बोलियों के शब्द मिलते हैं, जिनमें राजस्थानी प्रधान है। कवि ने विषय वर्णन बड़ी तन्मयता से किया है। नायि राउल का शृंगार आकर्षण से भरा हुआ है। वह सहज रूप में जितनी सुन्दर है उतनी ही सहज-सुन्दर उस सज्जा भी है। इस सौन्दर्य के अनुकूल ही उसकी भाव-दशा भी है।

5.14 बसन्त विलास

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने विभिन्न प्रमाण देकर "बसन्त विलास" की रचना-काल 13 वी 14 वी शत मध्य का माना है। इस कृति के रचयिता का पता नहीं चल पाया है। "यह एक अत्यधिक सरस साहित्यिक है और आधुनिक भारतीय आर्य-भाषा-साहित्य के आदिकाल के इतिहास में बेजोड़ है।" इस रचना में चौर दोहों में बसन्त ऋतु और स्त्रियों पर उसके विलासपूर्ण प्रभाव का मनोहारी वर्णन हुआ है। इस काव्य में प्रकृ और नारी दोनों का मदोन्मत रूप शृंगार रस की तीव्र धारा प्रवाहित करना है। डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' शब्दों में—'स्त्री-पुरूष-प्रकृति-तीनो में अजस्त्र बहती मदोन्मतता का इस काव्य में जैसा वर्णन मिलता है, रीतिकालीन हिन्दी कवि भी नहीं कर सके। इसकी भाषा सरस ब्रजभाषा है जिसका विकास परवर्ती भक्तिकाल कृष्णकाव्य में और रीतिकाव्य में दिखाई देता है।'

5.15 अमीर खुसरो

अमीर खुसरों बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्हें विविध विधाओं में निपुणता हासिल थी। इतिहास कवि संगीत आदि विविध विषयों पर उन्होंने लेखनी चलाई है। वे कई भाषाओं के जानकार थे। फारसी,

ब्रजभाषा, खड़ी बोली व अन्य भाषाओं में वे समान अधिकार के साथ लिख सकते थे। खुसरो मिलनसार तथा खुशमिजाज स्वभाव के थे। उन्होंने जनता में प्रचलित पद्य, पहेलियो तथा मुकरियों को अपनाया। उनके दोहे व पहेलियों में एक खास प्रकार की तुक बन्द थी। कहीं-कहीं तो उन्होंने फारसी भाषा और ब्रजभाषा की संगीतात्मक ध्वनि को एक साथ पिरो दिया। दो विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के छन्द को एक साथ मिलाने का आसाधारण कार्य कोई दृष्टि सम्पन्न अध्येता ही कर सकता है। सितार और तबले जैसे वाघयंत्र के निर्माण का श्रेय भी खुसरों को दिया जाता है। खुसरो द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या सौ बताई जाती है। जिनमें से 20-22 ही उपलब्ध है। खलिकबारी, पहेलियां मुकरिया, दो सुखने, गजल आदि अधिक प्रसिद्ध है खुसरों की मुकरिया जनता के बीच अधिक लोकप्रिय हैं अमीर खुसरों ने ब्रजभाषा में गीत और कटवालियों को रचा जो पीढ़ी आज भी मौखिक रूप में प्रचलित है। उन्होंने ऐमान गोरा समन जैसे अरबी और ईरानी रागों को हिन्दी प्रदेशों में प्रचलित किया।

अमीर खुसरो की रचनाएँ—आदिकाल में शिष्ट हास्य तथा विनोद मूलक रचनाएँ खड़ी बोली में प्रस्तुत करने का श्रेय अमीर खुसरो को है। इनका वास्तविक नाम अबुल हसन था। आदिकाल में खडी बोली का काव्य की भाषा बनाने वाले अमीर खुसरो प्रथम कवि है। इन्होंने हिन्दू-मुस्लिमों के बीच एकता स्थापित करने का सर्वप्रथम प्रयास किया था। खुसरों अनेक भाषाओं के विद्वान थे। तुर्की, अरबी, फारसी, ब्रज ओर खडीबोली पर इन्हें समान अधिकार प्राप्त था। मनोरंजन के माध्यम से लोक-व्यवहार की शिक्षा देना ही उनके साहित्य का उद्देश्य था। कविता के राजाश्रय में पलने के कारण सामान्य जनता से उसका सम्बन्ध टूट चुका था। खुसरों के प्रयत्न से वह फिर से जनसामान्य के समीप आ गयी। इसके विषय में डॉ० रामकुमार वर्मा का कथन सटीक जान पड़ता है—"चारणकालीन रक्तरंजित इतिहास में जब पश्चिम के चारणों की ड़िगल कविता उद्धत स्वरों में गूँज रही थी और प्रतिध्वनि और भी उग्र थी। पूर्व में गोरखनाथ की गम्भीर धार्मिक प्रवृत्ति आत्मशासन की शिक्षा दे रही थी, उस काल में अमीर खुसरो की विनोदपूर्ण प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक महान निधि है। मनोरंजन और रसिकता का अवतार यह कवि अमीर खुसरो अपनी मौलिकता के कारण स्मरणीय रहेगा।"

खुसरो द्वारा रचित सौ के लगभग रचनाएँ मानी जाती है किन्तु उपलब्ध रचनाओं की संख्या बीस-बाईस से अधिक नहीं हैं। जिनमें फुटकर पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो सुखने ढकोसला आदि प्रसिद्ध है। इनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

दो सुखने— 1. पान सड़ा क्यों ? घोड़ा अड़ा क्यों ? (फेरा न था)

2. ब्राह्मण प्यासा क्यों ? गधा उदासा क्यों ? (लोटा न था)

ढ़कोसला— "खीर पकाई जतन से, चर्खा दिखा चलाय।

आया कुत्ता खा गया तु बैठी ढ़ोल बजाया।"

पहेलियाँ— 1. "एक थाल मोलियों से भरा, सबके उपर औंधा धरा।

चारों तपरु वह थाल फिरै, एक भी मोती नीचे न गिरे।" (आकाश)

2. "एक कहानी में बहूँ, सुन ले तू मेरे पुत।

बिना परों के वह उड़ गया, बाँध गले से सूत।" (पतंग)

मुखरियाँ— 1. "वह आवे तब शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय।"

मीठे लागे बाके बोल, क्यों सखि साजन न सखि ढोल।"

2. "जब मेरे मन्दिर में आवे, सोते मुझकों आन जगावे।

पढ़त फिरत वह विरह के अच्छर सखि साजन ना सखि मच्छर।"

5.16 विद्यापति की पदावली

बिहार के दरभंगा जिले में विसपी गाँव में जन्में विद्यापति हिन्दी के आदि गीतिकार माने जाते हैं। मधुर गीतों के रचयिता होने के कारण इन्हें अभिनव जयदेव के नाम से भी जाना जाता है। विद्यापति महान पण्डित थे। उन्होंने अपनी रचनाएँ संस्कृत, अवहट्ट और मैथिली भाषा में लिखी। हिन्दी साहित्य में विद्यापति की अक्षुण्ण कीर्ति का आधार अनके तीन ग्रन्थ हैं—कीर्तिलता, कीर्तिपताका और पदावली। विद्यापति पदावली में उन्होंने राधा-कृष्ण प्रणय-लीलाओं का अत्यन्त हृदयहारी वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में इनके आदर्श कवि जयदेव रहे हैं। जयदेव के गीत-गोविन्द से प्रभावित होकर उन्होंने पदावली का प्रणयन किया है। पदावली में इनका शृंगारी रूप पूर्णत: उभर आया है। वैसे तो शृंगार के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग का वर्णन इस ग्रन्थ में उपलब्ध होता है पर जो तन्मयता संयोग शृंगार के चित्रण में दिखाई देती है, वह वियोग पक्ष में नहीं। वस्तुत: विद्यापति संयोग पक्ष के सफल गायक है और प्रेम के परम पारखी है। विद्यापति अपने राधा-कृष्ण सम्बन्धी मधुर गीतों के लिए हिन्दी साहित्य में सदैव अमर रहेंगे।

5.17 लौकिक साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

आदिकालीन साहित्य में रासो साहित्य तथा धार्मिक साहित्य के साथ-साथ साहित्य की एक अन्य धारा भी प्रवाहित होती दिखाई देती है, जिसे लैकिक साहित्य के नाम से जाना जाता है। राजाश्रय और धर्माश्रय से सर्वधा विमुख यह साहित्य लोकाश्रय में पुष्पित एवं पल्लवित हुआ है। इस साहित्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित है—

(1) लोकमानस से आप्लवित साहित्य—लोकतत्व के संस्पर्श से खान्त: सुखाय लौकिक साहित्य अत्याधिक सरस और प्रभावकारी बन गया है। रासो साहित्य में जहाँ राजाओं-सामन्तों के मन के हास-उल्लास का चित्रण है, वहाँ इस काव्य में लोक-मानस में उठने वाली हास-उल्लास की तरंगे हैं। यहाँ की राजमती ढ़ोला, या राधा में सामान्य नारी अपने भावों को प्रतिबिम्बित पाती है। चाहे वह भाव संयोग के हो या वियोग के। रूठे पति के उड़ीसा चले जाने के बाद राजमती जब यह कहने लगती है कि - "हे महेश! मुझे स्त्री का जन्म तुमने क्यों दिया? देने के लिए तो तुम्हारे पास और भी जन्म थे।" तो उसमें केवल राजमति की ही वेदना की अभिव्यक्ति नहीं होती, बल्कि वासनाभिभूत पुरूष के स्वार्थ और कामुकतायी रसिकता की शिकार तत्कालीन हर नारी की आत्मा का करूण क्रन्दन एवं चित्कार अभिव्यक्त होता है। 'ढोला मारू रा दूहा' की 'मारू' की वेदना भी तत्कालीन नारी वेदना का ही एक और स्तर है। इन कृतियों में वर्णित प्रेम महज एक शरीराकर्षित वासना नही है और अशरीरी काल्पनिक भी नहीं हैं, वह एक लौकिक भाव हैं, जिसमें मन और शरीर अभिन्न है। रासो और धार्मिक साहित्य तत्कालीन राजनैतिक धार्मिक परिवेश की उपज है और लौकिक साहित्य तत्कालीन जन-समाज की सांस्कृतिक गरिमा को अभिव्यक्त करता है।

(2) प्रकृति चित्रण—आदिकालीन लौकिक साहित्य में प्रकृति का चित्रण आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। श्रृंगार और प्रकृति का रिश्ता अटूट है। 'बीसलदेव रासो' में बारह मासों तथा ऋतुओं के प्राकृतिक चित्र संयोग और वियोग में उद्दीपन का कार्य करते हैं। विरह की विभिन्न दशाओं के वर्णन में बिजलियाँ, बादल प्रियविहित नायिका की वियोग दशा के वर्णन में चार चाँद लगा देते हैं। 'बसन्त विलास' में प्रकृति और नारी दोनों का मदोन्मत स्वरूप शृंगार रस की तीव्र धारा प्रवाहित करता है।

(3) बोली भाषा का परिष्कार—आदिकालीन लौकिक साहित्य में तत्कालीन काव्य-भाषा की अपेक्षा जन-बोलियों का प्रयोग हुआ है। इस धारा की प्राचीनतम् कृति 'राडलवेल' से मात्र लौकिक साहित्य की परम्परा ही शुरू नहीं होती बल्कि बोलचाल की भाषा का साहित्य के लिए प्रयोग करने की एक परम्परा भी शुरू हो जाती है। बीसलदेव रासो, ढ़ोला मारू रा दूहा और विद्यापति की पदावली में भी तत्कालीन स्वीकृत काव्य-भाषा से हटकर बोल-चाल की भाषा का सरस और सशक्त प्रयोग हुआ है।

(4) नख-शिख वर्णन-परम्परा का प्रणयन—'राडलबेल' आदिकालीन लौकिक साहित्य की एक महत्वपूर्ण रचना मानी जाती है जो गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू काव्य हैं इसी रचना से हिन्दी में नख-शिख वर्णन की परम्परा का आरम्भ होता है। बीसलदेश रासो, वसन्त बिलास, ढोला मारू रा दूहा और विद्यापति की पदावली में इस परम्परा का विकास देखा जा सकता है। यहाँ एक बात विशेष स्मरणीय है कि राउल, राजमति और मारू का नख-शिख वर्णन कहीं भी उद्दाम रूप में नहीं हुआ है। इन नायिकाओं के सौन्दर्य वर्णन में कुलीना गृहणी की मर्यादा को अबाधित रखा गया है।

(5) गेयता एवं संगीतात्मकता—भाव-प्रवणता स्वयं गेय होती है। इसीलिए इस धारा की लगभग सभी रचनाओं में गेयता और संगीतात्मकता पायी जाती है। नारी के सहज श्रृंगार से लेकर उसके मानसिक सौन्दर्य तथा पहुँचने की प्रवृत्ति आदिकालीन लैकिक साहित्य में प्रस्फुटित हुई हैं नख-शिख वर्णन, विरह के विभिन्न रूप, विरहिणी नायिका द्वारा प्रियतम के पास सन्देश प्रेषण ये लौकिक साहित्य के विभिन्न आयाम है। इसी कारण गेयता और संगीतात्मकता का समावेश इस साहित्य में हुआ है।

(6) संयोग और वियोग का सरस चित्रण—आदिकालीन लौकिक साहित्य में श्रृंन्गार के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग का सरस चित्रण हुआ है। 'वसन्त-विलांस' और 'विद्यापति की पदावली' का संयोग श्रृंगार मात्र इस काल को ही प्रभावित नहीं करता बल्कि परवर्ती काव्य को भी पर्याप्त मात्रा में प्रभावित करता है। 'वसंत विलास' में वसंत और स्त्रियों पर उसके विलासपूर्ण प्रभाव का मनोहरी चित्रण हुआ है वह अन्यत्र दुर्लक्ष है। विद्यापति की पदावली में संयोग श्रृंगार की सभी क्रीडाओं-भावों का अनुपम चित्रण हुआ है। विद्यापति संयोग श्रृंगार के कवि है। संयोग श्रृंगार का इतना बेजोड़ चित्रण रीतिकाल में भी दुर्लभ है।

लौकिक साहित्य का संयोग श्रृंगार जितना पुष्ट है, उससे कहीं अधिक वियोग श्रृंगार समृद्ध है। बीसलदेव रासो, ढ़ोला मारू रा दूहा विरह-वेदना के सहज और स्वाभाविक उच्छवास है।

(7) स्वान्तःसुखाय सृजन—आदिकाल का लौकिक साहित्य न तो रासो साहित्य के समान राजाओं, सामान्तों की वीरता का वर्णन करने के लिए लिखा गया है, न धार्मिक साहित्य के समान किसी विशिष्ट धर्म-मत के प्रचार के लिए लिखा गया है। यह कवि के भावों का सहज अविष्कार हैं। चाहे वह रोडा कवि का 'राउलवेल' हो या विद्यापति जैसे राजश्रित कवि का पदावली साहित्य हो या 'ढ़ोला मारा रा दूहा' 'बसन्त विलास' जैसे गुमनाम कवियों का साहित्य ही इसकी अभिव्यक्ति पर कोई बाह्य-प्रयोजन का बोझ नहीं है। यह साहित्य इन कवियों का स्वान्तःसुखाय सृजन है।

संदर्भित ग्रन्थ

सूफी मत साधना और साहित्य	—	रामपूज तिवारी
हिन्दी का गद्य साहित्य	—	रामचन्द्र तिवारी
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	—	राम कुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य की भूमिका	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
साहित्येतिहास: संरचना और स्वरूप	—	सुमन राजे
साहित्येतिहास आदिकाल	—	सुमन राजे
हिन्दी साहित्य का आदिकाल	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	डॉ० नगेन्द्र
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	—	गणेश बिहारी मिश्र
हिन्दी साहित्य परिचय	—	दयाशंकर शर्मा

हिन्दी साहित्य विमर्श	—	पं० लाल पु० लाल बक्शी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	—	रामकुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	—	रामरतन भटनागर
हिन्दी साहित्य परिचय	—	रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. रासो साहित्य की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए रासो काव्य परम्परा का विकास करने वाले बीसल देव का परिचय दीजिए।
2. खुमाण रासो और पृथ्वीराज रासों का परिचय देते हुए उनकी रचनाओं पर तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
3. विजयपाल रासों की वस्तु परक तथा कथ्यपक प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।
4. रासो साहित्य की शिल्पगत प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
5. अमीर खुसरों का परिचय देते हुए उनकी रचना की विशेषताओं को लिखिए।
6. लौकिक साहित्य की कौन-कौन-सी विशेषताएँ हैं? संक्षेप में लिखिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. निम्नलिखित पर अपने शब्दों में टिप्पणी लिखिए—

   (क) चंदनवाला रास (ख) परमाल रासो

   (ग) बसन्त विलास (घ) लौकिक साहित्य में प्रकृति चित्रण
2. 'रासो साहित्य सामन्ती-व्यवस्था प्रकृति और संस्कार से उपजा हुआ साहित्य है। इस विषय के पक्ष में अपने विचार लिखिए।
3. बीसलदेव रासो के विषय में डॉ० मेनारिया ने क्या विचार प्रकट किया है?
4. चारण साहित्य में काव्य के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

इकाई (Unit)

6

भक्तिकाल की पृष्ठभूमि

संरचना

6.1 उद्देश्य
6.2 प्रस्तावना
6.3 सामान्य परिचय
6.4 भक्तिकाल अर्थ एवं स्वरूप
6.5 परिस्थितियाँ अर्थ एवं महत्त्व
6.6 ऐतिहासिक परिस्थिति
6.7 सामाजिक परिस्थिति
6.8 धार्मिक परिस्थितियाँ
6.9 राजनीतिक परिस्थिति
6.10 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ
6.11 साहित्यिक परिस्थितियाँ
6.12 भक्तिकाल में साहित्यिक परिवेश
6.13 भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ
6.14 ईश्वर के प्रति उत्कृष्ट प्रेम
6.15 प्रेमभाव की अभिव्यक्ति
6.16 भक्ति भावना का प्राधान्य
6.17 समानता का भाव
6.18 गुरु महिमा एवं नाम स्मरण
बोध प्रश्न

6.1 उद्देश्य

- भक्तिकाल के अर्थ और स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे।
- परिस्थितियों के अर्थ एवं स्वरूप को बता सकेंगे।
- भक्तिकाल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का विश्लेषण कर सकेगें।
- भक्तिकालीन साहित्यिक विशेषताओं को बता सकेगें।

6.2 प्रस्तावना

इस खण्ड की प्रथमा इकाई में हम मुख्य रूप से भक्तिकालीन परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करेंगे। पाठ में पहले यह विचार किया जाएगा कि भक्ति काल का अर्थ क्या है? किन परिस्थितियाँ के कारण यह एक विशेषमय को भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है। फिर उसके स्वरूप की चर्चा करें। भक्तिकाल कहाँ से

आरंभ होता है' इस पर विचार किया जाएगा। किसी भी समय की परिस्थितियाँ किस प्रकार की परिस्थितियों व क्या प्रभाव पड़ता है। उसकी भी चर्चा करेगें। भक्तिकालीन साहित्य किस प्रकार का था। तत्कालीन परिस्थिति ने उस पर क्या प्रभाव डाला। इन सब बातों की जानकारी इस पाठ में दी जाएगी।

6.3 सामान्य परिचय

भारतीय धर्म साधना प्रेम भक्ति को विशिष्ट स्थान है। भक्ति के उद्‌भव के संदर्भ में कई विद्वानों अपने-अपने मत व्यक्त किए है। मोनियर विलियम्स के अनुसार भक्ति शब्द की उत्पत्ति 'भज्' शब्द से हुई जिस का अर्थ होता है—'भाग लेना'। भक्ति के प्रथम उल्लेख के संबंध में आचार्य, परशुराम चतुर्वेदी लिखा हैं—"भक्तिका सर्वप्रथम उल्लेख 'श्वेताश्वेतर उपनिषद्' (6/33) में मिलता है। यह भी उल्लेखनीय है कि आर्यों के भारत आने पर उन्हें यहाँ की यक्ष, किन्नर, गंधर्व, असुर, व्रात्य, विद्याधर आदि जातियों की नाग संस्कृति का परिचय मिला था। आर्य लोग मुख्यत: सैनिक जीवन के अभ्यासी थे और उनका जातीय जीव ग्रामीण संस्कृति पर आधारित था। इन दोनों के मिलन और पारस्परिक आदान-प्रदान से भारतीय संस्कृति का विकास हुआ, जिसकी छत्र छाया में भक्ति परम्परा का बीज विकसित हुआ।" कुछ विद्वानों का विचार है कि भक्तियुग का आविर्भाव राजनीतिक पराभव तथा अविच्छिन्न धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक भावना का परिणाम माना है। "देश में मुसलमानों की सत्ता के दौरान हिन्दू देवमूर्तियाँ तोड़ी जा रही थी और हिन्दू जनत हताश हो गई थी। आचार्य रामचंद्र शुक्लजी लिखते हैं—"राजनीतिक उलट फेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय प बहुत दिनों तक उदासी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओ ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?" बाबू गुलाब राय का मत है—"मनोवैज्ञानिक तथ्य के अनुसार हारकी मनोवृत्ति में दो बातें संभव है या तो अपनी आध्यात्मिक श्रेष्ठता दिखाना या भोगविलास में पड़कर हार को भूल जाना। भक्तिकाल में लोगों में पहले प्रकार की प्रवृत्ति पाई गई।"

पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय धर्म साधना में भक्ति का उदय के संदर्भ में पाश्चात्य विद्वान वेवर, कीथ ग्रियर्सन तथा विल्सन आदि ने भक्ति को ईसाई धर्म की देन बताया है। ग्रियर्सन का कहना है कि ईसा क दूसरी-तीसरी शादी में कुछ ईसाई मद्रास आकर बसे थे जिनके प्रभाव से भक्ति का विकास हुआ। कुछ विद्वान ने कहा कि भारतीय भक्ति आंदोलन मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क की देन है और शंकराचार्य, निम्बार्क, रामानुज रामानंद, वल्लभाचार्य, आलवार संत तथा वीरशैव और लिंगायत आदि शैव सम्प्रदायों की दार्शनिक मान्यताओं पर मुस्लिम प्रभाव है। हमारे भारतीय विद्वानों ने पाश्चात्य विद्वानों के उक्त मतों का खंडन कर भक्ति का मूल उद्‌गम प्राचीन भारतीय स्रोतों से सिध्द किया है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य में भक्ति के उदय के संबंध में लिखा है– "यह बात अत्यंत उपहास्पद है कि जब मुसलमान लोग उत्तर भारत के मंदिर तोड़ रहे थे तो उसी समय अपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलमानों के अत्याचार से यदि भक्ति की भाव धारा को उमड़ना था तो पहले उसे सिद्ध में और फिर उसे उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर हुई दक्षिण में।"

डॉ० सत्येन्द्र भक्ति का उदय द्राविडों से मानते हुए लिखते हैं—"भक्ति द्राविडी उपजी लाये रामानन्द।' इस उक्ति के अनुसार भक्ति का अविर्भाव द्राविडों में हुआ। उक्ति कर्ता सम्भवत: नहीं जानता था कि वह इन शब्दों पर कितने गहरे सत्य को प्रकट कर रहा है। उसका द्राविड से अभिप्राय संभवत: दक्षिण देश से ही था किन्तु जैसा संकेत किया जा चुका है, नई प्रागैतिहासिक खोजों में यह सिद्ध-सा होता है कि भक्ति का मूल द्राविडों में है और दक्षिण के द्राविडों में ही नहीं, उनके महानपूर्वज 'मोहनजोदड़ों' और 'हडप्पा' के द्राविडों मे भी। अभी संसार को जितने भी प्रमाण प्राप्त है उनसे यह सिद्ध होता है कि मोहन जोदड़ों और हडप्पा के द्राविड अथवा व्रात्य एकेश्वरवादी थे। उनके ईश्वर का नाम शिव था। ....आर्यों ने भक्ति का भाव दक्षिण से प्राप्त किया

था।'' भक्ति का प्रतिपादन महाभारत और गीता में प्राप्त होता है। उसमें वासुदेव की उपासना-पद्धति का निरुपण किया गया है, वह भक्ति भावना का प्रारंभिक स्वरुप है।

नारदभक्ति सूक्त में भी भक्ति का विवेचन किया गया है। भक्ति के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता है। नारद ने भक्ति को कर्म-ज्ञान और योग की अपेक्षा श्रेष्ठतर बताया है। बारहवी शताब्दी में आचार्य मध्वाचार्य ने शंकर के अद्वैतवाद का प्रबल विरोध कर द्वैतवाद की स्थापना की। उन्होंने मायावाद का खंडण करके विष्णुकी भक्ति का प्रचार किया द्वैताद्वैत वाद के संस्थापक निम्बाकाचार्य ने लक्ष्मी और विष्णु की भक्ति के स्थान पर राधाकृष्ण की भक्ति का प्रचार किया सुध्दा द्वैतवाद के प्रतिष्ठापक वल्लभाचार्य ने बालकृष्ण की उपासना पर बल दिया और पुष्टि मार्ग का प्रवर्तन किया। पन्द्रहवी-सोलहवी शताब्दी में भक्ति आंदोलन बड़े उत्साह के साथ भारत में फैलने लगेगा। चैतन्य सम्प्रदाय, सखी सम्प्रदाय, राधा वल्लभ सम्प्रदाय ने कृष्ण की माधुर्य भक्ति का प्रचार किया। कबीर, दादू, नानक आदि संतों ने ईश्वर के सगुण-निर्गुण मिश्रित रूप की उपासना पर बल दिया। सुफियों ने प्रेम कहानियों के माध्यम से ईश्वर के प्रेम स्वरूप का प्रचार किया। इस भक्ति साहित्य का वर्णन करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—''नया साहित्य मनुष्य जीवन के एक निश्चित लक्ष्य और आदर्श को लेकर चला। यह लक्ष्य है भगवद्भक्ति, आदर्श है शुद्ध सात्विक जीवन और साधन है भगवान के निर्मल चरित्र और सरल लीलाओं का गान। इस साहित्य को प्रेरणा देने वाला तत्व भक्ति है इसलिए यह साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य से सब प्रकार से भिन्न है।''

हिन्दी भक्तिकाल का साहित्य

भक्तिकाल का आरंभ अधिकांश विद्वान सन् 1350 मानते हैं किन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी सन् 1318 (सं 1375) मानते हैं। इस काल को भक्ति का स्वर्ण युग कहा गया है क्योंकि इस काल में संत कबीर, मलिक मुहम्द जायसी, तुलसीदास, सूरदास इन समकालीन कवियों ने अपनी रचनाओं का निर्माण किया। उपासना भेद की दृष्टि से इस काल के साहित्य को दो भागों में बाँटा गया है। एक सगुण भक्ति और दूसरा निर्गुण भक्ति। निर्गुण के दो भेद किए गए है। संतों की निर्गुण उपासना अर्थात् ज्ञानमार्गी शाखा तथा सूफियों की निर्गुण उपासना अर्थात् प्रेममार्गी शाखा। सगुण में विष्णु के दो अवतार राम और कृष्ण की उपासना साहित्य सृजित है।

6.4 भक्तिकाल अर्थ एवं स्वरूप

हिन्दी साहित्यतिहास का अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट रूप से हमारें सामने आती है कि भिन्न-भिन्न समय में भिन्न प्रकार के साहित्यक रचनाएँ हुई। सन् 1318 से सन् 1643 तक के बीच एक विशेष प्रकार की साहित्यक रचनाएँ हुई। इसे ही भक्तिकाल कहा गया। चूँकि इस काल में अधिकतर साहित्यक रचनाएं भक्ति विषयक है। इसलिए काल को भक्तिकाल कहना अनुचित नहीं है। भक्ति साहित्य का केन्द्रीय तत्व भक्ति है। इस काल के कवि पहले भक्त बाद में कवि। भक्तों ने किसी साहित्य रचना करने के उद्देश्य से रचनाएं नहीं है बल्कि उनके हादसे से निकले उद्गार ही काव्य के रूप में हमारे सामने विद्यमान हैं उनके शब्दों में सच्ची निष्ठा गहरा अनुराग और तीव्र भावनात्मक उद्वेग स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। ईश्वर प्राप्ति के सबसे सुगम साधना के रूप में भक्ति प्रतिष्ठत है। भक्तिकाल में भक्ति के नौ प्रकार के साधन का रूप हमारे सामने आता है।

(1) श्रवण (2) कीर्तन (3) स्मरण (4) पादसेवन (5) अर्चना (6) वंदना (7) दास्य (8) सख्य (9) आत्म निवेदन।

भक्ति काल में अहैतुकी भक्ति का प्रभाव अधिक है जब भक्त मोक्ष की कामना छोड़ कर ईश्वर का प्रेम और उसकी कृपा प्राप्त करने को अपना लक्ष्य बना लेता है तो इसी भक्ति को निर्गुण या अहैतुकी भक्ति कहते हैं

6.5 परिस्थितियाँ अर्थ एवं महत्व

भक्तिकाल का उद्‌भव विशेष परिस्थितियों में हुआ हैं भारत मुस्लिम शासन में अनेक विषमताओं से जूझ रहा था। ऐसे में जनमानस को आस्था विश्वास और भक्ति से ही जीने का मार्ग मिलता है। किसी भी समय की परिस्थितियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करती है। चाहे व्यक्ति कोई कार्य कर रहा हैं उस कार्य पर समय की स्थिति का प्रभाव अवश्य पड़ता है। साहित्य समाज का दर्पण है, साहित्यकार किसी रचना के लिए अपनी कल्पना का मिश्रण अवश्य करता है। किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों की स्पष्ट छाप उसके लेखन में देखने को मिलती है। परिस्थिति चाहे राजनीतिक हो या सामाजिक धार्मिक हो या साहित्यक या संस्कृतिक उन सभी की छाया साहित्य पर पड़ती हैं बाहरी आक्रमण के कारण उत्तर भारत में हलचल आयी तुर्कों द्वारा यहाँ राज्य स्थापना के फलस्वरूप एक परिवर्तन का दौर आया। भक्तिकाल में इस परिवर्तन के दौर को हम हर क्षेत्र में देख सकते हैं। इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ रेखांकन योग्य हैं—

6.6 ऐतिहासिक परिस्थितियाँ

हिंदी साहित्य का मध्यकाल भारत में मुस्लिम साम्राज्य के क्रमिक उत्थान-पतन का युग है। उस समय का शासक दिल्ली का सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक उत्तर से दक्षिण तक अपने राज्य का विस्तार करना चाहता था। इसी विचार का लक्ष्य कर उसने दिल्ली की अपेक्षा देवगिरी को अपनी राजधानी वनाया और उसका नाम दौलताबाद रखा। 1375 से 1700 विक्रमी संवत् तक दास, खिलजी तुगलक, सैयद, लोदी, मुगल आदि वंशों के व्यक्ति दिल्ली की गद्‌दी पर रहे। जाति और संस्कृति की दृष्टि से ये विदेशी ही बने रहे। भले ही इनमें से अनेक का जन्म भारत में हुआ था। धार्मिक दमन, राज्य विस्तार के लिए निरन्तर युद्ध तथा ऐश्वर्य और विलासिता का जीवन ही इनकी विशेषताएँ रही जिसके परिणामस्वरूप हिंदी धर्म व वैष्णव भक्ति के पुनर्जागरण को बल मिला। अपने धर्म की रक्षा के लिए एक अखिल भारतीय धार्मिक आन्दोलन, जिसे भक्ति आन्दोलन भी कहा जाता है, प्रारम्भ हुआ। भक्ति आन्दोलन के प्रेणेता दार्शनिक, संत, महात्मा और समाज-सुधारक थे जिन्होंने एक ओर इस्लाम की आक्रामकता के विरुद्ध जन-जन को संगठित किया, वहीं दूसरी ओर सद्‌भाव स्थापित करने का प्रयास भी किया।

सोलहवीं सदी के मध्य में बाबर ने मुगल सल्तनत की नींव डाली उसने मेवाड़ के राणा सांगा को पराजित करके राजपूतों के प्रतिरोध को रोक दिया, किन्तु पठानों ने हिम्मत न हारी। पठान शासक शेरशाह सूरी ने हुमायूँ को पराजित किया। शेरशाह के उत्तराधिकारी अयोग्य निकले अेर मुगलों का नेतृत्व अकबर जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति के हाथ में आ गया। कालान्तर में सम्राट अकबर के सामने देश के छोटे-छोटे हिन्दू और मुसलमान शासकों ने एक-एक कर घुटने टेक दिये। अकबर का प्रतिरोध महाराणा प्रताप ने किया और वे आजीवन लड़ते रहे। शाहजहाँ के शासन के अन्तिम दिनों में बुन्देलखण्ड में चंपतराय और महाराष्ट्र में शिवजी ने स्वतन्त्रता का झंडा ऊँचा किया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्तिकाल का सामान्य परिचय देते हुए कहा है, "देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रहा गया।" कोई भी साहित्य युग परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता है। किन्तु भक्किालीन साहित्य परिस्थितियों से बहुत कम प्रभावित हुआ। एक भक्तिकालीन कवि ने लिखा है।

'सन्तन कहा सीकरी सों काम।'

वह न तो राजदरबार को महत्त्व देते थे और न प्राकृत-जन का गुणगान करते थे। मुस्लिम शासक केवल अनुदार एवं असहिष्णु ही नहीं कहें जा सकते। उनके शासन-काल में संस्कृत एवं देशी भाषाओं के साहित्य, संगीत और कला को प्रोत्साहन मिला। जौनपुर के सुल्तानों ने शास्त्रीय संगीत का पुनरूदार करवाया तथा 'संगीत

शिरोमणि' नामक संस्कृत ग्रंथ का निर्माण कराया। भक्ति काव्य का धर्म विकास मुगल-साम्रान्य के समय में हुआ है, किन्तु राजनीतिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष इन कवियों की वाणी में यत्र-तत्र अवश्य मिल जाता हैं जैसे—

''म्लेच्छनि भार दुखित मेंदिनी।''

''वेद धर्म दूरि गये, भूमि चोर भूप भये।

साधु सीद्यमान जान रीति पाप पीन की।।'

6.7 सामाजिक परिस्थितियाँ

भक्तिकालीन समाज बहुत हद तक आज के भारतीय समाज के सम्मान ही था। डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के अनुसार ''सामाजिक दृष्टि से वर्तमान समय में जो जाति व्यवस्था प्रचलित है, उसका निश्चित रूप इसी काल में निर्धारित हुआ। विवाहादि एवं खान-पान के मामले में जो प्रतिबंध पहले से चला आ रहा था उसे और कठोर बनाया गया।'' जाति व्यवस्था के कारण व्यक्ति के अंदर की प्रतिभा कुंठित रह जाती थी। जातीय बंधन इतने कठोर हो चले थे कि चाह कर भी कोई उसे तोड़ नहीं सकता। इतिहासकार अलनेरूनी लिखता है।'' मैं (हिंदू) किसी को अपनी जाति बदलने नहीं देते थे जो अपनी जाति उल्लंखन करता है उसे सदैव रोक दिया जाए''। जाति व्यवस्था ने जहाँ एक और समाज को टुकड़ों में विभक्त कर दिया था वही इसके कारण राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास भी नहीं हो पाया।

तत्कालीन भारतीय समाज दो वर्गों में विभाजित हो गया था। एक वर्ग सुविधा संपन्न राजा महाराजा, सुल्ताना, अमीर, सामन्त और सेठ साहूकारों का था तो दूसरा वर्ग दलित, किसान, मजदूर, सैनिक राज्य कर्मचारी और परंपरा से लगे उद्योग धंधे वालों का था।

समाज में स्त्रियों की दशा सोचनीय थी। उन्हें कई तरह के बंधनों में रहना पड़ता था। पहले वह पिता के आश्रय में रहती फिर पति के और फिर पुत्र के। स्वेच्छा से कोई भी कार्य करने का अधिकार उसके पास नहीं था। सती प्रथा का जोर था। पति की मृत्यु के बाद उसे बिना इच्छा के चिता पर ढकेल दिया जाता था। प्रदा प्रथा उस समय की आवश्यकता बन गई थी। संयुक्त परिवार की परिपाटी प्रचलित थी। माता-पिता के अलावा चाचा-चाची एवं उसके पुत्र एक साथ रहते थे। घर का मुखिया वृद्ध व्यक्ति होता था।

इस्लाम की समानता की भावना ने यहां के दलित और अधिकार से वंचित जातियों को आकृष्ट किया। अधिक संख्या में लोगों ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया। सरकारी नौकरियों में नव इस्लाम धर्मालंबियों को लिया जाने लगा। इस प्रकार ये हिन्दू और मुसलमान जनता के बीच की कड़ी बने। समाज में धीरे-धीरे शांति का वातावरण बना। सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए तत्कालीन संतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। धार्मिक भेदभाव को दूर करने का महान प्रयास हुआ। सूफी साधकों ने इस क्षेत्र में अपनी प्रेम भावना का प्रयोग किया और उन्हें बहुत सफलता मिली। ख्वाजा मुइनुदीन धार्मिक संप्रदाय में प्रेम की भावना समर्पित थी। इस संप्रदाय में प्रेम की भावना समर्पित थी। इस संप्रदाय के कई कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक भेदभाव को दूर करने का प्रयास किया।

6.8 धार्मिक परिस्थितियाँ

इस काल की धार्मिक परिस्थिती बड़ी शोचनीय थी। विविध धर्म और सम्प्रदायों का प्रचलन था। इन धर्मों में परस्पर समन्वय की भावना नहीं थी। इस काल में वैष्णव धर्म परम्परा की जड़े मजबूत कर रहा था। बौद्ध धर्म का विकृत रूप उभरा था। सूफी धर्म भी अपनी जड़े मजबूत बना रहा था।

(1) बौद्ध धर्म—बौद्ध धर्म के संस्थापक तथागत भगवान गौतम बुद्ध है। भगवान बुद्ध के महानिर्वाण पश्चात् धर्म का महायान और हीनयान इन दो भागों में विभाजन हुआ। हीनयान में सिद्धान्त पक्ष की दार्शनिक जटीलता थी। परिणामत: कम लोगों की आस्था उस सम्प्रदाय के प्रति बन रही। महायान में सिद्धान्तों की अपेक्षा व्यवहारपक्ष को प्रधानता दी गयी थी। कालांतर में हीन यान में कट्टरता एवं संकीर्णता आई। हीनयान अपनी कट्टरता के कारण संकुचित होता चला गया और महायान अधिक उदारता के कारण विकृत। बौद्ध धर्म की इस स्थिति का पूरा फायदा शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट ने उठाया और वैदिक हिन्दू धर्म का पुनरुद्धार किया। सुसंस्कृत जनता शंकराचार्य की ओर आकृष्ट हुई। महायान सम्प्रदाय के कारण असंस्कृत वर्ग में तंत्र–मंत्र व्यभिचारबाजी से वशीभूत करके रखा। इसीलिए इसका कालांतर में मंत्रयान नाम पड़ा। मंत्रयान ने वाम मार्ग- मद्य, मांस, मैथून, मुद्रा आदि अनेक मुद्राओं को अपना लिया। नारी के प्रति वासना वृत्ति को साधना आवश्यक अंग माना गया। मंत्रयान से वज्रयान निकला और उसमें चौरासी सिद्ध हुए। इन में गोरखनाथ प्रमुख रहे। इन्होंने सिद्ध एवं नाथ सम्प्रदाय चलाया।

(2) वैष्णव धर्म—शंकराचार्य के पूर्व दक्षिण से आए अलवार संतों ने भक्ति का प्रचार एवं प्रसार किया। इस समय अनेक धार्मिक सम्प्रदाय निर्माणो का हुए। जिन में विष्णु भक्ति को अधिक महत्व दिया गया। विष्णु के अवतारों में राम और कृष्ण की स्थापना हुई। रामानन्द ने भक्ति के द्वार सब के लिए खोले और जनभाषा में अपने सिद्धांतों का प्रचार किया। इनके पूर्व रामानुज, मध्याचार्य, निम्बार्क आदि ने संस्कृत में अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। विष्णु के अवतार भगवान श्री कृष्ण की उपासना के विधि भेदो का निर्माण हुआ। भगवान कृष्ण को भागवत पुराण के दशम स्कंध में वर्णित कृष्ण के रूप में अपना आराध्य माना गया। कालान्तर में भक्ति पद्धति में विलासिता व भोग की प्रधानता बनी रहीं।

(3) सूफी धर्म—भारत पर मुस्लिमों के आक्रमण पूर्व ही सूफी संत कवियों ने इस्लामी वातावरण तैयार किया था। कुछ सम्प्रदाय प्रचलित रहे। सूफी कवियों ने भारतीय आध्यात्मिक और अद्वैत को अपने ढंग स्वीकार किया और प्रेमस्वरूप निराकार, निर्गुण ईश्वर का प्रचार प्रसार किया। सूफी संत कवि संचरित, विद्वान और सहनशील थे। हिन्दू धर्म के प्रति उनकी आस्था एवं विश्वास था। इसके फलस्वरूप सूफियों ने भारतीय जनता के मन को जीता है। नाथ सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण सूफियों ने उनके विचार व एकेश्वरवादी विचार को अपनाते हुए इस्लाम के साथ समन्वय करने का प्रयास किया। अत: इन्होंने हिन्दू-मुस्लिम के अजनबीपन को मिटाया।

6.9 राजनैतिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल तक उत्तरी भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हो चुकी थी। किन्तु इन दिनों मुगलों और अफगानों में परस्पर संघर्ष जारी हुआ। इस समय मुस्लिमों ने हिंदुओं से संबंध स्थापित कर अपना शासन दृढ़ करना शुरू किया।

भक्तिकाल का समय सन् 1375 से 1700 तक के कालखण्ड में माना जाता हैं इस कालखण्ड को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम भाग सन् 1375 से 1583 तक और दूसरा सन् 1583 से 1700 तक। प्रथम भाग में दिल्ली पर तुगलक और लोदी वंश का शासन था। दूसरे भाग में मुगलवंश के बाबर हुमायुँ, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ का शासन रहा है। मुगलवंश काल राजनीतिक दृष्टी से प्राय: यह काल अशान्त और संघर्षमय रहा था।

1295 में अलाऊद्दीन खिलर्जी दिल्ली की गद्दी पर बैठा। जिसने मालवा प्रांत और महाराष्ट्र को जीत लिया। गुजरात जीतकर राजपुताने घराने को घेर लिया और दक्षिण भारत में मुस्लिम शासन पहुँचा अलाऊद्दीन खिलजी की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली का शासन बलहीन हुआ। सन् 1320 में ग्यासुद्दीन तुगलक ने ने उस में शक्ति प्रदान की। इस काल के उपरान्त प्रान्तिक शासकों में स्वतंत्र अस्तित्व बनाने में लगें रहें

मेवाड में हम्मीर सिसोदिया 1326 में स्वतंत्र हो गया। इन्हीं दिनों विजयनगर में हिन्दू राज्य की स्थापना हुई। मदुरा और बंगाल में दिल्ली सल्तनत के सुबेदार स्वतंत्र सुल्तान बन गए। दक्षिण में बहामनी राज्य की स्थापना हुई। कश्मीर में शाहमीर ने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया।

15वीं शताब्दी प्रान्तीय शासकों का युग रहा है। इस काल में राजस्थान और मेवाड़ की उन्नति हुई। महाराणा लाखा, चूड़ा और कुभा के शासन काल में वह एक प्रमुख शक्ति बना। मालवा, गुजरात, बंगाल और कशमीर के शासक स्वतंत्र अस्तित्व बनाए हुए थे। बुंदेलखण्ड में गहड़वाल वंशज बुंदेल सरदार राज्य करने लगा था। उड़ीसा में सूर्यवंशी कविलेन्द्र ने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। बाबर ने 1526 में पानीपत के मैदान में नवीन उपकरणों के प्रयोग से इब्राहिम लोधी को पराजित किया। बाबर ने राणा सांगा को भी पराजित किया। परन्तु बाबर के पुत्र हुमाँयु को शेरशाह सूरी ने पराजित किया। शेरशाह के समय में ही हिन्दी का अमरकाव्य 'पद्मावत' लिखा गया। शेरशाह सुरी के उत्तराधिकारी अयोग्य निकले परिणामत: मुगलों में अकबर जैसा शासक हुआ। तत्कालीन छोटे छोटे राजाओं ने अकबर का अधिनत्व स्वीकार कर लिया। मेवाड़ के महाराणा प्रताप अकेले रह कर अंत तक संघर्षरत रहे। महाराणा प्रताप का पुत्र अमरसिंह जहाँगीर से 16 वर्ष लड़ा पर अन्त में उसने अधीनता मान ली। शाहजहाँ के अन्तिम दिनों में बुन्देलखण्ड में चंपतराय व महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी महाराज की सत्ता स्थापित हुई।

भक्तिकाल का साहित्य राजनीतिक वातावरण के प्रतिकूल है। कबीर, जायसी, तुलसी और सूर इन कवियों को न तो सीकरी से काम था और न प्राकृत जन गुण-गान से सरोकार था।

6.10 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

समन्वयात्कता भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषता है। सांस्कृतिक चेतना की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति सार्वभौम सत्य के आधार पर प्रतिष्ठित धार्मिक भावना और दार्शनिक चिन्ताधार के माध्यम से हुई है। कला, शिल्प, साहित्य और संगीत इन्हीं की देन है। शैव, शाक्त, भागवत और गाणपत्य जैसे प्रमुख धर्मों में ज्ञान योगतंत्र और भक्ति की प्रवृत्तियों का समन्वय होने लगा। योग का प्रभाव उस समय इतना बढ़ा कि भक्ति ज्ञान और कर्म के साथ भी योग शब्द को जोड़ा जाना आवश्यक समझा जाने लगा। समन्वयात्मकता की प्रवृत्ति धर्म के समान मुर्ति एवं वास्तुकलाओं में भी देखी जा सकती हैं। खजुराहों के वैद्यनाथ मन्दिर के शिलालेख में ब्रम्ह, जिन, बुद्ध तथा वामन को शिव का रूप कहा गया है। भक्ति आंदोलन इसी समन्वयात्मक प्रवृत्ति का परिणाम है।

इसी काल में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ एक दूसरे के निकट आयी। संगीत, चित्र तथा भवन निर्माण में समन्वय आरंभ हुआ। साहित्य भी एक दूसरे से प्रभावित रहा। नायक नायिकाओं के नयनाभिराम चित्रों तथा विविध कलाओं के रूप में दोनों की चित्रकलाओं का समागत दर्शनीय है। काव्यों में भी राग-रागिनियों का प्रयोग किया जाने लगा।

भक्तिकाल को साहित्य की दृष्टी से स्वर्ण युग कहा गया है। इस काल में भारत की लगभग सभी भाषाओं का साहित्य सृजन हुआ है। भक्तिकाल ने हिन्दी को सुर, तुलसी, कबीर, जायसी, मीरा, रहीम, रसखान जैसे प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार दिए हैं। भक्ति साहित्य एक साथ हृदय, मन और आत्मा की भूख को क्षमता है।

6.11 साहित्यिक परिस्थितियाँ

भक्तिकाल के विचारकों ने गद्य में अपने विचार व्यक्त न करके उन्हें छंद-बद्धरूप में व्यक्त किया। संस्कृत में इस संबंध में टिकाओं, व्याख्याओं की सृष्टी होती रही। किसी नवीन मौलिक उद्भावनाओं से काम नहीं लिया गया। सिद्धान्त प्रतिपादन तथा भक्ति प्रचार की भावना उस समय के समस्त साहित्य में काम कर रही

हैं। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी जैसे भावुक कवि भी इस मनोवृत्ती से अछुते नहीं रहे। इस युग में हिन्दुओं व उच्च वर्ग संस्कृत भाषा व्यवहार में उपयोग कर रहा था। मुसलमान भी मुख्यत: मुगलसत्ता के कारण राज का में फारसी को स्वीकार किया गया था। फलत: इतिहास के अनेक ग्रंथों का निर्माण फारसी में किया गया। इ काल में गद्य का प्रयोग राजस्थान की भाषाओं में और कुछ ब्रज भाषा की वचनिकाओं में हुआ। बादशाहों त राजाओं के आश्रित कवियों ने प्रशास्ति, श्रृंगार, रीति, नीति आदि से संबंधित मुक्त और प्रबंध दोनों प्रकार व रचनाएँ की हैं।

6.12 भक्तिकाल में साहित्यिक परिवेश

भक्तिकाल में जिस साहित्य की रचना हुई वह अधिकांश पद्य में अर्थात् छन्दोबद्ध काव्य रूप में है। उ समय संस्कृत तो उच्च हिन्दू वर्ग के लोगों की काव्य भाषा थी। शाही दरबारों में अरबी-फारसी का प्रयोग होत था। परन्तु हिन्दी की लोकभाषाओं का, विशेष रूप से अवधी तथा ब्रजभाषा का, काव्य में प्रयोग होता थ कबीर ने तो ऐसी मिली-जुली लोक भाषा का प्रयोग किया है जिसे सधुक्कड़ी खिचड़ी अथवा संध्या भाषा कह गया है। भक्तिकाल में प्रबन्धकाव्य, मुक्तक काव्य तथा गीतिकाव्य की रचना हुई। संस्कृत भाषा के कुछ ग्रंथों व टीकाएँ भी हुई। हिंदी भाषा और साहित्य ने भक्तिकालीन परिवेश में उच्चकोटि का साहित्य रचने की पृष्ठभूमि नहीं बल्कि चरम विकास प्राप्त किया। कबीर, सूर तथा तुलसी की रचनाएँ साहित्यिक परिवेश की अनुपम देन हैं।

6.13 भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ

भक्तिकाल हिन्दी साहित्य के इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण काल है। इस काल में जिस प्रकार के काव की रचना हुई वह इतनी उच्चकोटि की है। जिसमें हिन्दी साहित्य संसार सदा गर्व करता रहेगा। भक्तिकाल के दौरान ही कबीरदास, सूर, तुलसी, मीरा, जायसी, रैदास, रहीम आदि महान कवि हुए। यद्यपि उन्होंने किस साहित्यक सूचना के लिए काव्य का सृजन नहीं किया किन्तु इनके हृदय से निकले उद्‌गारों ने ही काव्य का रूप लिया। इनके विचार संदेश द्वारा तत्कालीन भारतीय समाज को प्रभाविता और प्रेरित हुआ और आज भी उ महान भक्तों के विचार से भारतीय जनता के प्रेरणा मिल रही है। संपूर्ण भक्ति काव्य पर विचार करें तो हम पायेंगे कि सामान्यता: सभी भक्त कवियों ने भाक्त भावना से प्रेरित होकर ही काव्य रचनाएँ की। यद्यपि सभी कवियों के काव्य की अपनी अलग-2 पहचान भी है, लेकिन मूल रूप से सबने एक ही बात कही है ईश्वर के प्रति उत्कृष्ट प्रेम, मनुष्य-2 में समानता का भाव, गुरू की महिमा, ज्ञान का खंडन, तथा अहंकार का त्याग प्राय सभी भक्त कवियों के विचारों में स्पष्ट रूप में मिल जाएगें।

6.14 ईश्वर के प्रति उत्कृष्ट प्रेम

ईश्वर के प्रति तीव्र प्रेम ही भक्ति की पहचान है। चाहे निर्गुणी रूप के उपासक कवि हो या सगुण रूप के सभी ने समान रूप से इस विचार को व्यक्त किया है। निर्गुण ब्रह्म के उपासक कबीर कह उठते है। आंखडिया झांई पड़या, राम पुकारि पुकारि। सूफी संत कवि जायसी ने भी इसी तरह के उद्‌गार व्यक्त किए है। संत रैदास कह उठते है। तीरथ बरत न करौ अंदेशा। तुम्हारे चरण कमल भरोसा। जह तह जाओ तुम्हारी पूजा। तुमसा देव और नहीं दूजा। ईश्वर के प्रति उत्कृष्ट प्रेम का दर्शन हम मीरा के पदों में भी देख सकते है। वे गा उठती है। हे री मैं तो प्रेम दिवानी मीरा दरद न जाने कोई। सूर मीन एवं चातक का उदाहरण देते हुए कह उठते हैं——

तलफत रहति मीन चातक ज्यो, जल बिनु तश्शनु छीजे अंखियां हरि दर्शन की भूखी।

सूर के समान ही तुलसी का पूरा साहित्य ईश्वर के प्रति उत्कृट प्रेम का ही परिणाम है। वे कहते है——

एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास।

6.15 प्रेमभाव की अभिव्यक्ति

भक्तिकालीन साहित्य में मनुष्यमात्र तथा ईश्वर के प्रति सच्चे प्रेम की भावना देखी जा सकती है। संत कबीर ने तो पंडित अथवा विद्वान होने की कसौटी ही प्रेम को बताया है।

''पोथी पढ़ि पढ़ि, जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढि सो पंडित होय।।।

सूफी संतों ने भी प्रेम को भक्ति का आधार माना है।

6.16 भक्तिभावना का प्राधान्य

सारे भक्ति साहित्य में भक्ति की प्रधानता दिखाई पड़ती है। संत कबीर ने भक्ति के बिना सारे संसार को डूबा हुआ और मरा हुआ ही माना है। वे कहते है—

''हरि भक्ति जाने बिना बूढ़ि मुआ संसार।''

भक्तों ने भी उस ज्ञान का खण्डन किया है जो भक्ति के विरुद्ध है। सूरदास ने गोपियों के माध्यम से उद्धव को कहलवाया है—

''बार-बार वचन निवारो, भक्ति विरोधी ज्ञान तिहारो''।

6.17 समानता का भाव

भक्ति के मार्ग में सांसारिक भेदभाव का स्थान नहीं है। इस बात को सभी भक्त कवियों ने स्वीकार किया है। भक्तों की साधना वैयक्तिक और आध्यात्मिक होते हुए भी समावटेपरक है। आध्यात्मिक दृष्टि से भ्रम में सत्ता अणु-अणु से व्याप्त है। सारी सृष्टि ही ब्रह्ममय है तब व्यक्ति और समष्टि में भेद ही नहीं, व्यक्ति समाज की इकाई के रूप में है। एक-2 व्यक्ति के चरित्र से समाज का चरित्र बनता है। भक्तों ने समाज को एक सूत्र में पिरानें का काम किया। समाज की एक रूपक्ता तभी सम्भव है। ज़ब जाति वर्ण और वर्ण भेद न हो भक्तों ने भक्ति के क्षेत्र में जाति भेद में अपना विश्वास वही रखा। तुलसीदास जो वणोश्रज्ञय धर्म में विश्वास रखते हैं उन्होंने भी भक्ति के क्षेत्र में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं स्वीकारा। साहित्य में धर्म के मतभेद और बाहय आडम्बर तीर्थ स्थान, वेद मंदिर, मस्जिद, ब्राह्मण—शूद्र शिया-सुन्नी आदि का कड़ा विरोध किया। भक्तों ने समाज को विकृत करने वाली रूढ़ियों पाखण्ड रीति के विरूद्ध जनता में विद्रोह की भावना उत्पन्न करे समाज में समानता लाना उनका उद्देश्य था।

भक्ति काल में व्यवसाय के आधार पर त्यविनत की श्रेष्ठता एवं निम्नता आधारित भी भक्तों ने इनका कड़ा विरोध किया। कबीर जोरदार शब्दों में कहते है—''तू बामन मैं कांशी का जुलाहा बूझों मोर गयाना''। भक्ति आंदोलन का मूल मंत्र थ।

''जाति-पांति पूछै न कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।

6.18 गुरू महिमा एवं नाम स्मरण

सभी भक्त कवियों ने गुरू की महिमा को एक साथ स्वीकारा है। वैदिक काल से चली आ रही परंपरा के अनुसार ही चाहे बौद्ध साधिक हो या जैन साधक नाथ पंथी हो या सिद्ध साधक सभी ने गुरू की महिमा का गान किया है। गुरू राह दिखाने वाला है। उसके बिना साधक सफल नहीं हो सकता। संत कवियों ने गुरू को ईश्वर से भी अधिक महत्व दिया, क्योंकि ईश्वर तक पहुँचने का राह बताने वाला गुरू ही है। कबीर कहते हैं—

गुरू गोविंद दोऊ खड़े काके लागूँ पाई।

बलिहारी गुरू आपने जिन गोविंद दियो बताई॥

अर्थात गुरू और गोविंद दोनों भक्त के सामने खड़े है। अब भक्त के लिए यह तय करना कठिन हो है कि किसे पहले नमस्कार करे। किन्तु भक्त की उलझन को भगवान तुरन्त गुरू की और इशारा करके सुल देते है। गुरू की महिमा को बहुत ऊँचा माना है, किन्तु सगुण उपासक भक्त कवियों ने समान रूप से गुरू महिमा स्वीकार की है। भक्त तुलसीदास अपने आराध्य का गुण गान करने से पहले गुरू की वंदना करते है–

बंदऊ गुरू पद कुंज करपा सिंधु नररूप हरिं।

महामोह तम पुंज जासु वचन रविकर निकर॥

गुरू की महिमा केवल भारतीय दर्शन की देन नहीं बल्कि धर्म में भी गुरू की महिमा के समान रूप स्वीकारा गया सूफी संप्रदाय में गुरू की महिमा का वर्णन है। वहां गुरू की राह दिखाने वाला है। पद्मभक्त रचना करने वाले सूफी कवि जायसी ने कथा में सुआ को गुरू के रूप में पेश किया है।

संदर्भित ग्रन्थ

हिन्दी साहित्य का अतीत भाग 1	—	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
हिन्दी साहित्य का अतीत भाग 2	—	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
हिन्दी साहित्य की भूमिका	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
साहित्येतिहास आदिकाल	—	सुमन राजो
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	डॉ० नगेन्द्र
हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास	—	बच्चनसिंह
व्यावहारिक हिन्दी	—	दंगल झाल्टे
हिन्दी साहित्य का रेखांकन	—	किशोरीलाल
हिन्दी साहित्य विमर्श	—	पं० लाल पु० लाल बक्शी
हिंन्दी साहित्य परिचय	—	रामचन्द्र शुक्ल

बोध प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भक्ति काल का अर्थ एवं स्वरूप बताते हुए उसकी परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।
2. भक्ति कालीन काव्य की सामान्य विशेषताएँ बताइए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. हिन्दी साहित्य के उदय के संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने क्या लिखा है?
2. भक्तिकाल का अर्थ और स्वरूप की विवेचना कीजिए।
3. भक्तिकालीन समय में हिन्दी के विकास में किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा था?
4. 'भक्तिकाल में धार्मिक परिस्थितयाँ शोचनीय थीं।' इस विषय पर बौद्ध धर्म के विषय में अपने विच प्रकट कीजिए।
5. भक्तिकाल के काव्य की सामान्य विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

6. 'भक्तिकाल का साहित्य राजनीतिक वातावरण के प्रतिकूल था।' इस विषय पर अपनी टिप्पणी लिखिए।
7. 'भक्तिकाल में अभिव्यक्ति की प्रधानता प्रेमभाव और भक्तिभाव प्रधान थी।' इस वाक्य से आप कहाँ तक सहमत हैं।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल की अवधि की विवेचना कीजिए।
2. भक्तिकाल में राजनीतिक परिस्थितियाँ किस प्रकार की थीं?
3. भक्तिकाल में साहित्यिक परिवेश कैसा था? अपने शब्दों में लिखिए।
4. 'सारे भक्तिकालीन साहित्य में भक्ति की भावना दिखाई पड़ती है।' इस विषय पर एक टिप्पणी लिखिए।

इकाई (Unit)

7

निर्गुण ज्ञानमार्गी संत काव्यधारा

संरचना

7.1 उद्देश्य
7.2 प्रस्तावना
7.3 निर्गुण ज्ञानमार्गी संतकाव्य का अर्थ और दृष्टिकोण
7.4 निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि
7.5 निर्गुण संत परंपरा
7.6 प्रमुख संत कवि और उनकी रचनाएँ/योगदान
7.6.1 नामदेव
7.6.2 कबीर
7.6.3 रैदास या रविदास
7.6.4 धर्मदास
7.6.5 मूलकदास
7.6.6 अक्षर अनन्य
7.6.7 रामानन्द
7.6.8 गुरू नानक
7.6.9 हरिदास निरंजनी
7.6.10 दादूदयाल
7.7 निगुर्ण संत कवियों का सामाजसुधारक रूप पददलित जातियों में आत्मसम्मान का उदय
7.8 संत काव्य में जीवन-दर्शन और मूल्य
बोध प्रश्न

7.1 उद्देश्य

- संत काव्य का अर्थ और दृष्टि बता सकेगें।
- निर्गुण संत कवियों की परम्परा के विषय में जानकारी दे सकेंगे।
- निर्गुण संत कवियों का समाज सुधार रूप बता सकेंगे।
- संत काव्य में जीवन दर्शन का मूल्य बता सकेंगे।

7.2 प्रस्तावना

भक्तिकाल के भक्ति आन्दोलन के समय का सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश कैसा था। उस र
राजनैतिक परिस्थितियाँ किस प्रकार की थीं, अब हम भक्ति काव्य के विविध कार्यों की चर्चा करेंगे। इ
इकाई निर्गुण भक्ति काव्य से संबंधित है। निर्गुणभक्ति क्या है? ज्ञानमयी शाखा से क्या तात्पर्य है। इन
प्रश्नों का उत्तर आपको इस इकाई में मिलेगा। हिंदी साहित्य के लगभग एक हजार वर्ष के इतिहास को आ
रामचन्द्र शुक्ल ने तीन कालों में विभाजित किया है। आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल। इन तीन द

में से मध्यकाल और आधुनिक काल में रचे गए साहित्य का परिमाण बहुत अधिक है। इसमें उपप्रवृत्तियाँ भी अनेक है। अत: शुक्ल जी ने इनका उपकालों में विभाजन किया है।

पूर्व मध्यकाल की सबसे प्रधान और मूल विषय-वस्तु भक्ति का न कोई रूप है वैसे काव्य वस्तु के रूप में भक्ति पूर्वमध्यकाल से पहले और बाद में भी मिलती है। अत: प्रधानता के आधार पर उन्होंने इस काल का नामकरण भक्ति काल किया है। भक्ति की प्रवृत्ति, आराध्य के स्वरूप के आधार पर पहले भक्ति काल को दो धाराओं में विभाजित किया है। निर्गुण धारा और सगुण धारा। फिर इन दो धाराओं को दो-दो शाखाओं में बांटा गया है। भक्ति काल का समय सन् 1375 (1318 ई०) से 1600 (1683 ई०) निश्चित किया गया है। शुक्ल जी के काल विभाजन और समय निर्धारण को हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्राय: सभी लेखकों ने थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ स्वीकार कर लिया है। इसलिए भक्ति काल के विभाजन और नामकरण को लेकर कोई विवाद नहीं हुआ है।

7.3 निर्गुण ज्ञानमार्गी संतकाव्य का अर्थ और दृष्टिकोण

संत काव्य का अर्थ होता है—संतों के द्वारा रचा गया काव्य। सामान्यत: 'संत' शब्द का अर्थ होता है। कोई भी सदाचारी पवित्रआत्मा व्यक्ति। इसलिए संत, साधु महात्मा आदि शब्दों को पर्यायवाची मान लिया जाता है। लेकिन उनके अर्थ में अंतर है। विशिष्ट अर्थ के संत उस व्यक्ति को कहते है। जिसने सत्यरूप परमतम का साक्षात्कार कर लिया हो और जो पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए नि:स्वार्थ भाव से लोक कल्याण में रत रहता हो। संत का यह परिभाषिक अर्थ कुछ व्यापक है। यह शब्द विकसित होते हुए एक और अर्थ में रूढ़ हो गया है। यह शब्द उन ज्ञानेश्वर इत्यादि। निर्गुण भक्तों के लिए रूढ़ हो गया।

ब्रह्म के निर्गुण अर्थात् सत्यवादी गुणों से रहित अथवा उनसे परे रहने वाले रूप को लेकर चलने वाले भक्त कवियों को निर्गुण धारा के कवि कहा गया। जिन भक्त कवियों ने इस निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करने का साधन ज्ञान बनाया। उन्हें 'ज्ञानमार्गी' कहा जाता गया। कबीर आदि ज्ञान मार्गी निर्गुणधारा के कवि थे। जिन्होंने निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए प्रेम को साधन बनाया। वे प्रेममार्गी निर्गुणधारी के कवि कहलाये। जायसी आदि सूफी कवि प्रेममार्गी निर्गुणधारा के कवि थे इसका अर्थ यह नही कि ज्ञानमार्गियों के यहाँ प्रेम का सर्वथा अभाव था अथवा प्रेममार्गियों के यहाँ ज्ञान का सर्वथा अभाव था। यह विभाजन ज्ञान अथवा प्रेम की प्रधानता के आधार पर है। ज्ञानमार्गी शाखा में "ज्ञान" का अर्थ न हो तो साधारण इंद्रिजन्य ज्ञान है और न ही बौद्धिक तर्क वितर्क से प्राप्त दार्शनिक ज्ञान है। इस शाखा में ज्ञान से तात्पर्य स्वत: उत्पन्न होने वाले प्रतिभा अथवा अतीन्द्रिय बौध से है। वह वस्तुत: अंतर्ज्ञान हैं जो सहज ही बिना किसी प्रत्यक्ष साधन से उत्पन्न होता है। इसलिए इसे "सहजज्ञान" कहा गया है। कबीर ने इसे "ब्रहमागयान" कहा है। इस ज्ञान के प्राप्त हो जाने से "सहज समाधि" लग जाती है। कबीर ने अनुसार यह ब्रहमज्ञान प्राप्त हो जाने पर सहज समाधि में करोड़ों कल्पों तक विश्राम किया जा सकता है। उनके शब्द है—

अब मै रे पाइबो ब्रह्म गियान।
सहज समौधे सुख मै रहिबो, कोटि
कलप विश्राम।

7.4 निर्गुण भक्ति साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि

संत काव्य वैचारिक आधार है। शंकराचार्य एवं उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित अद्वैत दर्शन, नाथपंथ, सूफी धर्म एवं इस्लाम। उपनिषदों में निरूपित ब्रह्म, जीव, जगत एवं भाषा के स्वरूप को संत कवियाँ ने ज्यों का त्यौं ग्रहण किया। संतों का साधन पक्ष और भक्ति भावना शंकर के अद्वैत दर्शन की देन है। दोनों की जीवों का

विशुद्ध ब्रह्म मानते हैं तथा जो भिन्नता दिखाई पड़ती है, वह भाषा के कारण हैं। आत्मा की सर्वरूपता सर्वशाक्तिमना भी अद्वैत दर्शन के अनुरूप है।

नाथपंथियों से उन्होंने शून्यवाद, योगसाधना, गुरु की प्रतिष्ठा का तत्व लिया। इस्लाम के प्रभाव से उन्होंने एकेश्वरवाद ग्रहण किया, मूर्तिपूजा का खण्डन किया और अवतारवाद का विरोध किया।

सूफियों से उन्होंने प्रेम भाव ग्रहण किया और दाम्पत्य प्रतीकों का प्रयोग भक्ति भावना की अभिव्यक्ति हेतु किया। सिद्धों की गूढ़ उक्तियाँ, उलटबांसियाँ, वैदिक परंपराओं एवं बाह्याचार का विरोध संत काव्य में भी मिलता है। **रामानंद ने भक्ति का द्वार शूद्रों एवं निम्न वर्गों के लिए खोल दिया था।** इसका प्रभाव भी संत काव्य पर दिखाई पड़ता है।

7.5 निर्गुण ज्ञानमार्गी संत काव्य

निर्गुण संत कवियों की परंपरा का आरंभ ईसा की बारहवी शताब्दी में जयदेव से होता है। इनके कुछ पद 'आक्षिग्रंथ'' में संग्रहीन है। ये पद निर्गुण भाव के हैं। साधारणत: माना जाता है कि गीतगोविदं के रचयिता जयदेव और यह एक ही है किन्तु दोनों के काव्य की वस्तु और शैली में इतना अंतर है कि दोनों को एक मानना असंभव प्रतीत होता है। इस परंपरा में तेरहवीं शताब्दी में मराठी और हिन्दी दोनों में भजन लिखने वाले नामदेव हुए गुरुग्रंथ साहब में इनके साठ से भी अधिक पद संग्रहीत है। नामदेव उच्च कोटि के संत एवं कवि थे। कबीर के गुरू रामानंद इस परंपरा की तीसरी कड़ी है। किन्तु हिन्दी में संत काव्य की दृढ़ नींव रखने वाले उसे सामान्य बनाने वाले और सबसे अधिक प्रतिभाशाली कवि कबीर दास हुए है। कबीर जिन रामानंद के शिष्य थे उनके अनेक शिष्य निर्गुण संत परंपरा के महत्वपूर्ण मनके सिद्ध हुए। इनमें से पीपा, सेना, धना, रैदास पदमावती, सुरसरी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हुए। कबीर आदि इन संतों के शिष्य प्रशिष्यों की लंबी परंपरा हिन्दी में चली है और आज भी चल रही है। इन्होंने अनेक पन्थों और गद्दियों की स्थापना की है। ऊपर उल्लिखित संतों के अतिरिक्त इस परंपरा में सघना बाबरी साहिबा, कमाल, दादूदयाल, सुंदरदास, गरीबदास, जगजीवन, साहब जम्भदास, सिंगा जी हरिदास निरंजनी, धर्मदास, मूलकदास, अक्षर अनन्य, गुरूनानक, चरणदास, गुलाबसाहब आदि सैकड़ों संत हुए है। इन सबने काव्य रचना की है। लेकिन इन सभी में कवि प्रतिभा नहीं थी। वस्तुत: इन्होंने संत काव्य के प्रमुख विषयों को लेकर कही जाने वाली बातों तथा संप्रदायगत बातों की पुनरावशत्ति मात्र की है। जो संत काव्य विद्रोह की वाणी बनकर प्रकट हुआ था। वह शीघ्र ही रूढ़िग्रस्त हो गया। अठारहवीं शताब्दी के बाद जो संत काव्य लिखा गया उसका एक मात्र लक्ष्य अपने अपने संप्रदाय की प्रतिष्ठा बढ़ाना और व्यर्थ के संप्रदाय विषयक कर्मकाण्ड को दृढ़ करना रह गया फलत: वह निर्जीव हो गया और उस साहित्य को संप्रदाय के बाहर कोई पूछने वाला नहीं रह गया।

7.6 प्रमुख संत कवि और उनकी रचनाएँ/योगदान

भक्ति आन्दोलन के निर्गुण संत कवियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसे ठीक-ठीक समझने के लिए प्रमुख संत कवियों का किंचित् विस्तृत परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा।

7.6.1 नामदेव—संत साहित्य की नींव डालने वालों में महाराष्ट्र के नामदेव (जन्म 1267 ई०) का नाम बहुत महत्वपूर्ण है। मराठी में लिखे अभंगों के अतिरिक्त हिन्दी में लिखी इनकी बहुत सी रचनाएँ मिलती हैं। गुरुग्रन्थ साहिब में ही इनके 60 से अधिक भजन संग्रहीत हैं। प्रारंभ में यह सगुण भाव से भक्ति करते थे किंतु अपने को गोरखनाथ की शिष्य परंपरा में बताने वाले प्रसिद्ध ज्ञानयोगी की प्रेरणा से यह नाथपंथ के प्रभाव में आकर निर्गुणोपासक संत बने इनकी सधुक्कड़ी भाषा में लिखी रचनाओं से स्पष्ट है कि इन्होंने निर्गुण पंथ की दागबेल डाली। इन्होंने ब्रह्म के स्वरूप निरूपढ़, कर्मकांड के खंडन आदि के साथ-साथ हिन्दू मुसलमान दोनों की आलोचना की और ज्ञानी संतों की श्रेष्ठता सिद्ध की—

हिन्दू अंधा तुरका काना, दुवौ ते ज्ञानी सयाना

हिन्दू पूजै देहरा, मुसलमांन मसीद

नामा सोई सेवियां जहे देहरा न मसीद

7.6.2 कबीर—**बीजक** नाम से उनकी रचनाओं का संकलन धर्मदास द्वारा किया गया है। जिसके तीन भाग हैं—साखी, सबद, रमैनी। कबीर का जन्म 1398 ई. और मृत्यु 1518 ई० में हुई। कबीर जाति के जुलाहे थे, काशी में रहते थे तथा रामानंद उनके गुरु थे। कबीर की पत्नी का नाम लोई, पुत्र का नाम कमाल एवं पुत्री का नाम कमाली थी। उनकी कविता में उपदेशों की प्रवृत्ति है, रहस्यवादी भावना है तथा प्रतीकों का प्रयोग उनकी भाषा में हैं

कबीर निरक्षर थे। स्वयं उन्होंने स्वीकार किया है—

मसि कागज छूयौ नहीं कलम गह्यौ नहिं हाथ।

उनकी रचनाओं का संकलन बाद में उनके शिष्यों ने किया। 'कबीर बीजक' में तो उनकी रचनाएँ संकलित हैं ही इसके अतिरिक्त **बाबू श्यामसुंदर दास ने उनकी रचनाओं का संकलन 'कबीर ग्रंथावली' में किया है।** उन्होंने मूर्ति पूजा, माला, तिलक, छापा, तीर्थाटन, गंगास्नान, रोजा, हिंसा, जाति प्रथा, ऊँच-नीच की भावना आदि का खंडन किया। यथा—

1. माला फेरत जुग गया गया न मन का फेर।

कर का मनका डारि के मन का मनका फेर।।

2. ऊँचे कुल का जनमिया करनी ऊँच न होय।

सुबरन कलश सुरा भरा साधू निन्दत सोय।।

3. फाहन पूजै हरि मिलैं तौ मैं पूजूँ पहार।

घर की चाकी क्यों नहिं पूजैं पीसि खाय संसार।।

हिंदुओं और मुसलमानों को फटकारते हुए कहा—

अरे इन दोहन राह न पाई

हिंदू अपनी करैं बड़ाई गागर छूअन न देंई।

वेश्या के पायन तर सोवैं यह देखौ हिंदुआई।

मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी-मुर्गा खाई।

खालाकेरी बेटी ब्याहैं घर ही में करे। सगाई।

वे शास्त्र पर नहीं आँखों देखी बात पर यकीन करते हैं—

तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता, आँखिन की देखी।

मैं कहता सुरझावन हारी तू राखा उरझोय रे।।

गुरु की महत्ता पर उन्होंने सर्वाधिक बल दिया हैं इसके अतिरिक्त नैतिकता, सदाचार, परोपकार, क्षमा, सत्य भाषण, संतोष आदि को उन्होंने श्रेष्ठ मानव के लिए आवश्यक माना है।

कबीर ने जीवन को ब्रह्म का अंश माना है जो माया के कारण अपने स्वरूप को भूला हुआ है। माया के नष्ट होते ही जीवात्मा एवं परमात्मा का मिलन हो जाता है—

जल में कुंभ कुंभ में जल है बाहर भीतर पानी।

फूटा कुंभ जल जलहि समाना यह तत कथेहु गियानी।।

यहाँ घड़ा माया का प्रतीक है जो घड़े के जल (जीवात्मा) को बाहर के जल (परमात्मा) से अलग हुए हैं जैसे ही घड़ा (माया) फूटता है दोनों जल मिलकर एक हो जाते हैं। वे कहते हैं कि सतगुरु ही व्यक्ति माया के बंधन से छुड़ाता है तथा ईश्वर का साक्षात्कार कराता है। कबीर ने गुरु महिमा का पाठ नाथ पंथियों से सीखा है।

सतगुरु की महिमा अनत अनत किया उपगार।

लोचन अनत उघाड़िया अनत दिखावणहार।।

कबीर के काव्य में हठयोग साधना एवं कुंडलिनी योग का जो विवरण मिलता है उसका संबंध नाथपंथ से हैं पारिभाषिक शब्दावली उन्होंने नाथपंत से ग्राहण की हैं कंडलिनी साधना वाले उनके पदों आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साधनात्मक रहस्यवाद माना हैं ऐसा एक पद उद्धृत है—

अवधू गगन मंडल घर कीजै।

अमृत झरै सदा सुख उपजै बंकनालि रस पीजै।।

कुंडलिनी मूलाधार चक्र में सुषुप्तावस्था में रहती है। योगी साधना द्वारा इसे जाग्रत करता है। और यह चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार चक्र में पहुँचती है जहाँ ब्रह्मरंध में झरने वाले अमृत रस का पान करती है

कबीर का रहस्यवाद भावात्मक कोटि का भी है। जहाँ जीवात्म का उस निर्गुण परमात्मा से भावात्मक संबंध जोड़ती हुई विरह, मिलन, जिज्ञासा, की अनुभूति करती है वहाँ भावात्मक रहस्यवाद के दर्शन होते कबीर ने जीवात्मा को प्रेयसी एवं परमात्मा को प्रियतम के रूप में चित्रित करते हुए उनके विरह एवं मिलन चित्र प्रस्तुत किए हैं

कै विरहिन कूं मीचु दै कै आपा दिखलाय।

रात दिना का दीक्षणीं मी पै सहा न जाय।।

मिलन की अनुभूति का वर्णन कबीर ने विवाह के सांग-रूपक द्वारा इस पद में किया है—

दुलहिनि गावहु मंगलचार।

मोरे घर आए हो राजा राम भरतार।

तन रत करि मैं मन रत करिहूँ पंचतत्त बाराती।

रामदेव मोरे पाहुने आए, मैं जोवन मैमाती।

सरीर सरोवर वेदी करिहूँ ब्रह्मा वेद उचारि।।

रामदेव संग भांवरि लैहो धनि-धनि भाग हमार।।

सुर तैंतीसू कौतिग आए मुनिवर सहस अठासी।।

कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं पुरसि एक अविनासी।।

भावात्मक रहस्यवाद की उद्घाटित करने वाले इन पदों में कबीर ने श्रृंगार रस की योजना की है

कबीर भले ही पढ़े-लिखे न हों पर उनका काव्य काव्यगत रमणीयता में रहित नहीं है। अलंकार, प्रतीक भाषा, आदि सभी दृष्टियों से वह उच्चकोटि का काव्य है।

कबीर के काव्य में 'प्रतीकों' का भी भरपूर प्रयोग हैं उनकी उलटबासियाँ सिद्धों से प्रभावित है विपरीत कथन के कारण लोगों को चमत्कृत करती हैं—

समुंदर लागी आग नदियाँ जलि कोइला भई।

देख कबीरा जाग मंछी रुखा चढ़ि गई।

यहाँ समुद्र-मूलाधार चक्र का प्रतीक है, नदियाँ चित्रवृत्तियों का प्रतीक है तथा 'मछली' कुंडलिनी के लिए प्रयुक्त है। निम्न पद में भी प्रतीको का प्रयोग उन्होंने किया है—

काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी।

तेरे ही नाल सरोवर पानी।।

जल में उतपति जल में वास जल में नलिनी तोर निवास।

ना तल तपति न ऊपर आगि तोर हेतु कहू कासनि लाग।

कहैं कबीर जे उदिक समान ते नाहिं मुए हमारोहि जान।।

इस पद में 'कमलिनी' जीवात्मा का तथा 'जल' परमात्मा का प्रतीक हैं जीव एवं ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन इसमें अन्योक्ति अलंकार के माध्यम से कबीर ने किया है।

कबीर के काव्य में रूपक, उपमा, अतिशयोक्ति, अन्योक्ति आदि अनेक अलंकार प्रचुरता से उपलब्ध हो जाते हैं। वस्तुत: काव्य रचना करना उनका लक्ष्य नहीं था। कविता तो उनके लिए साधन थी जिसके माध्यम से वे अपनी बात जनता तक पहुँचाना चाहते थे। कबीर भले ही आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व पैदा हुए हों, किंतु उनकी शिक्षाएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक है।

7.6.3 रैदास/रविदास—रविदास जाति के चर्मकार थे, काशी के निवासी थे। जन्मकाल के संबंध में निश्चयपूर्वक कहना संभव नहीं है। कुछ विद्वान इन्हें प्रसिद्ध कवयित्री मीरा का गुरु भी बताते हैं। रैदास का एक अन्य नाम रविदास भी है। संतबानी सीरीज के अंतर्गत इनकी रचनाओं का संकलन **'रविदास की बानी'** शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इनके लिखे हुए 40 पद गुरु ग्रंथ साहब में भी संकलित है। रैदास का नाम रामानंद के 12 शिष्यों में है, किंतु रैदास की रचनाओं में कहीं भी रामानंद का उल्लेख नहीं हैं निर्गुण ब्रह्म उनके लिए भी जिज्ञासा का विषय है। उनकी भाषा सरल ब्रजभाषा है जिसमें अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली, उर्दू-फारसी के शब्द भी मिल जाते हैं। उनकी कविता का एक नमूना प्रस्तुत है—

अब कैसे छूटे राम नाम रट लागी।

प्रभुजी तुम चंदन हम पानी जाकी अंग-अंग वास समानी।

प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।

प्रभुजी तुम स्वामी हम दास, ऐसी भगति करै रैदासा।।

7.6.4 धर्मदास—ये बांधवगढ़ के रहने वाले जाति के बनिये थे। बाल्यावस्था में ही इनके हृदय में भक्ति का अंकुर था। मथुरा से लौटते समय कबीरदास से इनका साक्षात्कार हुआ। कबीर के मुख मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, देवार्चन आदि का खंडन सुनकर इनका झुकाव निर्गुण संतमत की ओर हुआ। अंत में ये कबीर से सत्य नाम की दीक्षा लेकर उनके प्रधान शिष्यों में हो गये। उदाहरण के लिए उनके कुछ पद—

झरि लागै मलिया गगन घहराय।

खन गरजै, खन बिजुली चमकै, लहरि उठै शोभाा बरनि न जाय।

सुन्न महल से अमश्त बरसै, प्रेम अनंद है साधु नहाय।।

खुली केवरिया, मिटी अधियरिया, धनि सतगुरू जिन दिया लखाय।

धर्मदास बिनवै कर जोरी, सतगुरू रचन में रहत समाय।।

मितऊ मड़ैया सूनि करि गैलो।।

अपने बलम परदेस निकरि गैलों, हमरा के किछुवौ न गुन दै गैलो।।

जोगिन होइके मैं, वन ढूँढ़ों, हमरा के बिरह बेराग दै गैलो।।

सँग की सखी सब पार उतरि गइलो, हम धनि ठाढ़ि अकेली रहि गैलो।

धर्मदास यह अरजु करतु है, सार सबद सुमिरन दै गैलो।।

7.6.5 मूलकदास—मूलकदास का जन्म लाला सुंदरदास खत्री के घर में बैशाख कृष्ण 5 संव 1631 में कड़ा जिला इलाहाबाद में हुआ। इनकी मृत्यु 108 वर्ष की अवस्था में संवत 1739 में हुई। ये निर्गु मत के नामी संतों में एक है। इनके संबंध में बहुत से चमत्कार है। इन्होंने एक डूबते जहाज को पानी के ऊप उठा कर बचा लिया। और रुपयों का तोड़ा गंगा जी में तैरा कर कड़ा से इलाहाबाद भेजा था।

इनके लिखे गंथों के नाम हैं **ज्ञानबोध, रतनखान, भक्तिविवेक, सुखसागर, भक्तवच्छावली बारहखड़ी, स्फुटपद, राम अवतार लीला, ब्रजलीला** तथा **ध्रुवचरित**। आलसियों का **महामंत्र** इन्हीं का र हुआ है।

अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।

दास मलूका कह गए सबके दाता राम।''

7.6.6 अक्षर अनन्य—संवत 1710 में इनके वर्तमान रहने का पता लगता है। ये दतिया रियासत के अंतर्गत सेनुहरा के कायस्थ थे और कुछ दिनों तक दतिया के राजा पृथ्वी चन्द्र के दीवान थे। पीछे ये विरक्त होकर पन्ना में रहने लगे। प्रसिद्ध छत्रसाल इनके शिष्य हुए। एक बार ये छत्रसाल से किसी बात पर अप्रसन्न होकर जंगल में चले गये। पता लगने पर जब महाराज छत्रसाल क्षमाप्रार्थना के लिए इनके पास गये तब इन झाड़ी के पास खूब पैर फैलाकर लेटे हुए पाया। महाराज ने पूछा 'पाँव पसाए कब से''। चट से उत्तर मिला हा समेटा जब से। ये विद्वान थे और वेदांत के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने दुर्गा सप्तशती का भी हिन्दी पद्यों में अनुवा किया। राजयोग के कुछ पद्य—

यह भेद सुनौ पर्थिचंदराय। फल चारहु को साधन उपाय।

यह लोक सधै सुख पुत्र जाय। परलोक नसै बस नरक धाम।।

परलोक लोक दोऊ सधै जाय। सोइ राजयोग सिद्धांत आय।।

निज राजयोग ज्ञानी करंत। हठि मूढ़ धर्म साधत अनंत।।

निर्गुणमार्गी संत कवियों की परंपरा में थोड़े ही ऐसे हुए है, जिनकी रचना साहित्य के अन्तर्गत आ सकत है। शिक्षितों का समावेश कम होने से इनकी बानी अधिकतर सांप्रदायिकों के ही काम की हे, उसमें मानव जीव की भावनाओं की वह विस्तृत व्यंजना नहीं है जो साधारण जन मानस को आकर्षित कर सके। इस प्रकार संत की परम्परा इसके अतिरिक्त अन्य कवियों में प्रमुख नामों में इनका उल्लेख किया जा सकता है।

7.6.7 रामानंद—जन्म 1368 ई० तथा मृत्यु 1468 ई०। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, शिक्षा काशी हुई। भक्तमाला के अनुसार, रामानंद के बारह शिष्य थे, जिनके नाम हैं—अनन्तानंद, सुखानंद, सुरसुरानंद नरहर्यानद, भावानंद, पीपा, कबीर, सेन, धन्ना, रैदास, सुरसुरी और पद्मावती। **रामानंद के शिष्यों में कबीर पीपा, अनंतदास, धन्ना प्रसिद्ध हैं। इनके गुरु का नाम राघवानंद था। इनहोंने रामावत-संप्रदाय का प्रवर्त किया।** तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा, वेदादि का विरोध करते हुए उन्होंने अंत:साधना पर बल दिया। **रामानंद के गु राघवानंद जी ने 'सिद्धान्त पंच मात्रा'** नामक ग्रंथ की रचना की।

7.6.8 गुरु नानक (1469-1538 ई०)—सिख संप्रदाय के प्रवर्तक गुरु नानक इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति है। उनका जन्म 1469 ई० में तलवंडी में हुआ था जो अब नानक देव साहब के नाम से जाना जाता है। नानक के पद गुरु ग्रंथ साहब में संकलित हैं। **जपुजी, असा दीवार, रहिरास, सोहिला** उनकी रचनाओं के नाम हैं।

नानकदेव समन्वयशील एवं उदार प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनके पिता का नाम **कालूचंद** और माता का नाम **तृप्ता** था। इनके दो पुत्र भी हुए—**लक्ष्मीचंद, श्रीचंद।** वे भ्रमणशील संत थे। निर्गुण ब्रह्म के प्रति भक्ति भावना उनके काव्य में विद्यमान है। **शांत रस की प्रधानता नानक की रचनाओं में है। उनकी भाषा पंजाबी एवं ब्रजभाषा मिश्रित है।** उनके पद राग-रागिनियों में निबद्ध हैं जिनमें करुण, शांत एवं शृंगार रस भी दिखाई पड़ता है।

7.6.9 हरिदास निरंजनी—ये निरंजनी संप्रदाय के कवि थे। इस संप्रदाय को नाथ पंथ एवं संत काव्य के बीच की कड़ी माना जा सकता है। इनके लिखे ग्रंथ हैं—**अष्टपदी, जोगग्रंथ, ब्रह्मस्तुति, हंसप्रबोध ग्रंथ, निरपखमूल ग्रंथ, पूजाजोग ग्रंथ, समाधिजोग ग्रंथ, संग्रामजोग ग्रंथ।** इन्होंने ब्रजभाषा में काव्य की रचना की है।

7.6.10 दादूदयाल (1544-1603)—इन्होंने दादू पथ का प्रवर्तन किया। वे एक धर्म सुधारक एक समाज सुधारक के रूप में प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि थे। इनके पथ को **परमब्रह्म संप्रदाय** भी कहा जाता है। **रज्जब, सुंदरदास, प्रागदास, जनगोपाल** इनके प्रमुख शिष्य थे। उनकी रचनाओं का संकलन **'हरडेवाणी'** नाम से उनके शिष्यों-**संतदास** एवं **जगन्नाथ दास** ने प्रस्तुत किया है। **परशुराम चतुर्वेदी** द्वारा संपादित **दादूदयाल** में भी उनकी प्रमाणिक रचनाएँ संकलित है।

7.7 निर्गुण संत कवियों का समाज सुधारक रूप पददलित जातियों में आत्मसम्मान का उदय

भारतीय समाज बहुत दिनों से जाति विभाजित समाज रहा हैं इसलिए जातीय श्रेष्ठता या निकृष्ठता का यहाँ विशेष महत्व रहा हैं ऊँच नीच जातियों में विभाजित समाज में एक वर्ग बड़े जमाने से शोषित होता चला आ रहा था। निम्न समझी जाने वाली इन जातियों को बराबर अदमानना की दृष्टि से देखा गया और इन्हें कुचला दबाया गया। इस अन्याय के प्रति इनमें विद्रोह का भाव बराबर पनपता रहा। निर्गुण धारा के ज्ञानमार्गी कवियों की विद्रोही वाणी के रूप में इसी का विस्फोट हुआ है। इनकी प्रतिभा और भावदभक्ति ने इन्हें समाज में सम्मानीय स्थान दिलाया रैदास के नीचे उदधृत शब्द इसी की ओर संकेत कर रहे है—

जाके कुटुम्ब सब ढोर ढोवन्त
फिराई अजहु बनारसी आसपासा।
आचार सहित विप्र करहि डंडउति
तिन तने रविदास दासानुदासा।।

कबीरदास तो स्पष्ट शब्दों में कहते है—

"एक ज्योति से सब उत्पन्न कौन बामन कौन सूदा" इन संतों का समाज में जो सम्मान मिला उससे पददलित जातियों में आत्मसम्मान का उदय हुआ। सामाजिक दृष्टि से यह भक्ति आंदोलन की बहुत बड़ी उपलब्धि थी।

7.8 संत काव्य में जीवन-दर्शन और मूल्य

जीवन दर्शन को लेकर संत काव्य में अंतविरोध की स्थिति दिखाई देती हैं। संत काव्य के अन्तविरोध की स्थिति दिखाई देती है। संत लौकिक और अलौकिक जीवन मूल्यों को एक साथ लेकर चलते हैं। वे लोक को भी महत्व देते है और परलोक को भी वे एक और मानव जीवन की नश्वरता की भी बात करते हैं और दूसरी और सामाजिक जीवन में व्याप्त हर प्रकार की विषमता की कटु आलोचना भी करते है। संतों के जीवन दर्शन का यह विरोध उस युग की देन हैं। यदि हम संत कवियों की आध्यामित्कता को परलोक चिंता को अनदेखा

कर दे तो उन्हें नि:संकोच मानवतावादी कहा जा सकता हैं वे मनुष्य को महत्व देते है उसके धर्म या जाति को नहीं उनका सबसे बड़ा मूल्य है। सहज जीवन कथनी और करनी की एकता में उनकी गहरी आस्था है—

जैसी मुख मैं नीकसे, तैसी चालै चाल।
पारब्रह्म नेड़ा रहे, पल में करै निहाल।।

संत काव्य का मूल्यांकन दो दृष्टियों से किया जा सकता है—एक सामाजिक दृष्टि से और साहित्यिक दृष्टि से सामाजिक दृष्टि से इस काव्य का महत्व असंदग्धि हैं। सतों ने संघर्ष और सामाजिक अस्थिरता के उस समय में हिन्दू मुसलमान दोनों के लिए स्वीकार्य सामान्य उपासना पद्धति को निकाल कर महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने अपनी उपासना पद्धति में जाति धर्म निरपेक्ष मनुष्य को स्वीकार करके मानवतावादी दृष्टि की स्थापना की उन्होंने मनुष्यत्व की सामान्य भावना को सामने रखकर उस समय के निम्न श्रेणी के लोगों में आत्मगौरव की भावना को जगाया और भक्ति के उच्चतम स्तर पर पहुँचने का मार्ग उनके लिए प्रशस्त किया।

संदर्भित ग्रन्थ

हिन्दी का गद्य साहित्य	—	रामचन्द्र तिवारी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का अतीत भाग 1	—	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
साहित्येतिहास आदिकाल	—	सुमन राजे
हिन्दी साहित्य का आदिकाल	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन	—	विद्यानिवास मिश्र
हिन्दी पुस्तक साहित्य	—	माताप्रसाद गुप्त
हिन्दी साहित्य चिन्तन	—	इन्द्रपाल सिंह
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	किशोरीलाल
साहित्य दिशाएँ	—	मृत्युंजय उपाध्याय
हिन्दी साहित्य परिचय	—	रामचन्द्र शुक्ल

बोध प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. निर्गुण ज्ञानमार्गी संत काव्य का अर्थ बताइए तथा इसकी परम्पराओं पर प्रकाश डालिए
2. भक्ति आंदोलन और निर्गुण संत कवियों पर टिप्पणी कीजिए?

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. निर्गुण ज्ञानमयी संतकाव्य से आप क्या समझते हो?
2. 'ज्ञानमयी संतकाव्य वैचारिक आधार है।' इस पर अपने विचार लिखिए।
3. नामदेव कौन थे? उनके द्वारा हिन्दी साहित्य को क्या योगदान मिला?
4. कबीर ने आडम्बर का खंडन किस प्रकार किया है? एक आलेख लिखिए।
5. रामानन्द कौन थे? उनके कितने शिष्य हुए, उनके नाम लिखिए।
6. मलूकदास द्वारा किए गए समाज सुधार पर चर्चा कीजिए।
7. 'संतकाव्य में जीवन दर्शन का मूल्य मिलता है।' इस विषय पर अपने विचार लिखिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. ज्ञानबोध तथा भक्तिविवेक किस रचनाकार की रचनाएँ हैं?
2. ध्रुवचरित, असा दीवार और सोहिला किस रचनाकार की रचनाएँ हैं?
3. किन्हीं दो कवियों के नाम लिखिए जिनके पदों का गुरुग्रन्थ साहिब में उल्लेख किया गया है?
4. हरडेवाणी में किस कवि के पदों का संकलन है?
5. हरडेवाणी में किसने पदों का संकलन किया है?

इकाई (Unit)

8

निर्गुण प्रेममार्गी सूफी काव्य धारा

संरचना

8.1 उद्देश्य
8.2 प्रस्तावना
8.3 सूफी का परिचयात्मक अध्ययन
8.4 हिंदी सूफी काव्य परम्परा तथा सूफी मत का वैचारिक आधार
8.5 सूफी प्रेम काव्य परम्परा
8.6 सूफी मत और सिद्धान्त
8.7 सूफी काव्य के प्रमुख कवि
    8.7.1 मलिक मुहम्मद जायसी
    8.7.2 नूर मुहम्मद
    8.7.3 कुतुबन
    8.7.4 अन्य सूफी कवि
8.8 प्रेमाख्यान का स्वरूप
8.9 सूफी काव्य की विशेषताएँ
    8.9.1 काव्य प्रेरणा एवं प्रयोजन
    8.9.2 (प्रबंध) कल्पना
    8.9.3 कथावस्तु
    8.9.4 भावपक्ष
    8.9.5 विविध प्रभाव
8.10 मूल्यांकन
    बोध प्रश्न

8.1 उद्देश्य

- सूफी काव्य की पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे और सूफी शब्द के विषय में बता सकेंगे।
- सूफीमत और सिद्धान्त की आंतरिक और बाह्य विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- सूफी काव्य परम्परा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- सूफी काव्य में व्यक्त प्रेम तत्व के विषय में चिंतन कर सकेंगे।
- सूफी काव्य में व्यक्त रहस्यवाद के बारे में बता सकेंगे।
- भारतीय भक्ति आन्दोलन के संदर्भ में हिन्दी सूफी काव्य का मूल्यांकन कर सकेंगे।

8.2 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने भक्तिकाल के निर्गुण ज्ञानमार्गी का अध्ययन किया था। इस इकाई में हम नि
भक्तिमय की दूसरी धारा प्रेममार्गी धारा के संदर्भ में अध्ययन करेंगे। इस धारा के कवि सूफी संत थे।

भक्तिकाल के निर्गुण संत काव्य के अंतर्गत सूफी काव्य को विद्वानों ने कई नामों से संबोधित किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे 'प्रेममार्गी सूफी शाखा' नाम से संबोधित किया है। अन्य नामों में प्रेमाख्यान काव्य, प्रेम काव्य, आदि प्रमुख है। इस काव्य परम्परा को सूफी संतों की देन माना जाता है।

सूफी शब्द की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में विभिन्न मत है। कुछ विद्वान 'सूफ' को सफ शब्द से निकला हुआ मानते है जिसका अर्थ है, जो अग्रिम पंक्ति में खड़े होंगे, वे सूफी होंगे। कुछ एक विद्वान मदीना की मस्जिद के समक्ष सुफ्फा-चबुतरे पर बैठने वाले फकीरों को सूफी कहते है। सूफी शब्दों को सोफिया का रुपानतर माना गया हैं कुछ विद्वानों ने सूफी शब्द का संबंध सफा से जोड़ा है जिसका अर्थ पवित्र और शुद्धता। कुछ ने तर्क संगति के आधार पर सूफी शब्द का संबंध सूफ अर्थात् 'उन' कपड़े से माना गया है।

आचार्य शुक्ल ने भक्तिकालीन हिन्दी की इस प्रेमाख्यान परम्परा को फारसी-मसनवियों से प्रेरित माना हैं इस काव्य धारा के प्रमुख प्रवर्तक मलिक मुहम्मद जायसी हैं।

8.3 सूफी का परिचयात्मक अध्ययन

सूफीमत इस्लाम धर्म की एक उदार शाखा हैं जिसका उदय इस्लाम के अस्तित्व में आने के बाद हुआ। सूफी संप्रदाय मत का प्रवेश इस देश में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (बारहवी शताब्दी) के समय में माना जाता है। सूफियों के चार संप्रदाय इस देश में मिलते हैं—

(1) चिश्ती संप्रदाय (2) सोहरावर्दी संप्रदाय (बारहवी शताब्दी) (3) कादरी संप्रदाय (पंद्रहवी शताब्दी) (4) नक्शबंदी संप्रदाय (पन्द्रहवी शताब्दी)। इन सूफी संतों के आकृष्ट किया। भारतीय सदकी संतों ने भारत में प्रचलित गाथाओं, लोक कथाओं का आश्रय लेकर अपने आध्यात्मिक विचारों को जनता तक पहुचांया है। इस ढंग का प्रथम काव्य मुल्लदाऊद नामक सूफी संत का "चंदायन" या "चंद्रावन" है।

"सूफी" शब्द की व्युत्पत्ति कैसे हुई यह बात विद्वानों में विवाद का विषय रही है कि यह "सूफा" से बना है। जिसका अर्थ है पवित्रता। इस धारणा के अनुसार "सूफी" उन्हें ही कहना चाहिए जो व्यक्ति मन वचन कर्म से पवित्र कहे जा सकते है। एक दूसरे मत के अनुसार "सूफा" शब्द हृदय से निष्कपट या छल रहित व्यक्ति के लिए प्रयुक्त किया गया है। इसलिए सूफी ऐसे व्यक्ति को ही कहना चाहिए। जो परमात्मा के प्रति निश्छल प्रेम भाव रखता हो और समस्त प्राणियों के साथ भी निश्छल व्यवहार करता हो "सूफी" शब्द 'सोफिया' से निकला है। जिसका अर्थ "निर्मल ज्ञान" होता हैं इस अर्थ के अनुसार निर्मल ज्ञानी व्यक्ति ही सूफी कहलाने के अधिकारी कहे जा सकते है। चौथा मत यह है कि सूफी शब्द सफ से निकला है। जिसका अर्थ है सबसे आगे की पंक्ति इस अर्थ के अनुसार सूफी केवल उन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों को कहा जा सकता है। जो कयामत के दिन ईश्वर के प्रियपात्र होने के कारण सबसे आगे की पंक्ति में खड़े किए जायेगें। सूफी उन संत फकीरों को कहते थे जो सादा जीवन उच्च विचार के साथ कठोर साधना का जीवन व्यतीत करते थे और भोग विलास से दूर थे। ईश्वर के प्रेम में लीन रहना ही उनके जीवन का उद्देश्य था।

सूफी संत काव्य के सामाजिक सांस्कृतिक आधार को समझने के लिए शोषित वगों विशेषकर किसानों, जुलाहो, कारीगरों, व्यापारियों और सामंतों आदि के सामाजिक रिश्तों को समझना जरूरी हैं इन रिश्तों को समझना इसलिए जरूरी हैं कि ये संत देश की सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों के भीतर से उत्पन्न हुए है। संत साहित्य का 15वीं, 16वीं और 17वीं शताब्दी की जिन परिस्थितियों से सीधा रिश्ता है—वह भारतीय समाज के सामंतवादी ढ़ाँचे को तोड़ने के लिए निर्गुण भारतीय जीवन की सबसे बड़ी बाधा थी सामंतवाद। जिस ढाँचे को तोड़ने के लिए निर्गुण और सगुण भावशक्ति काल ने क्रान्तिकारी और ऐतिहासिक भूमिका अदा की है। संतों ने धार्मिक विद्वेष के बदले धार्मिक सहिष्णुता का मानवतावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

8.4 हिंदी सूफी काव्य परंपरा तथा सूफी मत का वैचारिक आधार

भक्तिकाल की निर्गुण धारा के अन्तर्गत संत काव्य एवं सूफी काव्य नामक दो शाखाएँ है। सूफी का लिए प्रचलित कुछ अन्य नाम है—प्रेममार्गी शाखा प्रेमाश्रयी शाखा प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा रोमांटिक काव्य परंपरा आदि। स्पष्ट ही इस शाखा में प्रेमतत्व की प्रधानता परिलक्षित होती है। सूफी काव्य में उप प्रेम भावना भारतीय प्रेम से कुछ अलग है। यह स्वच्छंद प्रेम है जिसे अंग्रेजी में 'रोमांस' कहा गया है। इ भावना में स्वच्छंदता, सौंदर्यभावना, साहसपूर्ण क्रियाकलाप विद्यमान रहते हैं तथा यह मर्यादावादी दाम्पर से हटकर है। स्वच्छंद प्रेम समाज की मान्यताओं को स्वीकार नहीं करता। हिंदी के मध्यकालीन प्रेमाख्यान में इसी 'रोमांस' का चित्रण किया गया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस प्रेमाख्यानकों पर फारसी मसनवियों का प्रभाव माना है।, किंतु हमें य स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रकार का प्रेम चित्रण भारतीय परंपरा में भी प्रचुरता से उपलब्ध होता है। ऋ में उर्वशी-पुरुरवा का आख्यान, महाभारत का नल-दमयंती आख्यान, तप्ता-संवरण आख्यान और पुरा वर्णित उषा-अनिरुद्ध, राधा-कृष्ण, प्रभावती-प्रद्युम्न आख्यान भी स्वच्छंद प्रेम की परिभाषा में आते हैं। स्व प्रेम की यही परंपरा कालांतर में सस्कृत में वासवदत्ता, कादंबरी, दशकुमार चरित में दिखाई पड़ती है। शू 9वीं शताब्दी में कथा काव्य के लक्षण निर्धारण मे यह स्वीकार किया है कि उसमें नायिकाओं को पाने के साहसपूर्ण संघर्ष करना अनिवार्य होता है। राम का चरित्र यदि यथार्थवादी भारतीय चरित्र है तो कृष्ण का भी स्वच्छंदतावादी भारतीय चरित्र है। ऐसी स्थिति में सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों को पूर्णत: विदेशी प्रभा युक्त मानना उचित नहीं है।

प्राकृत भाषा में गुणाढ्य द्वारा रचित वृहत्कथा तथा क्षेमेंद्र के कथासरित्सागर की प्रेमकथाओं में प्रे उत्पत्ति सौंदर्य प्रेरणा में हुई है तथा नायक को नायिका के संरक्षकों का विरोध झेलना पड़ा है। यही नहीं कालिदास के मेघदूत का यक्ष, ऋग्वेद का पुरुरवा, कथासरित्सागर और दशकुमार चरित के नायक भी वि विरह कातर होकर नायिका के प्रणय की आकांक्षा करते दिखाए गए हैं, अत: नायक का विराह—विल अभारतीय पद्धति नहीं मानी जा सकती।

फारसी मसनवियों में नायिका का विवाह प्रतिनायक से हो जाता है और नायक आत्महत्या कर ले पर भारतीय प्रेमाख्यानकों में किसी दैवी शक्ति की सहायता से नायक को नायिका की प्राप्ति अवश्य ही हो है। यही नहीं इनमें हंस, शुक, आदि पक्षियों द्वारा संदेश ले जाना, शिव-पार्वती आदि से सहायता मि नायिका को पाने के लिए उसके संरक्षकों से युद्ध करना जैसे वृत्तांत भी हैं, जो फारसी मसनवियों में न भारतीय पौराणिक आख्यानों के अनुरूप हैं, अत: यह कहना उचित होगा कि सूफी कवियों द्वारा प्रेमाख्यनक फारसी मसनवियों की शैली में न लिखे होकर भारतीय परंपरा में हैं।

वस्तुत: यह प्रेमाख्यानक परंपरा महाभारत की अनेक कथाओं में उपलब्ध होती है। प्रणय-स्वप्नों के के लिए सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन, कन्याओं का हरण तथा विवाह में आर्य-अनार्य के भेद का ले वैध था। भीम ने असुरकन्या हिडिंबा से, अर्जुन ने नागकन्या चित्रागंदा से और कृष्ण ने ऋक्षकन्या जांबव विवाह किया था। महाभारत का नल दमयंती वृतांत (वन पूर्व) प्रेमाख्यानक काव्य की सभी विशेषताओं से है और **डॉ० नगेंद्र** ने इसी को भारतीय प्रेमाख्यानों की आधारभूमि माना है।

उसके उपरान्त हरिवंश पुराण में वर्णित कृष्ण-रुक्मिणी, प्रद्युम्न-प्रभावती और ऊषा-अनिरुद्ध आर में दी गई कथानक रूढियाँ, यथा-देव मंदिर में पूजा हेतु की गई नायिका से नायक की गुप्त भेंट, स्वप्नदर्श चित्र दर्शन से प्रेम उत्पन्न होना, नायक द्वारा भेष बदलकर दरबार में जाना, नायक का बंदी होना देवी सह से लक्ष्य मिलना आदि का उपयोग हिंदी प्रेमाख्यानों में किया गया हैं प्राकृत में रचित 'वृहत्कथा' यद्यपि मूल में अनुपलब्ध है तथापि इसकी विषय वस्तु का ज्ञान हमें इसी के आधार पर रचित '**वृहत्कथामंजरी**' '**कथासरित्सागर**' से प्राप्त हो जाता है। वृहत्कथा के नायक उदयन के पुत्र नरवाहन दत्त के साहस, शौ

प्रेम की कहानियाँ भी इन प्रेमाख्यानों की आधारभूमि रही हैं। उक्त कथानकों में जिन प्रमुख कथासूत्रों का प्रयोग हुआ है। उसी का आधार सूफी प्रेमाख्यानों में लिया गया है। ये कथासूत्र इस प्रकार है—

1. नायिका के नाम के अंत में 'वती' आता है। यथा—पद्मावती।
2. नायिका किसी द्वीप की निवासिनी होती है यथा—सिंहलद्वीप।
3. स्वप्नदर्शन, चित्रदर्शन या गुणाकथन से नायक नायिका में प्रेम होता।
4. नायक द्वारा ब्राह्मण, भिक्षु, योगी का तपस्वी वेश में नायिका का खोज हेतु निकलना।
5. मंदिर या पुष्पवाटिका में नायक-नायिका की प्रथम भेंट होना।
6. नायिका के संरक्षक से नायक का युद्ध होना।
7. किसी सिद्ध, योगी, बेताल या देवता की सहायता से नायक की नायिका की प्राप्ति होना।

इस प्रकार बने हुए कथासूत्र में घटनाओं की प्रचुरता है, भाव व्यंजना कम है, किंतु संस्कृत में रचित **वासवदत्ता** (सुबंधु), **कादंबरी** (बाणभट्ट), **दशकुमार चरित** (दंडी) में इन प्रवृत्तियों के साथ-साथ भाव-व्यंजना एवं अलंकृत शैली की प्रधानता है।

8.5 हिंदी प्रेम काव्य परम्परा

जायसी से पूर्व हिन्दी प्रेमाख्याकन काव्यों की एक समृद्ध परंपरा मिलती है। सूफी प्रेमाख्यान काव्यों से पर्व की परंपरा पर प्राकृत अपभ्रंशों के चरित काव्यों की परंपरा का गहरा असर है। यह असर लोकगाथात्मक प्रेमख्यानक काव्यों ढोला मारू रा दूहा सदयवत्स सावलिंगा, वीसलदेव रासों आदि में दिखाई देता हैं अपभ्रंश और अवहटठ के काव्य संदेश रासक नेमिनाथ चडमई आदि भी प्रेमाख्यानक काव्य ही है—जिनमें शृंगार और प्रेम की प्रधानता है जायसी से पूर्व सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा विद्यमान मिलती है और इस परंपरा में मुल्ला दाऊद का चंदापन या नूरकचंदा (सन् 1374 ई०) दामों कवि का लक्षण सेन पदमावती (सन् 1456) नारायण दास (रतनरंग) की छिताई वार्ता या छिताई चरित्र कुतुबन कश्त मश्गावती (सन् 1503) ईश्वर रचित सत्यवर्ती कथा सन् (1501 ई०) मंझन रचित मधुमालती तथा चतुर्भुजदास रचित 'मधुमालती' का उल्लेख मिलता हैं इन प्रेमारत्यानक काव्यों का मिलना इस बात का प्रमाण है कि जायसी के पहले से ही हिन्दी में प्रेमारत्यानक काव्यों की एक परंपरा विकसित हो रही थी स्वयं जायसी ने पदमावत में इस परंपरा का उल्लेख किया है—

विक्रम धैंसा प्रेम के बारॉ। सपनावति कह गयऊ पतारों।।
सुदेवच्छ मुगुधवति लागी। कंकतपूरि होइगा वैरागी।
राजकुंवर कंचरपुर गाऊ। गिरगावति कह जोगी भयऊ।
साधा कुंवर मनोहर जोगू। मधुमालति कहं कीन्ह विचागू।।
प्रेमावर्ती कहंसरसुर साधा। उखा लारि अनिरूद्ध वर बांधा।।

जायसी ग्रंथावली—(माता प्रसाद का पाठा लोचन दोहा) इस सूचनी से (1) एवत्मावती, मुग्धावती, मश्गवती, मधुमालती, प्रेमावती, ऊषा-अनिरूद्ध आदि प्रेम काव्यों का पता चलता है। इनमें से मश्गावर्ती तथा मधुमालती को छोड़कर शेष कृतियो का पता नहीं चल सका है। आत्मकथाकार बनारसीदास ने अर्द्ध कथा में (सन् 1603) मश्गावती तथा मधुमालती का उल्लेख यह कहकर किया है कि वे घर बैठकर इन कृतियो में रम रहे है। जायसी ने मंझन कवि की कृति मधुमालती का उल्लेख इसलिए नहीं किया कि वह कृति पदमावत सन् 1545 ई० में लिखी गई है। अत: जिस मधु मालती का जायसी ने संकेत किया है वह किसी अन्य कवि की

रचना है। लोक कथाएँ जैसी है—जिनका नाम जायसी के समय में प्रसिद्ध रहा होगा। जैसें विक्रमादित्य, अनिरूद्ध, सदथवत्स। ये लोक प्रचलित प्रेम कहानियों के नाम है जो जनता में प्रसिद्ध रहे होंगे।

8.6 सूफी मत और सिद्धान्त

सूफी संतों की प्रेम साधना पद्धति की दृष्टि को समझाने के लिए आवश्यक है कि हम उनके मत सिद्धान्त से भली-भाँति परिचित हो। साथ ही हम यह भी जान सके कि सूफी प्रेम दर्शन का तात्विक आधार है। सूफी फकीरों ने तत्कालीन समाज के कष्टों को दूर करने के लिए व्यक्तिगत साधना की उच्च भूमि पहुंच कर लोक रक्षा को आदर्शों को स्थापित किया। कोई अहंकारी नया पथा न चलाकर प्रेम मार्ग के गुण वर्णन किया। विद्वानों का आदर किया और वेद पुराण को कल्याण पथ की ओर ले जाने वाले वचन ह किया। जायसी वेद मार्ग का खुले रूप से समर्थन करते हैं।

राघव पूज जाखिनी दुहज देखाएसि सांझ।

वेद पथ जे नहि चलहि, ते भूलहि बन सांझ।।

जायसी ने रामानंद बटलआचार्य, चैतन्य महाप्रभु के अंहिसामय वैष्णव विचार प्रवाह के भक्ति रश मुक्त हृदय से अपना लिया। वे उग्र हिंसामयवाम मार्ग का साथ नहीं देते है क्यों नहीं देते इस वाय मार्ग के समाज में आदर का भाव न था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि तंत्र मंत्र वाले शाक्तों की तुलसीदास ही 'जे परिहरि हरिहर चरण, भजहिं भूतगन घोर नहीं करते है, सूफी जायसी भी करते है। मंत्र के प्रयोग करने वाले, भूत प्रेम और यक्षिणी आदि सिद्ध करने वाले तांत्रिकों और शाक्तों के प्रति उस समाज में भाव कैसे हो रहे थे इसका पता राघवचेतन के चरित्र चित्रण से मिलता है। शाक्त मत विहित मंत्र और प्रयोग आदि वेद विरूद्ध अनाचार के रूप में समझे जाने लेगे थे। इस कथन से यह वास्तविकता साप पर उभर कर सामने आ जाती है कि सूफी फकीरों ने वैष्णव मंत के अहिंसामय प्रेम को अपनाया। कारण प्रधान वैष्णव मत के इस पुनरुत्थान में अहंसा का भाव यों तो सारी जनता में आदर भाव कर चुका थ साधुओं और फकीरों के हृदय में विशेष रूप से बद्धमूल हो गया था। क्या हिन्दू क्या मुसलमान सगुणोपासक क्या निर्गुणोपासक सब प्रकार के साधु और फकीर इसका महत्व स्वीकार कर चुके थे। ब्रह्म की उपासना करने वाले सूफी-पशुहिंसा के खिलाफ है और इनकी सहृदयता और कोमलता किस सगुणोंपासक भक्त से कम नहीं है।

8.7 सूफी काव्य के प्रमुख कवि

सूफी काव्य के प्रवर्तक मलिक मुहम्मद जायसी माने जाते हैं। यह निर्गुणोपासक कवियों की दूसरी है। सूफी कवियों ने प्रेम कथाओं के लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक ईश्वर भक्ति की है। भक्ति का निर्गुण सूफी कवियों में जायसी, कुतुबन, मंझन, शेख नबी, कासिम शाह, नूर मुहम्मद आदि प्रमुख कवि 'प्रेममार्गी काव्य' को विकसित करने में अपना बहुत बड़ा योगदान दिया है। यहाँ सभी प्रमुख सूफी कवि परिचय दिया जा रहा है।

8.7.1. मलिक मुहम्मद जायसी—भक्तिकालीन प्रेमाख्यान काव्य के प्रमुख कवि जायसी है। जन्म के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। अन्त:साक्ष्य के आधार पर जायसी का जन्म 1495 ई० माना ग रायबरेली के जायस नगर में इनका जन्म हुआ। जायस नगर में जन्म लेने के कारण जायसी कहलाये। पिता का नाम मलिक शेख ममरेज या मलिक राजे अशरफ था। माता-पिता की बचपन में ही मृत्यु हो ज कारण ये फकीरों और साधुसंगति में रहने लगे। कुछ विद्वानों का कहना है कि, जायसी का विवाह हुआ उन्हें पुत्र भी थे किन्तु वे किसी दुर्घटना में मर गये। अन्त:साक्ष्य के आधार पर जायसी देखने में कुरूप एक आँख तथा कान से रहित थे। एक बार शेरशाह ने उनकी कुरुपता का उपहास उडाया तब उन्होंने

दिया, "मोहि का हँसेसि कि कोहरहित'-शेरशाह लज्जित हुए और इनका अत्यधिक सन्मान किया। इन्हीं के काल में इनके कई शिष्य बन गए थे शिष्य पद्मावत के पद्य गा गाकर भिक्षाटन करते थे। एक दिन ऐसा ही एक चेला अमेठी में नागमती का बारहमासा गाता फिर रहा था—

'कँवल जो विगसा मानसिर, बिनुजल गएउ सुखाई।
सूखि बेलि पुनि पलुहै, जो पिउ सींचें आइ।।'

राजा यह दोहा सुन कर जायसी को बडे आदरभाव से अमेठी ले आए। और वे अंत समय तक वहीं रहें। जायसी की मृत्यु वहीं पर अमेठी के जंगल में बहेलिए के तीर से हुई। अमेठी नरेश ने जायसी की यहीं पर एक समाधि बनवा दी, जो अब भी मौजूद है।

जायसी की रचनाओं के सन्दर्भ में विद्वानों द्वारा लगभग 21 रचनाओं का उल्लेख मिलता है। पद्मावत, अखरावट और आंखिरी कलाम ये तीन रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी है। अन्य रचनाओं में चम्पावत, इरावत, सखरावत, मरकावत, चित्रावत, मोराई-नामा, मुकहरानामा, पौस्तीनामा, सुर्वानामा, नैनावत, कहरनामा, मेखरावटनाम, धनावत, सोरठ, परमार्थ जपनी और स्फुट छंद आदि का उल्लेख किया जाता है। उनकी 'पद्मावत' में रत्नसेन और पद्मावती की लौकिक प्रेम कहानी द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की गई है। 'अखरावट' में वर्णमाला के एक-एक आधार को लेकर सिद्धान्त संबंधी तत्वों से भरी चौपाईयाँ कही गई हैं और साथ ही ईश्वर, सृष्टि, जीव, ईश्वर प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किए है। 'आखिरी कलाम' में कयामत के वर्णन के साथ जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार है।

जायसी ने अपनी रचनाओं में ठेठ अवधी के पूर्वीपन को अपनाया है। जायसी की भाषा प्रसाद और माधुर्यगुण से परिपूर्ण है। जायसी ने अपनी रचनाओं में दोहा, चौपाई छंदों का प्रयोग कर अवधी भाषा में सफल प्रयोग किया है। अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, अन्योक्ति, व्यतिरेक, विभावना, संदेह अनुप्रास, निदर्शना आदि का सफल प्रयोग किया है। नि:संदेह जायसी का साहित्य में विशेष स्थान है। बाबू गुलाबराय के शब्दों में—"जायसी एक महान कवि है। उनमें कवि के सहज गुण विद्यमान है। उसने सामायिक समस्या के लिए प्रेम की पीर को देन दी। उसपीर को अपने शक्तिशाली महाकाव्य के द्वारा उपस्थित किया। वह अमर कवि है।"

8.7.2 नूर मुहम्मद—ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के समय में थे और 'सबरहद' नामक स्थान के रहने वाले थे जो जौनपुर, आजमगढ़ की सहरद पर हैं पीछे सबरहद से ये अपनी सुसराल भादों चले गये। इनके ससुर शमसद्दीन का और कोई वारिस न था इसलिए वे सुसराल में ही रहने लगें। नूर मुहम्मद के भाई मुहम्मद शाह सबरहद ही मे रहे। नूर मुहम्मद के दो पुत्र हुए—गुलाम हुसैन और नसीरूद्दीन। नूर मुहम्मद फारसी के अच्छे आलिम थे और इनका हिंदी काव्य भाषा का ज्ञान और सब सूफी कवियों से अधिक था। फारसी में इन्होंने एक दीवान के अतिरिक्त 'रौजतुल हकायक' इत्यादि बहुत सी किताबें लिखी थी जो असावधानी के कारण नष्ट हो गयी। इनका एक और ग्रंथ फारसी अक्षरों में लिखा मिला हैं जिसका नाम है। 'अनुराग बाँसुरी' यह पुस्तक कई दृष्टियों से विलक्षण है पहली बात इसकी भाषा सूफी रचनाओं से बहुत अधिक संस्कृतगर्जित है। दूसरी बात है हिंदी के प्रति मुसलमानों का भाव। इन्द्रावती की रचना करने पर इन्हें उपालज सुनने को मिला था। कि तुम मुसलमान होकर हिंदी भाषा में रचना करने क्यों गये। इसी से अनुराग बाँसुरी के आरंम्भ में उन्हें यह सफाई देने की जरूरत पड़ी।

जानत है वह सिरजनहारा। जो किछु है मन मरम हमारा। हिन्दू मग पर पॉव न राखेऊ। का जौ बहुतै हिन्दी भाखेउ। मन इस्लाम मिरिकलै मॉजेऊ। दीन जेवरी करकस भॉजेऊ जह। रसूल अल्लाह पियारा। उम्मत को मुक्तावनहारा तहॉ दूसरो कैसे भावे। जच्छ असुर सुर काग न आवै। नूर मुहम्मद को हिन्दी भाषा में कविता करने के कारण जगह-जगह इसका सबूत देना पड़ा कि वे इस्लाम के पक्के अनुयायी थे। अत: वे अपने इस ग्रंथ की प्रशंसा इस ढंग से करते हैं—

यह बाँसूरी सुनै सो कोई। हिरदय स्त्रोत खुला जेहि होइ।

निसरत नाद बारूनी साधा। सुनि सुधि चेत रहे केहि हाथा।

सुनतै जौ यह सबद मनोहर। होत अचेत कृष्ण मुरलीधरण।

यह मुहम्मदी जन की बोली। जामै कंद नवातै घोली।

बहुत देवता ढाहि गिरावै। संखनाद की रीति मिटावै।

जहँ इसलामी मुख सो निसरी बात।

तहाँ सकल सुख मंगल, कष्ट नसात।

सुफी आज्यान काव्यों की अंजडित परंपरा की यही समाप्ती मानद्ध जा सकती है। इस परंपरा मुसलमान कवि हुए हैं केवल एक हिन्दू मिला है। सूफी मत के अनुयायी सूरदास नामक एक पंजाबी हिन्दू शाहजहाँ के समय नल-दयपंती कथा नाम की एक कहानी लिखी थी पर इसकी रचना अत्यंत निकृष्ट है

8.7.3 कुतुबन—ये चिश्ती वंश के शेज बुरहान के शिष्य थे और जौनपुर के बादशाह हुसेन शाह आश्रित थे। इन्होंने मृगावती नाम की कहानी, चौपाई-दोहे के क्रम में सन् 909 हिजरी (संवत् 1558) लिखी जिसमें चंद्रनगर के राजा गणपति के राजकुमार और कंचन के राजा रूपमुरारि की कन्या मृगवती प्रेमकथा का वर्णन है। कहानी का सारांश यह है कि चंद्रनगर के राजा गणपति देव का पुत्र कंचनपुर के रा रूपमुरारि की मृगावती पर मोहित हो गया। यह राजकुमारी उड़ने की विधा जानती थी अनेक कष्ट झेलने बाद राजकुमार को धोखा देकर कहीं उड़ गई। राजकुमार योगी होकर निकल पड़ा। समुद्र से घिरी एक पहा पर पहुँच कर रूक्मिनी नाम की एक सुंदरी को एक राक्षस से बचाया। उस सुंदरी के पिता ने राजकुमार के स उसका विवाह कर दिया। अंत में राजकुमार उस नगर में पहुँचा अपने पिता की मृत्यु पर सिहांसन पर बैठ मृगावती राज्य कर रही थी। वह वहाँ 12 वर्ष रहा। पता लगाने पर राजकुमार के पिता ने घर बुलाने के लिए भेजा। राजकुमार पिता का संदेश पाकर मृगावती के साथ चल पड़ा और मार्ग में रूक्मिनी को ले लि राजकुमार बहुत दिनों तक आनंद पूर्वक रहा, पर अंत में आखेट के समय हाथी से गिरकर मर गया। उस दोनों रानियाँ प्रिय के मिलने की उत्कंठा में बड़े आनंद के साथ सती हो गयी—

रूक्मिनी पुनि वैसहि मरि गई। कुलवंती सत सो सति जई।।

बाहर वह जीतर वह होई। घर बाहर को रहै न जोई।।

विधि कर चरित न जानै आनू। जो सिरसा सो निआनू।।

8.7.4 अन्य सूफी कवि—कवि 'उसमान' जहाँगीर कालीन कवि थे। हाजी बाबा इनके गुरू थे। उन्हे 'चित्रावली' नामक प्रेमाख्यान लिखा है। इसमें नेपाल राजकुमार सुजान और रुपनगर की राजकुमारी चित्राव की प्रेमकथा वर्णित हैं कवि शेख नबी ने सन् 1619 ई० में 'ज्ञानद्वीप' की रचना की थी। इसमें राजकु ज्ञानद्वीप और राजकुमारी देवयानी की प्रेम कथा चित्रित है। कवि 'मुल्लावजही' ने सन् 1609 ई० में 'कु मुश्तरी' प्रेमाख्यान काव्य हैं इसमें गोलकुण्डा के राजपुत्र मुहम्मद कुली कुत्बशाह और बंगाल की सुंदरी मुश्त की प्रेम-कथा वर्णित है। कवि 'नुस्त्रती' ने सन् 1658 को 'गुलशने इश्क' प्रेमाख्यान काव्य लिखा। इर कनकगिरि के राजकुमार मनहर और धर्मराज की पुत्री मदमालती की प्रेमकथा वर्णित हैं कवि 'मुकीमी' 'चन्दरबदन व महयार' प्रेमाख्यान लिखा। इसमें सुन्दरपटन के हिन्दू राजा की पुत्री 'चन्दरबदन' और मुस्लि व्यापारी पुत्र महरयार की दु:खान्त प्रेम कहानी है। कवि 'मीराहाशमी' ने सन् 1688 ई० में युसूफ—जुलेख प्रेमाख्यान लिखा।

इन प्रोमख्यानों के अलावा सूफि सन्तों ने दोहों, गजलों स्फुट पदों, की रचनाएँ प्राप्त होता।

8.8 प्रेमाख्यान का स्वरूप

प्रेमाख्यान का आख्यान शब्द तथा कथा आख्यायिका से कही न कही जुड़ता दिखाई देता है। किसी युग में आख्यान शब्द पुराणमाख्यानम् अर्थात् पुराण ही आख्यान है के लिए होता था, एवं इसके भीतर पाइ जाने वाली कथाओं को उपाखन कहा जाता था यही अर्थ सिद्ध करने के लिए महाभारत को भी भारताख्यान कहा गया है। आख्यान कल्पित ऐतिहासिक इतिवश्त्तात्मक तथा वर्णनात्मक होते थे। सूफियों ने भारत में प्रसिद्ध लोक कथाओं और लोक गाथाओं को अपनाया और उन पर अपने सिद्धांतों का रंग चढ़ा दिया। सूफी प्रेमख्यानों में प्रेम चार प्रकार से वर्णित मिलता है (1) चित्र दर्शन मानव अथवा पक्षी से नायिका का चित्र देखना और आसक्त हो जाना (2) स्वपन दर्शन-स्वपन में सुन्दर राजकुमार को देखना और प्रेम राग शुरू कर देना जैसे स्वटनावती काव्य में (3) गुण श्रवण-मानव या पक्षी से गुण और रूप वर्णन सुनकर आसक्त हो जाना जैसे पदमावत में हीरा मन तोते के द्वारा पदमावती के गुण व रूप का कथन (4) प्रत्यक्ष वर्णन यह परंपरा बहुप्रचलित रही है। इन प्रेमख्यान सूफी काव्यों के नायक प्रेम पीड़ा को लेकर जोगी हो जाते है। राज-पाठ धन दौलत छोड़कर प्रेमिका के लिए दीवाने हो जाते है। सात समुद्रों को पार करने का कष्ट उठाते है। कभी कभार प्रेमिका को पाने के लिए घोर संग्राम करते है। ये प्रेमी न केवल विकट यात्राओं को निकल पड़ते है। वरन अनेक प्रकार के कष्टों यातनाओं को सहते है।

प्रेमपहार कठिन विधि गढ़ा। सौ पै चढ़ै जो सिर दै चढ़ाप्रेम ही जीवन का सार सर्वस्व है। प्रेम के कारण ही मानव दिव्य हो गया है—मनुष्य प्रेम भयों बैकुंडी। नहि न कहा छार एक मूठी।।

प्रेमिका को पाने के लिए मंत्र तंत्र रसायन, छल कपट आदि को अपनाया जाता हैं भारतीय प्रेमकथाओं में प्रेमी प्रेमिका का विवाह करा दिया जाता है जबकि फारसी प्रेम कथाओं में ऐसा नहीं होता। लैला का विवाह किसी अन्य पुरुष से हो जाता हैं और मजनू आह भर-भर कर दम तोड़ता हैं जब मजंनू के मरने की खबर लैला को मिलती है। तब लैला में विरह की तीव्रता और दर्द की तड़प जागती है। ज्यादातर भारतीय प्रेम कथाएं सुखात्मक है। पदमावत जैसी दुखांत रचना का सृजन भारतीय भूमि पर कम ही हुआ है।

8.9 सूफी काव्य की विशेषताएँ

भक्तिकालीन निर्गुण धारा की यह प्रेममार्गी शाखा कहलायी जाती है। इस काव्य धारा के प्रमुख कवि 'जायसी' है। प्रेममार्गी सूफी कवियों ने कल्पित कहानियों के माध्यम से प्रेममार्ग का महत्व प्रतिपादन किया हैं इन कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस प्रेम तत्व कां अभास दिया है। इन काव्य में रचित प्रेम कहानियों का विषय तो साधारण होता हैं किसी राजकुमार का किसी राजकुमारी के प्रेम में पागल होना और घर बार छोड़कर निकल पड़ना। अपनी प्रेमिका को पाने के लिए अनेक कष्ट और आपत्तियाँ झेलकर अंत में उस प्रेमिका राजकुमारी को प्राप्त करना। सूफी कवियों ने जो प्रेम कहानियाँ ली है वे सब हिन्दू परिवारस्थित कई दिनों से चलती आयी प्रेम कहानियाँ है। अत: कहानियों का आधार हिन्दू है। सूफी प्रेम काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ निम्न प्रकार है।

8.9.1 काव्य प्रेरणा एवं प्रयोजन—प्रेममार्गी शाखा के सूफी काव्यधारा के कवियों ने सूफी मत का प्रचार प्रसार अपनी काव्य की रचना के माध्यम से करने का प्रयास किया है। इस परम्परा में हिन्दू कवि भी थे। उन्होंने काव्यारंभ में हिन्दू देवी-देवताओं की वंदना भी की हैं किन्तु मुस्लिम कवियों ने सूफी मत का प्रचार करने का प्रयास किया था। साथ ही इनका काव्य-प्रयोजन यश प्राप्ति, काव्य कला का प्रदर्शन और युवाओं का मनोरंजन रहा है। इन कवियों ने भारतीय शास्त्रों का आधार लेकर रचनाओं का निर्माण किया है।

8.9.2 प्रबन्ध कल्पना—सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम कहानियों के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की है। इन की यह प्रेम कहानियाँ प्रबन्ध काव्य की कोटि में आती है। इन कवियों का उद्देश्य कोरी प्रेम कहानी न होकर प्रेमतत्व का निरुपण करना तथा उसका महत्व निर्धारित करना है। सूफी कवियों ने

अपने प्रेम पात्र के सौंदर्य को ज्योतिमय पुंज के रूप में चित्रित किया है, कि प्रत्येक जीव उसकी ओर आकर्षित होकर अपना सर्वस्व उस पर न्योछावर करने के लिए तैयार हो जाता है। इस काव्य की प्रेमिकाएँ और प्रेमी पथ पर आने वाली बाधाओं को पारकर सिद्धिपथ पर चढ़ते जाते हैं। इन कथाओं में पक्षियों, देवों और अप्सराओं का उल्लेख किया गया हैं।

प्रबन्ध काव्योचित वस्तु एवं घटना वर्णन में जो प्रवाह गति अपेक्षित है, प्राय: इन काव्यों में उसका अभाव हैं कथावस्तु के वस्तु वर्णन में सब ने प्रबन्ध रुढ़ियों की शरण ली है। प्रेमाख्यानों प्राय: सर्वत्र समुद्र, तूफान, फुलवारियाँ, वन और मकान जैसे है। इन काव्यों की क्रम योजना प्राय: एक जैसी है। सर्वप्रथम मंगलाचरण मे ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का वर्णन, तत्पश्चात हजरत मुहम्मद और उनके सहयोगियों की प्रशंसा की जाती है। संप्रदाय के उल्लेख के बाद कथारंभ रागासक्ति और नायक-नायिका की प्राप्ति के लिए सर्वस्व त्यागकर आँधी तूफान का सामना करने निकलता है। प्रेमी प्रेमिका के मिलन के पश्चात् अधिकतर प्रेमाख्यानों का अन्त दुखान्त होता है।

8.9.3 कथावस्तु—प्रेमाख्यानों में चार स्त्रोतों से प्राप्त सामग्री का कथावस्तु के रूप में उपयोग किया है। (1) महाभारत, हरिवंशपुराण, विष्णुपराण आदि। (2) प्राकृत–संस्कृत के परम्परागत कथानक (3) उदयन, विक्रम, रत्नसेन आदि ऐतिहासिक पात्रों की गाथाएँ (4) लोक प्रचलित प्रेमकथाएँ इन में कल्पना शक्ति का प्रयोग भी किया है। अत: इनका आधार भारतीय साहित्य को मानना चाहिए।

8.9.4 भावपक्ष—प्रेम मार्गी सूफी कवियों का मुख्य विषय प्रेम है। प्रेम के वियोग पक्ष को अधिक महत्व इन कवियों ने दिया है। जितना ध्यान प्रेमी और प्रेमिकाओं के वियोग, उसकी अवधि में झेले जाने वाले कष्टों तथा उनका अन्त करने के लिए किए गये विविध प्रयत्नों को वर्णन करने में दिया है उतना उनके अन्तिम मिलन पर नहीं दिया गया। इन्होंने बारह-मास को महत्व दिया है और भारतीय पद्धति का व्यवहार किया है। कहीं-कहीं भारतीय प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। सूफियों ने वैष्णवों की अहिंसा को क्रियात्मक रूप से अपनाया है। उपनिषदों के प्रतिबिंब वाद के अनुसार नाना रूपात्मक जगत ब्रम्ह का प्रतिबिम्ब हैं जायसी ने अनेक स्थलों पर जैसे "नयन जो देखा कमल भा ....." में प्रति बिम्बवाद के साथ ही विचार साम्य दिखाया हैं सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में पंचमहाभूतों में से आकाश छोड़कर अन्य को स्वीकारा है। हठयोग का प्रभाव इन पर स्पष्ट ही है। इनके शृंगार का नख-शिख वर्णन कामशास्त्र से प्रभावित है। उनकी प्रणय भावना फारसी से नहीं कर भारतीय शृंगार रस की परम्परा से आती है।

8.9.4.1 काव्य रूप—काव्य प्रकार की दृष्टी से सूफी काव्य भारतीय कथा काव्य परम्परा में आते है। इसकी पुष्टि अनेक लक्षणों से हो जाती है। अनेक कवियों ने अपनी रचनाओं को कथा की संज्ञा दी हैं जैसे दामोदर रचित लखनसेन पद्मावती कथा, ईश्वरदास-सत्यवती कथा, जानकवि-कथा रत्नावती, कथा कामलता, कथाकनकावती, व्यास-नल दमयंती कथा आदि। कुछ कवियों ने कथा शब्द प्रयोग शीर्षक में नागा कर काव्य के अन्तर्गत किया है—जायसी-प्रेम कथा एहीं भाँति बिचार हुँ, मंझन—कथा जगत जे ती कवि आई, उसमान—जाकी बुद्धि होई अधिकाई, आलम-कहौं बात सुनों सब लोग। कथा-कथा सिंगार वियोग। परशुराम चतुर्वेदी ने सूफियों के काव्य प्रकारों को अधिक स्पष्ट करते हुएँ लिखा है—"सूफी प्रेमाख्यान तक ऐसी रचना है, जिसमें किसी प्रबन्ध काव्य के प्राय: सभी तत्व वर्तमान है, किन्तु जिसमें इसके साथ ही कथा आख्यायिका, जैन चरित काव्य, एवं मसनवी की भी विशेषताओं का भी समन्वय हो गया है, और यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है।"

फारसी रूढ़ियों का प्रभाव मिलता है। कई प्रसंगों में रक्त की अतिरंजितता विभत्स लगने लगती हैं कई स्थलों पर संयोग अवस्था का वर्णन अश्लील लगने लगता हैं इन कवियों ने संयोग अवस्थाओं को भोग विलास के लिए उपयुक्त वातावरण मान लिया तो कभी उसका रहस्यात्मक अर्थ भी कर डाला। प्राय: सूफी कवियों ने प्रेम तत्व की व्याख्या करते हुए सौंदर्य के स्वरूप एवं प्रभाव पर बहुत कुछ कह डाला है।

8.9.4.2 चरित्र-चित्रण—सूफी काव्य के चरित्र-चित्रण में काई वैविध्य नहीं हैं इनके नायक प्राय: सामन्त या राजकुमार रहे है, और नायिकाएँ राजकुमारी के रुप में दर्शायी गयी है जोकि संस्कृत साहित्य की नायिकाओं के समान एक ही ढाँचे में ढली हुई है। नायक का स्वरूप प्राय: पहले से ही निश्चित सा दृष्टी गोचर होता हैं राजकुमारी अत्यन्त सुदंरी, रूपगर्विता दिखाई गई है। नायिकाएँ भारतीय परम्परा के अनुसार पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई अन्त में सती हो जाती हैं नायक का विरोध नायिका के पिता या संरक्षक द्वारा ही होता है। अन्य काल्पनिक पात्र है, उनका स्थान गौण है। कई स्थलों पर ऐतिहासिक चरित्रों का चित्रण प्रभावी हुआ है। इन सभी चरित्रों पर भारतीय का गहरा प्रभाव है।

8.9.4.3 लोक पक्ष एवं हिन्दू संस्कृति—प्रेममार्गी सूफी कवियों ने लोक जीवन का सहज चित्रण किया है। जैसे—अन्धविश्वास, मनौतियाँ, चयंत्र-तंत्र प्रयोग, जादू टोना, डायनों की करतूते, विभिन्न लोकोत्सव, लोक व्यवहार, तीर्थ, व्रत सांस्कृतिक वातावरण बड़ी सफलता से अंकित किया गया है।

प्रेम काव्यों के रचयिताओं ने हिन्दू घरानों की प्रेम कहानियाँ लेकर उनका तदनुरूप वर्णन किया हैं सामान्यत: सभी सूफी कवियों को हिन्दू संस्कृति, परम्परा और धर्म का यथावत परिचय था। इस कारण हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों और आचार-विचार का सुंदर वर्णन किया हैं हिन्दू चरित्रों में हिन्दू आदर्श की स्थापना की है। सूफी कवियों का नखशिख वर्णन भी संस्कृत के कामशास्त्रों के ग्रंथो पर आधारित है। प्रसंगानुरूप इन कवियों ने भारतीय ज्योतिष, रसायन शास्त्र, आयुर्वेद का भी वर्णन किया है। कवि जायसी का ज्ञान कहीं पर अधुरा था जैसे अलकापुरी को कुबेर नगरी कहा तथा नारद को शैतान के रूप में बताया। उन्होंने स्वर्ग को आसमान कहा है ओर रत्नसेन की उपमा रावण से दी है। इस प्रकार की गलतियाँ सूफी काव्यों में खोजी जा सकती है।

8.9.4.4 प्रतीक विधान—सूफी कवियों को लौकिक प्रेम कहानियों द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना करते हुए अव्यक्त सत्ता का आभास देना यही उद्देश्य था। इस रसस्यात्मकता की अभिव्यक्ति के लिए सांकेतिक विधान या प्रतीकों का उपयोग करना अनिवार्य हो जाता है। यही कारण है कि, इन्होंने अपनी रचनाओं में प्रयुक्त कानिपत शब्दों को सांकेतिक रूप दे दिया हैं। जहाँ ऐसा नहीं किया गया वहाँ उस रचना के अन्त में कथा के वास्तविक रहस्य को समझा दिया गया है। इसी उद्देश्य की पूर्ति करती हुई जायसी की पंक्ति "तन चितउर मन राउन कीन्हा" दिखाई देती है। कहीं-कहीं पर इन्होंने प्रकृति के माध्यम से भी अव्यक्त सत्ता की सर्वव्यापकता का संकेत किया है। जैसे पद्मावत में 'रतिव ससि नखत्र दिपत ओहि जोती।" वस्तुत: सूफी कवियों में भावात्मक रहस्यवाद की मनोहारी सृष्टि हुई हैं।

8.9.4.5 नारी चित्रण—सूफी काव्यों की यह बड़ी विशेषता हैं कि, उनमें प्रेम का प्रमुख स्थान नारी पात्र को ठहराया है। नारी को परमात्मा का प्रतीक माना हैं। वस्तुत: सूफी कवियों ने प्रेम साधना में नारी को सहायक रूप में स्वीकार किया हैं। फलस्वरूप यहाँ पर नारी साधकों की दृष्टी में स्वयं एक सिद्धी बनकर आती हैं। इसी कारण सूफी कवियों ने नारी साधकों को अनेक अलौकिक गुणों से युक्त बनाया है। सूफी कवियों ने नारी को कही स्वकिया तो कभी परकिया के रूप में चित्रित किया हैं। परंतु दोनों रूपों में वह पूज्य व साधिका है।

8.9.4.6 मण्डनात्मकता—संत कवियों ने हिन्दू-मुस्लिमों के बीच धार्मिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया था किन्तु उन्हें उतनी सफलता नहीं मिली सूफी काव्यों को मिली है। संत कवियों में खण्डनात्मकता थी जिससे हिन्दू और मुसलमान दोनों क्रोधित होते थे। सूफी कवियों ने मात्र कुशलता से काम लिया। उन्हों ने दोनों का विरोध तथा विशेष खण्डन नहीं किया। इन कवियों ने दोनों को ईश्वर का समान रूप में दर्शन करा कर दोनों सम्प्रदाय के भेदभाव मिटाने का प्रयास किया। दोनों को मनुष्य के सामान्य रूप में दिखाया। सूफियों ने दूरदर्शिता से काम लिया है। जिससे उन्हें दोनों धर्मों की ओर से उचित प्रतिसाद मिला है। भारत में मुसलमान धर्म के प्रचार और प्रसार में इसी मण्डनात्मक शैली के कारण उन्हें अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

8.9.4.7 शैतान—निर्गुण संत कवियों ने जिसे माया स्वरूप माना है, उसे ही सूफी कवियों ने शैतान कहा हैं माया के समान शैतान को साधना मार्ग से भ्रष्ट करने वाला मानते हैं। शैतान द्वारा निर्मित संकटों से मुक्ति – एक साधक को गुरु के आशीर्वाद से मिलती है। कवि की दृष्टी में शैतान का असाधारण महत्त्व हैं। पद्मावत काव्य में राघव चेतन शैतान के रूप में चित्रित हैं। सूफीयों ने शैतान को त्यागने योग्य नहीं माना हैं, क्योंकि शैतान के द्वारा उपस्थित व्यवधानों से साधक की अग्निपरीक्षा होती है और उसके प्रेम में दृढ़ता और उज्जवलता आती हैं।

8.9.5 विविध प्रभाव—सूफी मत पर चार प्रभार विशिष्ट रूप से पड़े हैं—आर्यों का अद्वैतवाद तथा विशिष्ठा द्वैतवाद, इस्लाम की गुह्य विद्या, नवअफलातूनी मत तथा विचार स्वातंत्र्य।

8.9.5.1 शैली—सूफी काव्य में कवियों में शैली की दृष्टि से अंतर हैं जायसी की शैली में प्रौढ़ता एवं गंभीरता है किन्तु कुछ कवियों में अपरिपक्वता दृष्टिगोचर होती है। इनकी रचनाओं ने कथा तत्व की प्रधानता होने के कारण इन्हों ने इतिवृत्तात्मक शैली का प्रयोग किया है, कुछ कवियों ने अन्योक्ति, समासोक्ति, रुपक प्रतीक आदि के आयोजन द्वारा अपनी शैली में व्यंजना का वैभव संचारित कर दिया है। इन कवियों ने प्रबंध शैली के अतिरिक्त मुक्तक शैली का भी प्रयोग किया है।

8.9.5.2 भाषा—सूफी प्रेमाख्यानों की भाषा प्राय: सर्वत्र अवधी हैं। उसमान और नसीर पर भोजपुरी का प्रभाव है। नूर मुहम्मद ने कहीं-कहीं ब्रजभाषा का भी प्रयोग किया है। इन कवियों ने अवधि भाषा में तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है, अवधि की लोकोक्तियाँ और मुहावरों का भी अच्छा प्रयोग किया है।

8.9.5.3 रस—इन प्रेमाख्यानों में प्रधानत: श्रृंगार रस की व्यंजना हुई है। सर्वप्रथम नायक नायिका की ओर आकर्षित होता है और विरह वेदना और कई संकटों का सामना करना पड़ता है। उद्दीपन विभाव के अंतर्गत सूफीयों ने सखा-सखी, वन, उपवन, ऋतु परिवर्तन तथा भारतीय साहित्य में वर्णित अन्य उपकरणों का उल्लेख किया है। नायक के साहसिक कार्य के समय वीर रस का भी प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं करुण, शांत एवं वीभत्स रसों की भी अभिव्यक्ति हुई है।

8.9.5.4 छंद—सूफीयों ने अपने प्रेमाख्यानों में अपभ्रंश के चरित काव्यों के समान दोहा-चौपाई शैली को अपनाया है। दोहा, चौपाईयाँ के अतिरिक्त सूफी कवियों ने सोरठे, सवैये, प्लवंगम, बरवै, कुण्डलियाँ और कविता आदि का भी प्रयोग किया हैं। कहीं-कहीं पर कुछेक कवि ने फारसी भाषा के बाहर छंद का भी प्रयोग किया है।

8.10 मूल्यांकन

हिन्दी की निर्गुण प्रेममार्गी शाखा ने हिन्दी भाषा और साहित्य को प्रेम दर्शन की नवीन दृष्टि प्रदान की है। इन कवियों ने मानव जीवन के सर्वांग विकास पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। मनुष्य हृदय की क्षुद्रताओं को प्रेम ही हटा सकता है। मानुश प्रेमभयऊ बैकुंडी का जीवनदर्शन ही इन सूफी कवियों का एकमात्र उद्देश्य है। इस धारा के सभी मुसलमानों सूफी कवियों में धार्मिक संकीर्णता छू तक नहीं गई है—एक व्यापक विश्व बंधुत्व और विश्व दृष्टि के लिए ये सभी कवि पहल करते है। इनकी दृष्टि में लौकिक प्रेम और ईश्वरीय प्रेम में कोई फर्क नहीं हैं अत: यह समझना भूल होगी कि इस्लाम धर्म के प्रचार के लिए सूफियों ने काव्य में नहीं लेते जिसका कोई साम्प्रदायिक अर्थ लगाया जा सके। रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि सौ वर्ष पूर्व कबीर दास हिन्दू और मुसलमान दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे। पंडित और मुल्लाओं की तों नहीं कह सकते पर साधारण जनता राम और रहीम की एकता मान चुकी थी। साधुओं और फकीरों को दोनों दीन के लोग आदर और मान की दृष्टि से देखते थे। साधु या फकीर भी सर्वप्रिय वे ही हो सकते थे जो भेदभाव से परे दिखाई पडते थे। बहुत दिनों तक साथ रहते रहते हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के सामने अपना हृदय खोलने लगे थे, जिससे मनुष्यता के सामान्य भावों के प्रवाह में मग्न होने और मग्न करने का समय आ गया था। जनता की वृत्ति

भेद से अभेद की ओर हो चली थी। मुसलमान हिन्दूओं की राम कहानी सुनने को तैयार हो गए थे और हिन्दू मुसलमान का दास्तान हुमजा कुछ भावुक मुसलमान प्रेम की पीर की कहानियां लेकर साहित्य क्षेत्र मे उतरे ये कहानियां हिन्दुओं के घर की ही थी। इनकी मधुरता और कोमलता का अनुभव करके इन कवियों ने दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है। जिसे छूतें ही मनुष्य के सारे बाहरी रूप रंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है। भक्ति मार्ग के सभी संत भक्त कवि प्रेम का मार्ग निकाल कर जनता को एक व्यापक मानवतावाद की दृष्टि प्रदान कर रहे थे।

संदर्भित ग्रन्थ

सूफी मत साधना और साहित्य	—	रामपूज तिवारी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	—	राम कुमार वर्मा
साहित्येतिहास आदिकाल	—	सुमन राजे
हिन्दी साहित्य का आदिकाल	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास	—	रामस्वरूप चतुर्वेदी
हिन्दी साहित्य चिन्तन	—	किशोरीलाल
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	इन्द्रपाल सिंह
हिन्दी साहित्य का रेखांकन	—	किशोरीलाल
साहित्य दिशाएँ	—	मृत्युंजय उपाध्याय
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	—	रामकुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	—	रामरतन भटनाग

बोध प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. सूफी कौन थे उनके मत सिद्धान्त और परम्परा पर प्रकाश डालिए।
2. प्रेममार्गी शाखा की विशेषताएँ लिखिए।
3. प्रेमाख्यान के स्वरूप का वर्णन करते हुए इसके प्रेम साधना में तपस्या के सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।
4. जायसी के प्रेमकाव्य की प्रवृत्तियों का परिचय दीजिए।
5. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—
   (अ) सूफी संत कवि जायसी
   (ब) सूफीमत और सिद्धान्त
6. प्रेम पद्धति की विशेषताएँ बताते हुए रहस्यवाद व कथानक रूढ़ियों का मूल्यांकन कीजिए?

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. सूफियों के कितने सम्प्रदाय भारत में मिलते हैं? उनके नाम लिखिए।
2. सूफी शब्द की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के मतों पर चर्चा कीजिए।
3. जायसी वेद मार्ग का खुलकर समर्थन करते थे। इस बात से आप कितना सहमत हैं?

4. प्रेममार्गी काव्य को विकसित करने में किन कवियों का योगदान रहा है?
5. भक्तिकालीन प्रेमाख्यान काव्य के प्रमुख कवि जायसी हैं। इस पर आप अपने विचार प्रकट कीजिए।
6. नूर मुहम्मद का हिन्दी साहित्य में क्या योगदान रहा है? लिखिए।
7. सूफी काव्य में भावपक्षीय विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. सूफी शब्द का क्या अर्थ है?
2. सूफी प्रेम काव्यधारा की भाषा किस प्रकार की है?
3. सूफी प्रेम काव्यधारा के तीन कवियों के नाम लिखिए।
4. जायसी की तीन रचनाओं के नाम लिखिए।
5. सूफी प्रेम काव्यधारा में किस रस का प्रयोग सबसे अधिक मिलता है?

इकाई (Unit)

9

कृष्ण भक्ति काव्य

संरचना

9.1 उद्देश्य
9.2 प्रस्तावना
9.3 कृष्णकाव्य की पृष्ठभूमि
9.4 युग परिवेश
9.5 कृष्णभक्ति काल और भक्ति आन्दोलन
9.6 भक्ति काल से पूर्व कृष्ण काव्य
9.7 भक्तिकाल का कृष्ण काव्य
9.8 कृष्णभक्ति काव्य के प्रमुख कवि
9.8.1 कृष्ण भक्ति साहित्य के प्रणेता: सूरदास
9.8.2 गोस्वामी हित हरिवंश
9.8.3 रसखान
9.8.4 कुम्भनदास
9.8.5 नन्ददास
9.8.6 मीराबाई
9.8.7 परमानन्द दास
9.9 कृष्ण भक्ति काव्य की प्रमुख विशेषताएँ
9.9.1 राम और कृष्ण की उपासना
9.9.2 राधा-कृष्ण की बाल-लीलाएँ
9.9.3 वात्सल्य रस का चित्रण
9.9.4 शृंगार का वर्णन
9.9.5 पात्र एवं चरित्र-चित्रण
9.9.6 प्रकृति चित्रण
9.9.7 संगीतात्मकता (हवेली संगीत)
9.9.8 ब्रजभाषा व अन्य भाषाओ का प्रयोग
9.9.9 प्रेम की अलौकिकता
9.10 कृष्ण भक्ति साहित्य पर विभिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव
बोध प्रश्न

9.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप—

- हिन्दी सगुण भक्ति काव्य के युग परिवेश के विषय में बता सकेंगे।

- भक्ति आंदोलन में कृष्ण भक्त कवियों की जानकारी दे सकेंगे।
- कृष्ण भक्ति काव्य परंपरा और उसमें राधा और कृष्ण के स्वरूप का उल्लेख व.र सकेंगे।
- कृष्ण भक्ति काव्य की कथ्यगत विशेषताएँ बता सकेंगे।

9.2 प्रस्तावना

भक्तिकालीन सगुण भक्तिधारा में कृष्ण भक्ति काव्य में कृष्ण भक्ति को अधिक महत्व दिया गया ऋग्वेद में कृष्ण उल्लेख एक श्रोता ऋषि के रूप में हुआ हैं। छन्दोग्योपनिषद में कृष्ण का उल्लेख देवकी पु के रूप में हुआ हैं महाभारत में कृष्णा का चरित्र विस्तृत रूप में चित्रित हुआ है। डॉ. भण्डारकर ने यह सिद्ध किया है कि वैदिक ऋषि कृष्ण का महाभारत के कृष्ण से कोई संबंध नहीं है।

महाभारत में कृष्ण का जो वर्णन किया गया है वह कृष्ण सामान्य मानव का रूप है। तत्पश्चात् पश्चा कृष्ण को नारायण, विष्णु, परब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित हुए। कृष्ण चरित्र के संदर्भ में डॉ. विजयेन्द्र स्वातम्व लिखते हैं—"वस्तुत: धर्म स्थापन उनके अवतार का प्रमुख और एकमात्र उद्देश्य है। यदि 'गीता' के आधा पर कृष्ण-चरित्र का आकलन किया जाये, तो उनके दार्शनिक व्यक्तित्व का पूरी तरह उद्घाटन होता है वेद-वेदांगज्ञाता कृष्ण ने व्यावहारिक स्तर पर दर्शन को 'गीता' में पहली बार प्रतिष्ठित किया है, जिसके अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस रूप में कृष्ण यहाँ वर्णित है वह उनके परमदेवत्व का परिचायक रूप है।"

पुराणों में कृष्ण का जो रूप चित्रित हुआ है उसके संदर्भ में पाश्चात्य विद्वानों ने कृष्ण की बाल-लीलाओं को क्राइस्ट के बालचरित्र का अनुकरण कहा है। श्रीकृष्ण के पूर्णावतार के संदर्भ में पहली बा पुराणों में ही कहा गया है: 'भागवत पुराण' में कृष्ण की महिमा गायी गई हैं। पुराणों में कृष्ण को योगेश्वर सच्चिदानन्द, अच्युत, अविनाशी, आदि कहा गया हैं हरिवंश पुराण, विष्णु, पुराण, पद्मपुराण, आदि में कृष्ण महिमा गान विस्तार से हुआ है। संस्कृत काव्य में कृष्ण-लीलाओं का सबसे पहले उल्लेख अश्वघोष वे 'ब्रह्मचरित' काव्य में मिलता है। 'हाल' रचित 'गादा-सतसई' में कृष्ण, राधा, गोपी, यशोदा आदि का वर्णन है नाट्यदर्पण, अलंकार-कौस्तुभ, कन्दर्व मंजरी, श्रीकृष्णलीलामृत आदि संस्कृत ग्रंथों में कृष्ण के विविध प्रसंगों का चित्रण हुआ हैं 'गीत गोविंद' में कृष्ण श्रृंगार रस का चित्रण हुआ है। कृष्ण काव्य के विकास में विभिन्न सम्प्रदायों का योगदान रहा हैं उनमें प्रमुख है—निम्बार्क, चैतन्य, राधावल्लभ आदि-वल्लभ सम्प्रदायों वे सूरदास ने सर्वप्रथम प्रतिमा प्रदान की है। उन्हें ही हिन्दी भक्त साहित्य का प्रणेता माना गया है। अत: कृष्ण भक्ति विकास में संस्कृत-पुराण महाभारत, सम्प्रदाय आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

9.3 कृष्ण काव्य की पृष्ठभूमि

यह सर्वमान्य तथ्य है कि 'भक्ति युग' हिन्दी साहित्य का समृद्धतम युग रहा है। प्राय: भारतीय भक्ति आन्दोलन का इतिहास बृहद है। हिन्दी भक्तिपरक साहित्य में कृष्ण काव्य का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण है हिन्दी भक्तिपरक कृष्ण काव्य पर चर्चा करने से पूर्व हम भक्ति आंदोलन तथा कृष्ण भक्ति के विषय में चर्च करेंगे।

भारतीय भक्ति आंदोलन के अंतर्गत सगुण-निर्गुण भक्ति साधना की मंगलमयी यात्रा लोक जीवन के पथ पर ही अग्रसर हुई है। भक्ति शब्द 'भज्' सेवायाम् धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ है भगवान का सेवा प्रकार शण्डिल्य-भक्ति-सूत्र में लिखा है कि ईश्वर में परम अनुरक्ति भक्त है।

नारदभक्तिसूत्र में लिखा है कि भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा है और अमृत स्वरूपा है जिस परम प्रेम रूपा और अमृतरूपा को पाकर मनुष्य तृप्त हो जाता है, सिद्ध हो जाता है और अमर हो जाता है, जिस

भक्ति के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है, विषय भोग के प्रति उसका उत्साह नहीं रहता और आत्मानन्द के साक्षात्कार से वह संसार के विषयों से निरपेक्ष होकर मस्त रहता है।

भागवतकार ने भक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वहीं है जिसके द्वारा भगवान् कृष्ण में भक्ति हो, भक्ति भी ऐसी जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित निरन्तर बनी रहे। ऐसी भक्ति से हृदय आनन्द स्वरूप भगवान की उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है।

विष्णु भक्ति के विग्रह राम और कृष्ण को अवतार रूप में पूज्य एवं अर्चनीय मानने वाले भक्त कवियों ने अपनी वाणी में जो सरस रचना की है, उस साम्प्रदायिक क्षेत्र में वाणी साहित्य की संज्ञा दी गई है। यों तो भक्ति के इतिहास तथा उसकी मीमांसा बहुत लम्बी है, भक्ति मार्ग केवल मध्य युग की ही उपज नहीं है किन्तु कृष्ण का इतिहास भी कम प्राचीन नहीं है। कहीं तो कृष्ण नाम 'ऋग्वेद संहिता' में भी पाया जाता है। ब्राह्मण और उपनिषद् भी कृष्ण के नाम को आदरपूर्वक अंकित करते हैं। विष्णु पुराण, ब्राह्मवैवर्त पुराण और भागवत् पुराण वैष्णव धर्म के सर्वविदित आधार है। इनमें विष्णु अवतार कृष्ण के चरित्र का ही सबसे अधिक महत्त्व हैं महाभारत और उपर्युक्त तीनों पुराण कृष्ण चर्चा से भरे पड़े है। इस प्रकार कृष्ण चरित्र की महत्ता भक्त कवियों की कृतियों में प्राचीन युग से ही प्रतिपादित होती आई है।

कृष्ण भक्ति के विकास में बारहवीं शताब्दी में रचित जयदेव का 'गीत-गोविन्द' राधा-कृष्ण सम्बन्धी सर्वप्रथम प्रामाणिक काव्यग्रंथ है। इसमें श्रृंगार, भक्ति और माधुर्य की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। इस शताब्दी में सगुण और निर्गुण नाम से भक्ति-काव्य की दो धाराओं के अंतर्गत कृष्ण भक्ति शाखा, रामभक्ति शाखा, ज्ञानाश्रयी शाखा तथा प्रेममार्गी सूफी शाखा स्पष्ट रूप से प्रचलित लक्षित होती है। इन चारों शाखाओं में कृष्ण भक्ति शाखा की कल्पना पुरानी और व्यापक है। इसका प्रधान कारण श्री कृष्ण की लीला की बहुलता ही है। वास्तव में कृष्ण भक्ति शाखा के भक्तों ने ब्रह्म के 'सत्' और 'आनन्द' स्वरूप का साक्षात्कार कृष्ण के रूप में इस बाह्य जगत के व्यक्त क्षेत्र में किया। अपनी माधुर्य भावना से परिपूर्ण अथवा प्रेम-लक्षणा-भक्ति के लिए उन्होंने कृष्ण के मधुर रूप तथा भागवत् में वर्णित कृष्ण की ब्रज लीला को स्वीकार किया। यह ही राधा कृष्ण के अनन्य प्रेम की एकमात्र अधिकारणी बनी और धीरे-धीरे सम्पूर्ण कृष्ण काव्य पर छा गई। कृष्ण काव्य रचनाकारों को काव्य रचना के लिए कृष्ण का जो व्यक्तित्व प्राप्त हुआ, उसका विकास बहुत पहले से होता आया होगा।

9.4 युग परिवेश

कृष्ण भक्ति धारा के मूल प्रवाह को समझने के लिए इस युग के परिवेश की वैचारिक स्थिति पर दृष्टिपात करना आवश्यक हैं क्योंकि यह काव्यधारा सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, शक्तियों की गतिमान और विकासमान दृष्टि को प्रस्तुत करती हैं कट्टर पुराणपंथियों ने जनता को जो तकलीफें दी थी। संत उनके विरुद्ध खड़े होकर कष्टों से मुक्ति का मार्ग निकालते है। भक्ति आंदोलन दक्षिण भारत में एक विराट आंदोलन के रूप में पूरे देश में फैला था। उसे समाज की वेद-उपनिवेशदवादी अथवा कट्टर संकीर्णतावादी शक्तियों ने प्रस्तुत नहीं किया था। वरन् आलवार और नयनार संतों ने और उनके प्रभाव में आने वाली जन शक्तियों ने उसके प्रसार और प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। राजनीतिक दृष्टि से हिन्दू और मुस्लिम दोनों प्रकार की जनता उच्च वर्गीय सामंतों से त्रस्त थी। इसलिए संतों ने एक व्यापक मानवतावादी दृष्टि का निर्माण अपने सामाजिक सांस्कृतिक आधारों की शक्ति से किया। सामूहिक कीर्तन गायन ने उनके जीवन के अलगाव को नया करते हुए टूटे हुए हृदयों को मिला दिया। भक्तिकाल में निम्नवर्ग और उच्च वर्ग का संघर्ष प्रबल रूप में मिलता है। यही संघर्ष धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और अनेक क्षेत्रों में अनेक रूपों में दृष्टिगत होता है। सिद्धों, नाथों, योगियों और तांत्रिकों का प्रभाव साधारण जनता पर उतना नहीं हुआ जितना व्यापक प्रभाव भक्ति आंदोलन के संत कवियों का हुआ। कृष्ण भक्ति काव्य के संत निम्न और निम्न और उच्च दोनों वर्गों की जातियों से आए और इन संतों ने गीत काव्य के माध्यम से अपने हृदय को खोलते हुए जातिवाद के विरुद्ध

आवाज तेज की। कृष्ण भक्ति शाखा ने निर्गुण भक्ति के विरुद्ध संघर्ष किया और जनता को जीवन के कष्टों से मुक्ति दिलानें के लिए एक व्यापक दृष्टि प्रस्तुत की आचार्य शुक्ल के इस कथन में सच्चाई है कि भक्ति आंदोलन को मूल जनता के कष्ट में मौजूद है। भक्ति काल में ऐसा परिवेश निर्मित हुआ है कि पुरुष कवियों या महात्माओं के साथ मीराबाई जैसे स्त्री संत भी आए पुजारियों और मौलवियों की रीति के विरुद्ध इन संतों ने मूलतः प्रेम का आधार पर मुक्ति और ईश्वर प्राप्ति की बात पर बल दिया। उन्होंने संस्कृत और अरबी जैसे भाषाओं को छोड़कर लोक भाषाओं का प्रचार किया। इस तरह धर्म लोक भाषा में स्थापित किया गया। कृष्ण काव्य का सामाजिक आधार किसी एक प्रदेश तक सीमित नहीं है। यह एक ऐसा विराट सांस्कृतिक आंदोलन है, जिसने ग्रामीण जनता की चेतना को नया मोड़ दिया यह काव्य भारतीय जनता की सबसे कोमल भावनाओं मानवीय सहृदयता और जीवन की आस्था का उज्जवल संसार है। बालकृष्ण के सौंदर्य का उद्घाटन भारतीय हृदय में अपनी एक विशिष्ट पहचान है। सामाजिक बंधनों की सच्ची अवहेलना इन कवियों ने राधा और कृष्ण के प्रेम में चितिंत की है। सूर और मीरा दोनों ने प्रेम की लौकिक भावभूमि के विस्तृत किया है।

देश में मुगलों का शासन स्थापित हो जाने पर हिन्दू और मुस्लिम हृदय धीरे-धीरे मिलने लगे थे जाति-पांति पर आधारित धर्म शास्त्र भी पीछे छूटने लगा था। ऐसे समाज में बांसुरी वाले कृष्ण की लोक नायक लीला का विस्तार हृदय की मुक्ति के लिए सबसे अच्छा द्वार था। इन कृष्ण भक्त कवियों ने जिस भक्तिमार्ग की स्थापना थी, वह किसी भी तरह की धार्मिक कट्टरताओं को आदर न देता था। कृष्ण भक्ति काव्य के सभी संप्रदायों ने कृष्ण के माध्यम से ऐसी भक्ति पद्धति की स्थापना की जो प्रेमाभक्ति और आत्म समर्पण पर केन्द्रित है।

9.5 कृष्ण भक्ति काल और भक्ति आन्दोलन

भक्ति आंदोलन के संदर्भ में कृष्ण भक्ति के विकास और चिंतन के अनेक मोड़ हमें दिखाई देते है। प्रमुख बात यह है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य में कृष्ण का व्यक्तित्व अत्यंत विलक्षण है। कृष्ण आंगरिस का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद में पाया जाता हैं किन्तु कृष्ण यहां एक ऋषि के रूप में है। ऋग्वेद में कृष्णासुर का उल्लेख है जिसे इंद्र ने पराजित किया था। आश्चर्य की बात यह है कि महाभागवत के प्रेममय कृष्ण के व्यक्तित्वों की प्राचीन संदर्भो में कोई समानता नहीं मिलती है। छांदोग्य उपनिशद के आंगरिस के शिष्य कृष्ण देवकी के पुत्र अवश्य कहे गए है। फिर भी विद्वानों ने यह तर्क उपस्थित किया है कि वैदिक कृष्ण और महाभारत कालीन कृष्ण दो अलग-2 व्यक्ति है। डा० भंडारकर ने अनेक तर्कों से सिद्ध किया है कि वैदिक ऋषि कृष्ण का महाभारत के राजनीतिक कृष्ण से कोई संबंध नहीं है। किन्तु विद्वानों का एक ऐसा वर्ग भी है जो कहता है कि कृष्ण का व्यक्तित्व वेदों के बाद निरंतर बदलता रहा और अनेक उपासनाओं के रूप में उनके व्यक्तित्व को विविध रूपों में स्वीकृति मिलती रही। महाभारत के आरंभ में वासुदेव कृष्ण की उपासना के व्यापक संदर्भ मिलते है। किन्तु इन संदर्भों को उपनिशद काल के कृष्ण के साथ भी आसानी से जोड़ा जा सकता है। जातकों में वहां उमगा जातक में कृष्ण वासुदेव की एक संक्षिप्त कथा भी मिलती है पर सच्चाई यह है कि हरिवंश, विष्णु भागवत आदि पुराणों में कृष्ण की कथा को विशेष महत्व मिलता है। यह कहना अधिक सार्थक होगा कि भागवत की कृष्ण कथा ही सबसे अधिक विस्तृत और व्यवस्थित कथा है। और इसी कथा ने कृष्ण भक्ति काव्य को सर्वाधिक प्रेरित किया हैं यह मानने में भी आपत्ति नहीं हो सकती है कि कृष्ण कथा मौखिक रूप में भी प्रचलित रही और जब पुराणों का धार्मिक रूप में उपयोग होने लगा तो इस कथा का नये ढंग से विस्तार हुआ। कृष्ण कथा के कई रूप और पक्ष भी हैं जिनकी संक्षिप्त चर्चा हम यहां करेंगे। कृष्ण कथाओं के भीतर से कृष्ण के तीन रूप उभरते हैं—

1. योगी धर्मात्मा का रूप—यह रूप गीता के कृष्ण में चरम परिणीत पाता है।

2. ललित मधुर गोपाल का रूप—संस्कृत साहित्य में इसी रूप का उत्कर्ष ब्रहम वैवर्त पुराण और श्रीमदभागवत मे मिलता है।

3. वीर राजनयिक रूप—यह महाभारत और पुराणों के अनेक प्रसंगों में दृष्टिगत होता है।

कृष्ण के इन रूपों को देखने से ज्ञात होता है कि वे वासुदेव कृष्ण के रूप में लोकप्रिय हुए और धीरे-धीरे उनके साथ ललित मधुर गोपाल कृष्ण की कथाएं जुड़ती गई। कालांतर में उन्होंने भारतीय धर्म संस्कृति और कलाओं पर अपना व्यापक व्यक्तित्व स्थापित कर लिया। भागवत में गोपाल कृष्ण की चर्चा तो है पर राधा का नामोल्लेख तक नहीं है। दूसरी ओर ब्रह्म वैवर्त पुराण में राधा और कृष्ण के प्रेम का विस्तार से वर्णन है। इस वर्णन से सिद्ध है कि लोक साहित्य मौखिक और लिखित गीतिकाव्य परंपरा में कृष्ण कथाएँ प्रचलित रही होगी। इन कथाओं की पहली साहित्यिक अभिव्यक्ति बारहवीं शताब्दी के संस्कृत कवि जयदेव के गीत गोविंद में होती है। मूलत: गीत गोविंद लौकिक शृंगार की कशति है लेकिन वर्णन की तन्मयता उसे भक्ति की ओर ले जाती है। जयदेव को भी लोकगीतों की परंपरा मिली होगी, किन्तु लोकगीतों की परंपरा की देशभाषा में पहली अभिव्यक्ति विद्यापति (14वीं-15वीं शताब्दी) के पदों में हुई। विद्यापति की कविता में माधुर्य भाव वाला शृंगार है। वास्तविकता यह है कि कवि ने अपने आश्रयदाता की प्रसन्नता के लिए राधा-कृष्ण के प्रेम प्रसंगों का काव्य का विषय बनाया है। विद्यापति विशुद्ध शृंगार के कवि है इन्हें सीधे-सीधे कृष्ण भक्तों की परंपरा में न समझना चाहिए। हालांकि यह ठीक है कि चैतन्य महाप्रभु जैसे भक्तों को विद्यापति पितों में भक्ति की चरम तन्यमता मिली और ऐसा ही वातावरण भक्तिकाल की भावावेश पूर्ण स्थिति ने पैदा किया। यह पूरा का पूरा परिवेश भक्ति रस में निमग्न है। इसी परिवेश की चमक भक्तिकाल के अधिकांश कृष्णभक्ति काव्य पर है।

9.6 भक्तिकाल से पूर्व कृष्ण काव्य

हिन्दी भक्तिपारक कृष्ण काव्य का प्रारम्भ सूरदास से माना जाता है, किन्तु हिन्दी कृष्ण काव्य पर विद्यापति का और विद्यापति पर जयदेव के काव्य का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है।

जयदेव का जन्म किंदुबिल्व (बंगाल) में हुआ था। इन्होंने बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन के दरबार में बहुत प्रसिद्धि पाई थी। जयदेव ने 'गीत गोविन्द' की रचना करके अपने भाषाधिकार और भाव-प्रदर्शन का अच्छा परिचय दिया है। राधा-कृष्ण के चरित्र को मधुर और प्रेममय बनाकर साहित्य में प्रथम बार प्रस्तुत करने का श्रेय जयदेव को ही जाता है। किन्तु जयदेव को अपने गीत गोविन्द के लिए कृष्ण का जो व्यक्तित्व प्राप्त हुआ वह उसकी सर्वथा नवीन सृष्टि न होकर अत्यन्त प्राचीन परम्परा से आगत तथा विकसित रूप था।

डॉ० हरवंश लाल शर्मा की सम्मति में साहित्य में प्रथम शताब्दी की महाकवि हाल की प्राकृत रचना 'गाहासतसई' में सर्वप्रथम राधा कृष्ण का उल्लेख मिलता है।

पांचवी शताब्दी के 'पंचतन्त्र' में राधा कृष्ण शब्द का उल्लेख हुआ है परन्तु स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता। आठवीं शताब्दी में रचित भट्ट नारायण के 'वेणी संहार' में राधाकृष्ण की प्रेमलीला का सुन्दर वर्णन है—

कालिन्धा: पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सुज्य रासे रसम्
गच्छन्तीमन्नुगच्छतीत्र कलुषां कंसद्विषां राधिकाम्।
तत्पाद प्रतिमानिवेशित पदस्योद्भुत रोमोद्गते
रक्षुण्णाऽनुनय: प्रसन्नदपितादृष्टस्य पुष्णातु व:।।

आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक' तथा कुन्तक के 'वक्रोक्ति जीवितम्' में कृष्ण के साथ राधा का वर्णन भी है।

दसवीं शताब्दी में विक्रम भट्ट के 'नलचम्पू' और वल्लभदेव कश्मीरी के 'शिशुपाल-वध' तथा धनञ्जय के 'दशरूपक' एवं 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' में भी राधा-कृष्ण विषयक पद्य उपलब्ध होते हैं। ग्यारहवीं

शताब्दी में भोजराज ने राधाकृष्ण लीला सम्बन्धी कतिपय श्लोक उद्धृत किए हैं। इसी समय के कवि पुष्प ने अपने महापुराण में कृष्ण जीवन का विशद वर्णन किया है। गोपियों के साथ कृष्ण के विहार का एक द निम्नोक्त है।

धूली धूसरेण वर मुक्क सरेण तिणा मुरारिणा।

कीला रस बसेन गोवालय बोवीहियय हारिणा।

बाहरवीं शताब्दी में हेमचन्द्र के दो दोहों में राधा-कृष्ण के प्रेम की चर्चा है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जयदेव की काव्य रचना से पूर्व ही कृष्ण राधा के विषय पर साहित्य रचना ह आई होगी और जयदेव की महत्ता राधाकृष्ण के युगल को अपने मधुर गीतों द्वारा लोकप्रियता के अतिरिक्त बात में है कि उसने राधाकृष्ण की प्रेमलीला का जिस रूप में वर्णन किया, वह कालान्तर में साहित्य की स्थायी प्रवृत्ति बन गई और जयदेव परवर्ती कलाकारों के प्रेरणा स्रोत बने।

विद्यापति 'गीतागोविन्द' से बहुत अधिक प्रभावित हुए और 'गीतागोविन्द्र' के अनुकरण पर ही मैथिल राधाकृष्ण की रासलीला का मोहक चित्रण किया। विद्यापति का वंश विद्वानों का वंश था वे दरभंगा जिले विसपी के रहने वाले थे। कई राजाओं के आश्रय में रहे। विद्यापति के पद तीन प्रकार के हैं–

(क) शिवभक्ति के पूर्ण पद

(ख) राधाकृष्ण के प्रेमपूर्ण मिलन के शृंगारी पद

(ग) तत्कालीन परिस्थिति के चित्रण वाले पद

उन्होंने भाव, आलम्बन, विभाव, उद्दीपन विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का दिग्दर्शन अप पदावली में दिखाया है।

9.7 भक्तिकाल का कृष्ण काव्य

विद्वानों के मतानुसार सूरदास ही ब्रज भाषा के प्रथम कृष्ण भक्त कवि माने जाते हैं। हिन्दी कृष्ण का की परम्परा में सबसे अधिक श्रेय सूरदास को ही प्राप्त है। महाकवि सूरदास ही अष्टछाप के सर्वप्रथम अ सबसे अधिक प्रसिद्ध कवि है। अनुमानत: इनका जन्म 1483 के लगभग और मृत्यु 1585 के लगभग इन्होंने अपने जीवन के सम्बन्ध में स्वयं लगभग कुछ नहीं लिखा। चौरासी वैष्णवन की बार्ता के अनुस 'सूरदास एक अच्छे गायक थे, वे गऊघाट पर रहते थे और विनय के पद गाते थे। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने उ पुष्टिमार्ग में दीक्षित किया और कृष्ण लीला गाने की प्रेरणा दी। सूर ने कृष्ण लीला के 'सहस्रावधि' पद लि जिनकी प्रसिद्धि सुनकर अकबर भी उनसे मिले। सूरदास अन्धे थे, वे ईश्वर और गुरु में काई भेद नहीं मानते सूरदास के ग्रंथों में 'सूरसागर, 'सूर-सारावली' और 'साहित्य लहरी' विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सूरसागर प्रमाणिक ग्रंथ है जिसका आधार श्रीमद्भागवत हैं इसमें 12 अध्याय हैं जिनमें क्रमश; विनय, भक्ति विष्णु के अवतारों तथा अन्य पौराणिक कथाओं का निरूपण है। सूरसागर में दशमस्कन्द प्रधान है जिसे भागों में विभाजित किया गया है—पूर्वार्ध में गोकुल और ब्रज में बिहार करने वाले कृष्ण का चरित्र अ उत्तरार्ध में द्वारिका गमन से अंत तक श्रीकृष्ण की जीवनी हैं। यद्यपि सूर ने श्रीमद्भागवत का आधार लिया फिर भी मौलिकता की विशेष छाप हैं। सूर ने भगवान कृष्ण के जीवन के बाल समय का विस्तृत वर्णन अप काव्य में किया है। जहाँ भगवान कृष्ण, शक्ति के प्रतीक होते हुए भी सूरदास के कृष्ण शक्ति के साथ-साथ प्रे और माधुर्य की मूर्ति है। सूरदास ने भी जयदेव और विद्यापति की कृष्ण काव्य परम्परा से प्रभावित होकर रा का चित्रण किया है। राधा और गोपियों के माध्यम से सूर ने अपना हृदय खोलकर रख दिया प्रतीत होता है।

सूर के काव्य में धार्मिक भावना पूर्ण रूप से उभरकर आई हैं। आध्यात्मिकता सूर के काव्य में आदि अंत तक हैं। सूर ने विनय के अनेकों पदों में योगादि क्रियाओं का वर्णन किया है। प्राय: वैष्णव साहित्य में शै

के हठ योग से घनिष्ठ सम्बन्ध और हठ योग की कुछ बातें उनके पदों में मिलती हैं। निम्नलिखित पंक्तियों से सूर के शैव सम्प्रदाय और उसके विधानों के अनुकूल की तपश्चर्या का पता चलता है।

गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ वर्ष पवीन

शिव विधान तप करयो बहुत दिन तऊ पार नहिं लीना।

भाषा और भाव की दृष्टि से सूर अत्यन्त उच्च कोटि के कवि हैं श्रीकृष्ण लीला वर्णन में सूर ने शृंगार के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग पर दृष्टि डाली है। संवाद शैली, गोपियों की वाचालता उपालंभ और सगुणोपासना के निरूपण की दृष्टि से हिन्दी काव्य में यह अलग ही स्थान रखता है।

सूरदास के पश्चात् नन्ददास का नाम साहित्यिक महत्त्व की दृष्टि से श्रेष्ठ माना जाता है। गुसाई विट्ठलनाथ द्वारा स्थापित अष्टछाप के कवियों में भी सूरदास के बाद नन्ददास का ही स्थान है। नन्ददास सूर के समकालीन ओर तुलसी के चचेरे भाई थे। ये ब्राह्मण जाति के थे, गुसाई विट्ठलनाथ के शिष्य और भक्त थे।

नन्ददास के ग्रन्थों में 'रासपंचाध्यायी' 'सिद्धांतपंचाध्यायी' और 'भंवरगीत' अधिक प्रसिद्ध है। इनमें से 'रासपंचाध्यायी' का मुख्य आधार 'भागवत पुराण' है। विष्णु पुराण का प्रभाव भी कई स्थलों पर दिखाई पड़ता है किन्तु फिर भी 'रासपंचाध्यायी' एक स्वतंत्र ग्रंथ है। कुछ लोग तो इसे हिन्दी का 'गीत गोविन्द' भी कहते है। इसमें वियोग-संयोग और प्रकृति के सुन्दर चित्र है। इसकी भाषा भी प्रवाहपूर्ण है, शब्दों का चयन बहुत सुन्दर हैं वास्तव में 'नन्ददास जड़िया और गढ़िया' यह नन्ददास के लिए बहुत ही उपयुक्त है। दूसरा ग्रंथ 'भँवरगीत' है काव्य की दृष्टि से उतना अच्छा नहीं बन पड़ा जितना 'रासपंचाध्यसायी' है। इसमें कथा की उतनी प्रधानता नहीं है जितनी दर्शनिकता की। गोपियों और उद्धव के प्रश्न और उत्तर के माध्यम से सगुण और निर्गुण के सापेक्ष्य महत्त्व की तर्कपूर्ण घोषणा की गई है। अंत में गोपियों की विजय के द्वारा सगुण की महत्ता प्रतिपादित की गई है। गोपियों के विरह-दशा के चित्र अंकित करते हुये ब्रह्म, माया और जीव की विवेचना भी की गई है।

अष्टछाप के कवियों में सूरदास, नन्ददास और परमानन्ददास के अतिरिक्त अन्य कवि भी हैं पर उनका साहित्यिक महत्व विशेष नहीं है। अत: कृष्ण काव्य में इनके बाद हितहरिवंश का नाम उल्लेखनीय हैं। पहले वे मध्यानुयायी थे फिर उन्होंने राधावल्लभी नामक एक सम्प्रदाय की स्थापना की जिसे 'हित सम्प्रदाय भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय में राधा की आराधना, सखीभाव, महाप्रसाद की निष्ठा, विधिनिषेध का त्याग और अनन्य रूप से दास-भक्ति आदि बातें मुख्य हैं। स्वयं हितहरिवंशजी श्रीकृष्ण की वंशी के अवतार समझे जाते थे। इनकी स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त उनका 'हित चौरासी' ग्रंथ ब्रजभाषा में रचित सुन्दर ग्रंथ है।

कृष्ण भक्ति काव्य इस शृंखला में राजस्थान की काव्य कोकिला मीरा का भी एक विशिष्ट स्थान है। मीरा का जन्म राजस्थान के राठौर वंश में हुआ। बाल्यावस्था से ही कृष्ण भक्ति में लीन मीरा की भक्ति जीवन की कटुताओं से अधिक पुष्ट होती गई फिर रैदास तथा साधुओं के सत्संग में और भी अधिक दृढ़ हो गई। मीरा ने लोकलाज और वंश की मर्यादा को भी कृष्ण-भक्ति के आगे तिलांजलि दे दी। मीरा के पदों में उनके वैधव्य और जन्म तिथि का उल्लेख नहीं हैं। गीति काव्य की दृष्टि से मीरा की रचनाएँ आदर्श है। काव्य के गुणों को लाने की चेष्टा मीरा ने नही की है वरन् वे स्वत: आ गये हैं। वास्तव में मीरा तो अपने गिरिधर गोपाल की प्रेमयोगिनी है काव्य के गुणों का पालन करने वाली साधारण कवियित्री नही। मीरा की रचनाओं में दो प्रकार के दृष्टिकोण पाए जाते हैं। पहला जिसमें मीरा की उपासना माधुर्यभाव की है ऐसे पदों में उनकी भावना रहस्यवाद के बहुत निकट है। मीरा के पदों का दूसरा दृष्टिकोण वह है जिनमें मीरा पर संतों का प्रभाव प्रतीत होता है। जैसे—

नैनन बनज बसाऊँरी, जौ मैं साहेब पाऊँ।

लेकिन ऐसे पदों की संख्या कम ही है। अधिकांश पदों में मीरा ने 'गिरधर गोपाल' को अपने पति के रूप में ही वर्णन किया है—

"जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई"

मीरा ने शृंगार रस द्वारा अपने भावों का प्रकाशन किया है लेकिन उस शृंगार में वासना की गन्ध तक आने पाई। मीरा के काव्य में आत्मनिवेदन है, पीड़ा है, कसक है, विरह है, वेदना है पर सब आध्यात्मि मीरा के पदों की भाषा बहुत अनिश्चित है क्योंकि बहुत दिनों तक वे मौखिक रूप में रहे। मीरा की भाषा व में मारवाड़ी थी और मीरा के पदों का सबसे अधिक प्रामाणिक संस्करण 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' से प्रक हुआ है।

रसखान गोसाई बिट्ठलनाथ के शिष्य थे। उनके काव्य का रचनाकाल 1614 ई० माना जाता है। काव्य में मधुर भाव की उपासना की प्रधानता है। रसखान के प्रेम में जितना रस है उतना किसी और क नहीं मिलता। उनकी दो प्रसिद्ध रचनाएँ—'प्रेम वाटिका' और 'सुजान रसखान' है। इन्होंने सवैयों में काव्य की है। उनका लौकिक प्रेम ही आध्यात्मिक हो गया था और वह कृष्ण प्रेम में तन्मय हो उठे थे। इनसे अति इस काल के कृष्ण काव्य की परम्परा में चाचा हित वृन्दावन, ध्रुवदास, नरोत्तमदास, गंग, बलभ्रदमित्र, सेन रहीम आदि अनेक भक्त कवि हुए हैं जिन्होंने कृष्ण भक्ति से पूर्ण रचनाएँ की। किन्तु इस समय शृंगारिकत भावना फैलने लगी थी। इसलिए इनके काव्य में शृंगारिकता अधिक है। इसके साथ ही नीति की कविता भी लगी थी।

9.8 कृष्णभक्ति काव्य के प्रमुख कवि

भक्तिकाल के सगुण भक्ति काव्यधारा में कृष्ण भक्ति काव्य के प्रमुख प्रवर्तक सूरदासजी है। सा कृष्ण भक्ति साहित्य प्रणयन विभिन्न कृष्णोपासक सम्प्रदायों में निंबार्क, चैतन्य, वल्लभ और राधावल्लभ में किया हैं। इस धारा के विकास में सूरदास का अलग स्थान प्रदान किया है। इस धारा के विकास में कृष्ण भक्त कवियों ने भी अपना अमुल्य योगदान दिया है। उनमें प्रमुख है—सूरदास, नन्ददास, परमानन्द हित हरिवंश, ध्रुवदास, श्रीभट्ट, स्वामी हरिदास, गदाधर भट्ट, मीराबाई, रसखान आदि। अत: उनका सं परिचय हिन्दी कृष्णभक्ति साहित्य विकास के समझने में सहायक होगा।

9.8.1 कृष्ण भक्ति साहित्य के प्रवेणता : सूरदास—'सूरदास' कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदाजी के जीवन वृत्त को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। सूरदास का जन्म सन् 1478 ई० माना जाता विभिन्न रचना के आधार पर जन्म 'सीही' नामक गाँव और में सारास्वत ब्राह्मण और जाट जाति में उत्पन्न गया है। उनके पिता के रूप में अकबर दरबारी गायक 'रामदास' का उल्लेख किया जाता हैं 'चौरासी वैष्णव वार्ता' में सूर के जीवन वृत्त पर प्रकाश डाला गया हैं वह इस प्रकार है—

'सूरदास बड़े गायक थे। वे गऊघाट पर निवास करते थे और विनयपद गाते थे। महाप्रभु वल्लभाचा उन्हें पुष्टिमार्ग में दीक्षित किया और कृष्ण लीला गाने की प्रेरणा दी। उन्होंने कृष्ण लीला के 'सहस्त्रावधि' लिखे, जिनकी प्रसिद्धि सुनकर देशाधिपति (अकबर) उनसे मिले। सूरदास अंधे थे। वे ईश्वर और गुरू में अन्तर नहीं मानते थे। उन्होंने परासोली में प्राण-त्याग दिये। सूर के मृत्यु काल के संदर्भ में भी विद्वानों में मत है। लेकिन अधिकांश सूर विद्वान सूर का मृत्यु सन् 1583 स्वीकार करते हैं। उनके देहावसन समय विट्ल्लनाथ ने शोकार्त होकर कहा था—

"पुष्टिमारग को जहाज जात है सो जाके कछु लेना होय सो लेह।"

सूरदास की शिक्षा के संबंध में कोई उल्लेख नहीं मिलता, वे गाँव से चार कोस दूर रह कर पद रचना लीन रहते थे और गान-विद्या में प्रवीण थे। सूरदास वल्लभाचार्य के सम्पर्क में आने पर सख्य, वात्सल्य व माधुर्य भाव की पद-रचना करने लगे। सूरदास ने श्रीमद् भागवत के आधार पर कृष्ण संबंधी रचित पदों संख्या सवा लाख बताई जाती है।

'डॉ. दीनदयाल गुप्त ने उनके द्वारा रचित पच्चीस पुस्तकों की सूचना दी है। जिनमें सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, सूरपचीसी, सूररामायण, सूरसाठी और राधारसकैलि प्रकाशित हो चुकी है। 'सूरसागर' और 'साहित्य लहरी' उनकी प्रमुख कृतियाँ है। 'सूरसागर' का आधार श्रीमद् भागवत हैं। भागवत के समान इनमें भी बारह स्कंद हैं। प्रथम स्कन्द में विनयपद, भाया, अविधा, तृष्ण, भक्ति-महिमा से भरा हुआ हैं सूर सागर के दशम स्कंद के पूर्वार्ध में कृष्णजन्म, बाललीला, और भ्रमर गीत की रचना 4160 पदों में की हैं दशम स्कंद के उतरार्ध में जरासंध युद्ध, द्वारका निर्माण, रुक्मिणी हरण, शिशुपाल वध, सुभद्रा-अर्जुन विवाह आदि का अंकन 149 पदों में किया गया है। सूरदास का ग्रंथ 'सूर सारावली' में ब्रजवर्णन, कृष्ण-जन्म, पूतना-वध, संकट-भंजन, भ्रमरीत आदि प्रसंग है।

सूर की भक्ति पद्धति पुष्टिमार्गीय भक्ति है। और इस भक्ति को अपनाने के बाद प्रभु स्वयं अपने भक्त का ध्यान रखते हैं। भगवान का अनुग्रह ही भक्त का कल्याण करके उसे इस लोक से मुक्त करने में सफल होता है—

'जा पर दीनानाथ ढ़रै।
सोई कुलीन बड़ौ सुंदर सोइ जा पर कृपा करै।
सूर पतित तरि जाय तनक में जो प्रभु नेक ढ़रै।।'

सूर की रचनाओं का तत्कालीन समाज जीवन से कतई संबंध नहीं था। वे पहले भक्त और बाद में कवि थे। तुलसी के समान सूर में लोक संग्रह की भावना नहीं मिलती है। वे वस्तुत: कृष्ण में ही लीन हो चुके थे। 'सूरदास ने प्रेम और विरह के द्वारा सगुण मार्ग से कृष्णा को साध्य माना है। उनके कृष्ण सखा रूप में भी सर्वशक्तिमान परमेश्वर है। विष्णु, हरि राम आदि सब कृष्ण ही के नाम है। निर्गुण ब्रह्म के ये सगुण नाम है।' वात्सल्य वर्णन के प्रथम कवि सूरदास है। सूरदास ने वात्सल्य का कोना-कोना झाँका हैं वात्सल्य के अंतर्गत दशा का वर्णन सूरदास ने वर्णन किया है। तोतली बोली, माखन चोरी, माँ का बच्चों के लिए लोरी गाना, आदि।

माँ छोटे कृष्ण को झूठ-मुठ के प्रलोभन दिखाकर दूध पिलाती है, तब कृष्ण माँ को पूछते हैं—

"मैया, कबहि बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहि दूध पियत भई, यह अज हूँ है छोटी।"

बलदेव द्वारा छेड-छाड़ होने पर माँ को शिकायत करते हुए बालकृष्ण—

"मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ।।
मोंसों कहत मोल की लीहनों तू ज सुमति कब जायौ।"

अत: सूरदास वात्सल्य वर्णन में महानायक है। आचार्य द्विवेदी लिखते हैं—संसार के साहित्य की बात कहना तो कठिन है क्योंकि वह बहुत बड़ा है और उसका एक अंश मात्र हमारा जाना है। परन्तु हमारे जाने हुए साहित्य में इतनी तत्परता, मनोहारिता और सरसता के साथ लिखि हुई बाललीला अलभ्य है।'

सूर के श्रृंगार रस में रति स्थायी भाव का पूर्ण और अलौकिक परिपाक हुआ है। सूर की गोपियों में प्रेम के संस्कार पक्के हैं। 'वे भावना प्रधान है, नंददास की गोपियों के समान वकील नहीं। वास्तव में सूरदास की राधिका शुरू से आखिर तक सरल बालिका है। उनके प्रेम में चाएडीदास की राधिका की तरह सास ननद का डर ही है। और विद्यापति की किशोरी राधिका के समान रुदन में ह्रास और हास में रुदन की चातुरी भी नहीं है। सूर ने बड़ी सच्चाई के साथ प्रेमी हृदय में रति की उत्पत्ति, प्रिय मिलन की लालसा, प्रिय मिलन का हर्ष और चापल्य, साहस और उन्माद का ऐसा प्रभावोत्पादक चित्रण किया है कि, एकांगीपन खटकता नहीं। राधा और कृष्ण की युगल लीलाओं के वर्णन में सूर ने अपनी समस्त प्रतिभा और सकल काव्य कौशल का उपयोग किया

है। यह सारी प्रेम कहानी आध्यात्मिक भूमि पर प्रतिष्ठित है। उसमें आत्मा का उज्जवल प्रकाश है और सर्वत्र
है।'

राधा और कृष्ण के अप्रतिम सौंदर्य पर सभी गोपियाँ मुगध है। प्रेम की उत्पत्ति आँखों में होती है—

'औचक ही देखी राधा, नैन बिसाल भाल दिए शेरीं

नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति अक शौरी।

सूर स्याम देखन ही रीझे नैंन-नैन मिली परी ठगोरी।'

सूरदास ने अपनी रचनाओं के लिए ब्रज भाषा का प्रयोग किया है, जो लोक-प्रचलित थी। कृष्ण साहि
के कारण ब्रजभाषा अत्याधिक विकसित हुई। उसमें सूर और नंददास का योगदान महत्वपूर्ण है—ड
गणपतिचंद्र कहते है—"सूरदास और नंददास जैसे प्रतिभाशाली कवियों के हाथ में पड़ कर ब्रजभाषा चम
उठी, उसका शब्द भण्डार तत्सम एवं तद्भव शब्दों से परिपूर्ण हो गया तथा उसमें व्यंजकता और प्रवाहशील
के गुण आ गये। उनके हृदय की भावधारां से आप्लावित होकर उसमें ऐसी मधुरता, कोमलता एवं स्निग्धता
गयी कि वह परवर्ती कवियों के लिए अनुकरणीय हो गई।" छंदों में सूरदास की रचना 'सूरसागर' में कु
स्थानों पर रोला एवं चौपाई का प्रयोग हुआ है। अलंकारों का सबसे ज्यादा प्रयोग सूर की रचनाओं में हुआ है
'सूरसागर' में रुपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि तथा 'साहित्यलहरी' में भी अलंकारों का प्रयोग किय
गया है।

9.8.2 गोस्वामी हित हरिवंश—गोस्वामी हित हरविंश का जन्म 1559 ई० में मथुरा समीप दक्षिणाबा
गाँव में हुआ। वे राधा वल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। पिता का नाम केशवदेव मिश्र और माता का नाम तारावर
था। ये जाति के गौड ब्राह्मण थे।

हित हरिवंश ने केवल चौरासी पदों की रचना ब्रजभाषा में अत्यंत सरस रूप में की है।

9.8.3 रसखान—रसखान के जन्म के संबंध में विद्वानों में मतभेद है किन्तु विद्वानों के अन्वेषण के
आधार पर उनका जन्म 1533 ई. माना जाता है। रसखान ने गोस्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा ली थी। उनका स
1614 ई० में लिखा गया काव्य 'प्रेमवाटिका' अंतिम कृति है। इसकी रचना के कुछ ही वर्ष बाद 1618 ई० के
आस-पास उनका देहावसान हो गया।

रसखान की प्रमुख चार रचनाएँ प्रामाणिक मानी जाती है—सुजान रसखान, प्रेमवाटिका, दानलीला
अष्टयाम आदि। उनका 'सुजान रसखान' में 272 कवित सवैया दोहे है जिसमें भक्ति, प्रेम, राधा कृष्ण की रूप
माधुरी, वंशी-मोहिनी, एवं कृष्ण-लीला संबंधी अन्य सरस प्रसंग है। 'प्रेमवाटिका' के 53 दोहों में उन्होंने
राधा-कृष्ण को प्रेमोद्यान के मालिन-माली मानकर प्रेम के गूढ़ तत्व का सूक्ष्म निरुपण किया है। 'दानलीला' में
गोपी-कृष्ण संवाद है। 'अष्टयाम' के 26 दोहों में श्रीकृष्ण के प्रात: जागरण से रात्रि-शयन पर्यंत उनकी
दिनचर्या एवं विभिन्न क्रीडाओं का वर्णन है।

रसखान की गणना भक्त कवियों में की जाती है। उन्होंने श्रीकृष्ण के रूप पर मुग्ध गोपिका, राधा की मन
स्थिति के माध्यम से रसखान ने शृंगार की मधुर अभिव्यंजना की है। उन्होंने श्रीकृष्ण के बाल-रूप की माधुरी
का वर्णन इस प्रकार किया है—

धूरिभरे अति सोभित स्याम जू वैसी बनी सिर सुंदर चोटी।

खेलत खात फिरै अँगना पग पैंजनि बाजति पीरी कछोटी।

वा छविको रसखानि विलोकत वारत काम कलानिधि कोटी।

काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी।

रसखान की भाषा साहित्यिक ब्रज है। माधुर्य और प्रसाद गुणों के कारण काव्य-भाषा को सरस एवं सजीव बना दिया गया है। उनके काव्य में कवित, सवैया छंदों का सफल प्रयोग किया है।

9.8.4 कुँभनदास (1468-1583 ई०)—कुंभादास ब्रज में गोवर्धन पर्वत से दूर एक गांव में रहते थे। गृहस्थ होते हुए भी ये अनासक्त भाव से कृष्ण भक्ति में लीन रहते थे ये कीर्तन गायन में बड़े प्रसिद्ध थे और व्यक्तिवान भी थे। किवंदंती है कि कुंभनदास एक बार अकबर के निमंत्रण पर फतहपुर सीकरी गए थे। वहाँ बादशाह के आग्रह पर उन्होंने पद सुनाया था—

"संतन कहा सीकरी सौ काम"

कुंभनदास की स्वतंत्र रचनाओं का उल्लेख नहीं मिलता किन्तु उनके कुछ पद "राग कल्पद्रुम" 'राग रत्नाकर" बसंत धमार कीर्तन आदि में संकलित है। इनके पदों में साहित्यकता से ज्यादा संगीत और लय का सौंदर्य है।

9.8.5 नन्ददास—अष्टछाप कवियों में सूर के बाद का स्थान नन्ददास का था। वे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। 'नन्ददास का जन्म 1533 ई० में हुआ था। और चाचा आत्माराम। इन्हीं आत्माराम के पुत्र तुलसीदास थे। तुलसीदास और नन्ददास ने शैशव में सोरों में रह कर ही नृसिंह पंडित से संस्कृत भाषा का ज्ञान अर्जित किया था।' नन्ददास भी तुलसी के साथ काशी चले गये और वहाँ शास्त्रों का अध्ययन किया। गोकुल में विट्ठलनाथ से दीक्षा ली और इन्हीं दिनों सूर के सम्पर्क में आने पर सच्चे कृष्ण भक्त बन गये। जीवन के अंतिम दिनों में वे अपने गाँव गोवर्धन आ गये थे। इसी समय उनका 1583 ई० में देहावसन हुआ।

इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या पंद्रह बताई जाती है। इन ग्रन्थों के नाम इस प्रकार है—अनेकार्थ मंजरी, मानमंजरी रसमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, प्रेम बारहखड़ी, श्याम सगाई, सुदामा चरित्र, रुक्मिणी मंगल, भंवरगीत, रास पंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, दशमस्कंदभाषा, गोवर्धनदासलीला, नन्ददास-पदावली आदि। इनमें से रास पंचाध्यायी, भंवरगीत और सिद्धांत पंचाध्यायी इनके महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। नन्ददास के सभी ग्रन्थ ब्रज भाषा में लिखे गये है।

9.8.6 मीराबाई—मीराबाई के जीवनवृत्त, तथा गुरू के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। अनुसंधान के आधार पर यह निश्चित है कि उनका जन्म 1504 ई. में और मेडता के समीपवर्ती गाँव 'कुडकी' में हुआ। राठौर वंश की मेडतिया शाखा के प्रवर्तक राव दूदा थे। उन्हीं के चतुर्थ पुत्र रत्न सिंह की पुत्री थी। राव दूदा भी कृष्ण भक्त थे, मीरा को भी भक्ति के संस्कार उन्हीं से प्राप्त हुए थे। 'पारिवारिक वातावरण, समाज में प्रचलित लोकगीत एवं यदा-कदा राजमहलों में आनेवाले सिद्ध सन्यासियों या रमते जोगियों के भक्तिमय उपदेश ही मीरा की पाठशाला बने। लोक गीतों की मधुरता एवं राजसी कलाप्रियता ने उन्हें अनायास संगीत-प्रेमिका बना दिया, तो साधुसंगति के प्रभाव वंश उनका हृदय भक्ति एवं वैराग्य की ओर आकृष्ट हुआ, जिसकी अनुगूंज उनकी रचनाओं में सर्वत्र विद्यमान है। 'मीरा का विवाह चितौड़ के राणासांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से हुआ। मीरा के विवाह के सात वर्ष पश्चात पति भोजराज का स्वर्गवास हो गया। विधवा हो जाने पर वह अपने आराध्य कृष्ण की भक्ति में लीन हो गयी। कुल की मर्यादा को लांघकर सत्संग में जाना देवर विक्रमसिंह को मीरा का यह बर्ताव पंसद नहीं था। मीरा को कष्ट दिया जाने लगा। मीरा ने ससुराल को त्याग दिया और तीर्थस्थानों की यात्रा करते हुए वह वृंदावन पहुँची। कुछ दिन ठहरकर द्वारका चली जाती है वहाँ कीर्तन करते हुए मीरा ने शेष जीवन व्यतीत किया।

मीरा की पूर्ण-अपूर्ण ग्रन्थ संख्या बारह है। वह इस प्रकार है—गीतोविंद, नरसी जी का मायरा, राग सोरठ का पद, राग गोविदं सत्यभामाणुं रुसणं , मीरा की गरीबी, रुक्मिणी मंगल, नरसी मेहता की हुण्डी, चरित, स्फूटपद आदि।

कृष्णभक्ति साहित्य की मीरा के साहित्य में अनुभूति की तीव्रता अधिक दिखाई देती है। कृष्ण भक्त राधा-गोपियों के माध्यम से अपने भक्तिभाव को अभिव्यक्त किया है। किन्तु मीरा कृष्ण को संबोधित करती वह उसे पति के रूप में देखती है। कृष्ण के अलावा उसके जीवन में अन्य किसी को स्थान नहीं है। वह कृ के वियोग का दरद झेलती रहती है—

'बिरहनी बावरी सी भई।

ऊँची चढ़ि अपने भवन में टेरत हाय दई।

ले अँचरा मुख अँसुवन पोंछत उधरे गात सही।

मीरां के प्रभु गिरधर नागर बिछुरत कछु न कही।।

मीरा की रचनाओं में विरह रस के साथ-साथ शांत रस का भी प्रयोग मिलता है। मीरा के काव्य की भ राजस्थानी ब्रज है। उनके पदों में गुजराती का पुट तथा खड़ी बोली और पंजाबी का भी प्रभाव दिखायी देता छंदों का भी प्रयोग तथा अलंकारों में उपमा, रुपक, उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग उनकी काव्य रचनाओं में मिला है।

9.8.7 परमानन्ददास—अष्टछाप के प्रमुख कवि परमानंददास का जन्म कन्नौज के निर्धन ब्राह्म परिवार में हुआ था। बल्लभाचार्य से दीक्षा लेकर ये बाल लीला के पदों की रचना करते रहे। इनकी रचन परमानंद सागर के नाम से प्रकाशित है। बाल लीला तथा राधा-कृष्ण प्रेम प्रसंग में इनका मन रहता था। इनक मातृभाषा गुजराती थी लेकिन ब्रजभाषा पर इनका अच्छा अधिकार था।

9.9 कृष्णभक्ति काव्य धारा की प्रमुख विशेषताएँ

भारतीय धर्म और संस्कृति के इतिहास में कृष्ण सदैव एक अद्भुत व विलक्षण व्यक्तित्व माने जाते रहे हैं हमारी प्राचीन ग्रंथों में यत्र-तत्र कृष्ण का उल्लेख मिलता है। जिससे उनके जीवन के विभिन्न रूपों का पर चलता है। यदि वैदिक व संस्कृत साहित्य के आधार पर देखा जाए तो कृष्ण के तीन रूप सामने आते हैं——

1. बाल व किशोर रूप, 2. क्षत्रिय नरेश, 3. ऋषि व धर्मोपदेशक।

श्रीकृष्ण विभिन्न रूपों में लौकिक और अलौकिक लीलाएं दिखाने वाले अवतारी पुरुष हैं। गीत महाभारत व विविध पुराणों में उन्हीं के इन विविध रूपों के दर्शन होते हैं।

कृष्ण महाभारत काल में ही अपने समाज में पूजनीय माने जाते थे। वे समय समय पर सलाह देकर धर्म और राजनीति का समान रूप से संचालन करते थे। लोगों में उनके प्रति श्रृद्धा और आस्था का भाव था। कृष्ण भक्ति काव्य धारा के कवियों ने अपनी कविताओं में राधा-कृष्णा की लीलाओं को प्रमुख विषय बनाकर वृहद काव्य सृजन किया। इस काव्यधारा की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार है—

9.9.1 राम और कृष्ण की उपासना—समाज में अवतारवाद की भावना के फलस्वरूप राम और कृष्ण दोनों के ही रूपों का पूजन किया गया।

दोनों को ही पूर्ण ब्रह्म का प्रतीक मानकर, आदर्श मानव के रूप में प्रस्तुत किया गया। किंतु जहाँ राम मर्यादा पुरषोत्तम के रूप में सामने आते हैं, बही कृष्ण एक सामान्य परिवार में जन्म लेकर सामंती अत्याचारो का विरोध करते हैं। वे जीवन में अधिकार और कर्तव्य के सुंदर मेल का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

वे जिस तन्मयता से गोपियों के साथ रास रचाते हैं, उसी तत्परता से राजनीति का संचालन करते हैं या फिर महाभारत के युद्ध भूमि में गीता उपदेश देते हैं।

इस प्रकार से राम व कृष्ण ने अपनी अपनी चारित्रिक विशेषताओं द्वारा भक्तों के मानस को आंदोलित किया।

9.9.2 राधा-कृष्ण की लीलाएँ—कृष्ण-भक्ति काव्य धारा के कवियों ने अपनी कविताओं में राधा-कृष्णा की लीलाओं को प्रमुख विषय बनाया।

श्रीमदभागवत में कृष्ण के लोकरंजक रूप को प्रस्तुत किया गया था।

भागवत के कृष्ण स्वयं गोपियों से निर्लिप्त रहते हैं।

गोपियाँ बार-बार प्रार्थना करती हे, तभी वे प्रकट होते हैं जबकि हिन्दी कवियों के कान्हा एक रसिक छैला बनकर गोपियों का दिल जीत लेते हैं।

सूरदास जी ने राधा-कृष्ण के अनेक प्रसंगों का चित्रण कर उन्हें एक सजीव व्यक्तित्व प्रदान किया है। हिन्दी कवियों ने कृष्ण के चरित्र को नाना रूप रंग प्रदान किये हैं, जो काफी लीलामयी व मधुर जान पड़ते हैं।

9.9.3 वात्सल्य रस का चित्रण—पुष्टिमार्ग प्रारंभ हुआ तो बाल कृष्ण की उपासना का ही चलन था। अत: कवियों ने कृष्ण के बाल रूप को पहले-पहल चित्रित किया।

यदि वात्सल्य रस का नाम लें तो सबसे पहले सूरदास का नाम आता है, जिन्हें आप इस विषय का विशेषज्ञ कह सकते हैं। उन्होंने कान्हा के बचपन की सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधियाँ भी ऐसी चित्रित की है, मानों वे स्वयं वहाँ उपस्थित हो।

मैया कबहूँ बढ़ेगी चोटि?

कितनी बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।

सूर का वात्सल्य केवल वर्णन मात्र नहीं है। जिन-जिन स्थानों पर वात्सल्य भाव प्रकट हो सकता था, उन सब घटनाओं को आधार बनाकर काव्य रचना की गयी है। माँ यशोदा अपने शिशु के पालने में सुला रही है और निंदिया से विनती करती है की वह जल्दी से उनके लाल की आँखियों में आ जाए।

जसोदा हरी पालनै झुलावै।

हलरावै दुलराय मल्हरावै जोई सोई कछु गावै।

मेरे लाल कौ आउ निंदरिया, काहै मात्र आनि सुलावै।

तू काहे न बेगहि आवे, तो का कान्ह बुलावें।

कृष्णा का शैशव रूप घटने लगता है तो माँ की अभिलाषाएँ भी बढ़ने लगती है। उसे लगता है की कब उसका शिशु उसका आँचल पकड़कर डोलेगा। कब, उसे माँ और अपने पिता को पिता कहे पुकारेगा, वह लिखते हैं—

जसुमति मन अभिलाष करै,

कब मेरो लाल घुतरुवनी रेंगै, कब घरनी पग द्वैक भरे,

कब वन्दहिं बाबा बोलौ, कब जननी काही मोहि ररै,

रब घौं तनक-तनक कछु खैहै, अपने कर सों मुखहिं भरे

कब हसि बात कहेगौ मौं सौं, जा छवि तै दुख दूरि हरै।

सूरदास ने वात्सल्य में संयोग पक्ष के साथ-साथ वियोग का भी सुंदर वर्णन किया हैं जब कंस का बुलावा लेकर अक्रूर आते हैं तो कृष्ण व बलराम को मथुरा जाना पड़ता है। इस अवसर पर सूरदास ने वियोग का मर्स्पर्सी चित्र प्रस्तुत किया हैं यशोदा बार-बार विनती करती हैं कि कोई उनके गोपाल को जाने से रोक ले।

जसोदा बार-बार यों भारवै

है ब्रज में हितू हमारौ, चलत गोपालहिं राखै

जब उधौ कान्हा का संदेश लेकर आते हैं, तो माँ यशोदा का हृदय अपने पुत्र के वियोग में रो देता है, वह देवकी को संदेश भिजवाती हैं।

संदेस देवकी सों कहियो।

हों तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो।।

उबटन तेल तातो जल देखत ही भजि जाने

जोई-चोर मांगत सोड़-सोड़ देती करम-करम कर न्हाते।

तुम तो टेक जानतिही धै है ताऊ मोहि कहि आवै।

प्रात: उठत मेरे लाड लडैतहि माखन रोटी भावै।

9.9.4 शृंगार का वर्णन—कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण व गोपियों के प्रेम वर्णन के रूप में पूरी स्वछंदता से शृंगार रस का वर्णन किया है। कृष्ण व गोपियों का प्रेम धीरे-धीरे विकसित होता है। कृष्ण, राधा व गोपियों के बीच अक्सर छेड़छाड़ चलती रहती है—

तुम पै कौन दुहावै गैया

इत चितवन उन धार चलावत, यहै सिखायो मैया।

सूर कहा ए हमको जातै छाछहि बेचनहारि।

कवि विद्यापति ने कृष्ण के भक्त-वत्सल रूप को छोड़ कर शृंगारिक नायक वाला रूप ही चित्रित किया है। विद्यापति की राधा भी एक प्रवीण नायिका की तरह कहीं मुग्धा बनाती है, तो कभी कहीं अभिसारिका। विद्यापति के राधा-कृष्ण यौवनावस्था में ही मिलते है और उनमें प्यार पनपने लगता है।

प्रेमी नायक, प्रेमिका को पहली बार देखता है तो रमनी की रूप पर मुग्ध हो जाता है।

सजीन भलकाए पेखन न मेल

मेघ-माल सयं तड़ित लता जनि

हिरदय सेक्ष दई गेल।

हे सखी! मैं तो अच्छी तरह उस सुन्दरी को देख नहीं सका क्योंकि जिस प्रकार बादलों की पंक्ति में एका ए अक बिजली चमक पर छिप जाती है। उसी प्रकार प्रिया के सुंदर शरीर की चमक मेरे हृदय में भाले की तरह उतर गयी और मैं उसकी पीड़ा झेल रहा हूँ।

विद्यापति की राधा अभिसार के लिए निकलती है तो सौंप पाँव में लिप्त जाता है। वह इसमें भी अपना भला मानती है, कम से कम पाँव में पड़े नूपुरों की आवाज तो बंद हो गयी।

इसी प्रकार विद्यापति वियोग में भी वर्णन करते है। कृष्ण के विरह में राधा की आकुलता, विवशता, दैन्य व निराशा आदि का मार्मिक चित्रण हुआ है।

सजनी, के कहक आओव मधाई।

विरह-पयोचि पार किए पाऊव, मझुम नहिं पति आई।

एखत तखन करि दिवस गमाओल, दिवस दिवस करि मासा।

मास-मास करि बरस गमाओल, छोड लूँ जीवन आसा।

बरस-बरस कर समय गमाओल, खोल लूं कानुक आसे।

हिमकर-किरन नालिनी जदि जारन, कि कर्ण माधव मासे।

इस प्रकार कृष्ण भक्ति कवियों ने प्रेम की सभी अवस्थाओं व भाव-दशाओं का सफलतापूर्वक चित्रण किया है।

9.9.5 पात्र एवं चरित्र-चित्रण—कृष्ण भक्ति काव्य के कवियों ने कृष्ण जीवन के कोमलतम अंशों को अपने काव्य का विषय बनाया। कृष्ण कथा के नायक श्रीकृष्ण में मानव और अतिमानव के विरोधी तत्वों का सम्मिश्रण हैं। इन भक्तों के कृष्ण महाभारत के नीति कुशल, व्यवहारवादी योद्धा कृष्ण न होकर वे है बाल गोपाल तथा साँवले-सलोने छलिया कृष्ण के साथ सम्बद्ध पात्र नन्द-यशोदा, गोप-गोपी, और सखा उद्धव है। कृष्णावतार का उद्देश्य लीला है और इन पात्रों का उद्देश्य है लीला में शामिल होना। राधा रस रुपिणी है, जिसके चरित्र के दो पक्ष हैं—वास्तव में वह कृष्ण से अभिन्न है, किन्तु व्यवहार में उसे कृष्णा प्रेम को उत्तरोत्तर विकसित करने के लिए चित्रित किया है। भक्त कवियों ने उद्धव के माध्यम से बुद्धि और तर्क पर भाव मस्तिष्क पर ह्रदय, ज्ञान पर भक्ति और निर्गुण पर सगुण की विजय दिखलाई हैं।

9.9.6 प्रकृति चित्रण—कृष्ण भक्ति साहित्य भावात्मक काव्य है। इस काव्य में प्रकृति के मनोरम और अनुकूल भयानक और प्रतिकुल रूपों के चित्रण में कृष्ण भक्त कवियों ने अपने अद्भूत कौशल का परिचय दिया है। प्रकृति का कोई भी सौंदर्य उनकी आँखो से नहीं छूटा। पृथ्वी, अंतरिक्ष, आकाश, वन, जलाशय, यमुना, कुंज-भवन आदि का सौदर्य चित्रण कृष्ण भक्त कवियों ने किया है। सूरदास का प्रभातकालीन चित्रण इस प्रकार है—

"जागिये ब्रजराज कुँवर कमल कुसुम फूले।

कुमुद वृन्द संकुचित भृंगलता भूले।।"

9.9.7 संगीतात्मकता (हवेली संगीत)—कृष्ण भक्त कवियों में संगीतात्मकता का प्रभाव दिखाई देता है। सामवेद से लेकर आज तक संगीत का आरोह-अवरोह, सप्त सुरों का संगम तथा लय-गति तान व आलाप आदि शास्त्रीय वस्तु होकर भी लोकानुरुप बदलती हुई, मध्य कालीन भक्ति साहित्य में संवेग प्रवाहित होती रही। कबीर-नानक से लेकर सूर-तुलसी सभी मध्य कालीन भक्त कवियों में उक्त संगीतात्मकता साहित्य के अनिवार्य तत्व रागात्मकता के साथ नाना रूपों में स्पन्दित होती रही। कविता की यह संगीतात्मकता की प्रवृत्ति कृष्ण काव्य के पुष्टिमार्गी कवियों में स्पष्ट देखी जाती है। अकबर के महान संगीत सम्राट तानसेन पुष्टिमार्गी स्वामी हरिदास के शिष्य थे। गुजरात प्रान्त में यह संगीतात्मक प्रवृत्ति-हवेली संगीत के रूप में दृष्टिगोचर होती है। अत: इन कवियों पर संगीतात्मकता का प्रभाव रहा है।

9.9.8 ब्रजभाषा व अन्य भाषाओं का प्रयोग—अनेक कवियों ने नि:संकोच कृष्ण की जन्मभूमि में प्रचलित ब्रज भाषा को ही अपने काव्य में प्रयुक्त किया। सूरदास व नंददास जैसे कवियों ने भाषा के रूप को इतना निखार दिया कि कुछ समय बाद यह समस्त उत्तरी भारत की साहित्यिक भाषा बन गई।

यद्यपि ब्रज भाषा के अतिरिक्त कवियों ने अपनी-अपनी मातृ भाषाओं में कृष्ण काव्य की रचना की। विद्यापति ने मैथिली भाषा में अनेक भाव प्रकट किए।

सप्ति हे कतहू न देखि मधाई

कांप शरीर धीन नहि मानस, अवधि निअर मेल आई

माधव मास तिथि भयो माधव अवधि कहए पिआ गोल।

मीरा ने राजस्थानी भाषा में अपने भाव प्रकट किए।

रमैया बिन नींद न आवै

नींद न आवै विरह सतावै, प्रेम की आंच हुलावै।

9.9.9 प्रेम की अलौकिकता—कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रेम की अलौकिकता पर बल दिया है। इनका शृंगार रस चित्रण मधुर रस की कोटि में आता है। मधुर रस की स्थापना कृष्ण और राधा के प्रेम का उन्मुक्त चित्रण करने के लिए ही की गई हैं। कृष्ण भक्त कवियों ने रति जैसे प्रसंगों का भी वर्णन किया है। इस प्रकार के प्रसंगों में अध्यात्मिकता ढूँढ़ना व्यर्थ है। इस भक्ति परम्परा में शृंगार वर्णन के कई कारण मौजूद थे—एक तो मन्दिरों का वातावरण विलासप्रधान होता गया। दूसरा अधिकारी वर्ग का दृष्टिकोण भी विलासोन्मुख हो गया था। इस प्रकार कृष्ण भक्ति साहित्यपर चैतन्य, हितहरिवंश, हरिदास तथा राधास्वामी सम्प्रदायों का गहरा प्रभाव रहा है।

9.10 कृष्ण भक्ति साहित्य पर विभिन्न संप्रदायों का प्रभाव

भक्ति काल की चौथी काव्य-धारा का नाम है—**कृष्णभक्ति काव्य धारा**। इस भक्ति धारा पर विभिन्न संप्रदायों का प्रभाव हैं; ये संप्रदाय इस प्रकार हैं

1. विष्णु संप्रदाय : इस संप्रदाय के प्रवर्तक विष्णु गोस्वामी हैं। इस **रुद्र संप्रदाय** भी कहा जाता है। यह शुद्धाद्वैतवादी है।

2. निम्बार्क संप्रदाय : इस संप्रदाय के प्रवर्तक निम्बक आचार्य हैं। इसका प्रमुख ग्रंथ 'वेदांत पारिजात सौरभ' है। वह दश श्लोकी द्वैताद्वैतवादी है। इस संप्रदाय में कृष्ण के वामांग में सुशोभित राधा के साथ कृष्ण की उपासना का विधान है।

3. माध्व-संप्रदाय : इसके प्रवर्तक माध्वाचार्य है। इसने द्वैतवाद को प्रश्रय दिया।

4. श्री संप्रदाय : इसके प्रवर्तक रामानुजाचार्य हैं। इनके ग्रंथ हैं : वेदांत संग्रह, श्री भाष्य, गीता भाष्य। विशिष्टाद्वैत की स्थापना इनके द्वारा हुई।

5. रामानंदी संप्रदाय : इस संप्रदाय के संस्थापक रामानंद हैं। इन्होंने विशिष्टाद्वैतववाद को मान्यता दी।

6. वल्लभ संप्रदाय : इसके प्रवर्तक वल्भाचार्य हैं। इन्होंने शुद्ध अद्वैतवाद को मान्यता दी। इन्होंने श्रीमद्भागवत की तत्वबोधिनी टीका लिखी। वल्लभ संप्रदाय में कृष्ण के बाल रूप की उपासना मिलती है।

7. चैतन्य संप्रदाय : इसके प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु हैं। इसे गौडीया संप्रदाय भी कहा जाता है। द्वैताद्वैतवाद में आस्था। इसमें ब्रह्म की शक्ति राधा की उपासना का विधान है और ब्रह्म के रूप में कृष्ण की शक्ति का विधान है।

8. राधा-वल्लभी संप्रदाय : इसके प्रवर्तक हितहरिवंश हैं। इनके ग्रंथ हैं :

राधासुधानिधि, हितचौरासी पद। इस संप्रदाय में राधा ही प्रमुख है।

9. हरिदासी या सखी संप्रदाय : इसके प्रवर्तक तानसेन के गुरु हरिदास हैं। इनके ग्रंथ हैं : ललित प्रकाश, केलिमाल, सिद्धान्त के पद। इसमें निंकुज बिहारी कृष्ण सर्वोपरि हैं। सहज शृंगार रस में लीन होकर निकुंज लीला परायण कृष्ण की उपासना और नित्य बिहार दर्शन ही सखी का काम्य है।

इस प्रकार हिंदी कृष्ण काव्य ने धार्मिक क्षेत्र में सुदृढ़, आकर्षक और व्यापक धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की है

संदर्भित ग्रन्थ

हिन्दी साहित्य का अतीत भाग 1	—	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
हिन्दी साहित्य का अतीत भाग 2	—	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
हिन्दी साहित्य की भूमिका	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी

साहित्येतिहास: संरचना और स्वरूप	—	सुमन राजे
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	डॉ० नगेन्द्र
हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन	—	विद्यानिवास मिश्र
भारतीय साहित्यशास्त्र	—	गणेश त्रयम्बक देशपाण्डे
साहित्य सहचर	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य चिन्तन	—	इन्द्रपाल सिंह
हिन्दी साहित्य का रेखांकन	—	किशोरीलाल
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	—	गणेश बिहारी मिश्र
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	—	रामकुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	—	रामरतन भटनागर

बोध प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. युग परिवेश की चर्चा करते हुए कृष्ण काव्य और भक्ति आन्दोलन और कृष्ण भक्ति काव्य परंपरा पर भी प्रकाश डालिए?
2. कृष्ण भक्ति आन्दोलन में कृष्ण भक्त कवियों की चर्चा कीजिए?
3. कृष्ण भक्ति काव्य में कृष्ण और राधा के स्वरूप की चर्चा कीजिए तथा कृष्ण काव्य की कथ्यगत विशेषताएँ भी बताइए?
4. जज्जित काल की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
5. निर्गुण ज्ञानमार्गी, काव्यधारा के संतों पर प्रकाश डालिए?
6. कबीर दास पर टिप्पणी कीजिए?
7. निर्गुण प्रेममार्ग सूफी काव्यधारा के कवि कुतबन, मलिक मुहम्मद जायसी और नूर मुहम्मद पर टिप्पणी कीजिए?
8. कृष्ण जनित काव्य के कवियों पर प्रकाश डालिए?
9. मीराबाई पर एक टिप्पणी लिखिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. 'भक्तियुग हिन्दी साहित्य का समृद्धतम युग है।' केवल कृष्णकाव्यों के आधार पर अपने विचार लिखिए।
2. 'कृष्णभक्ति काव्यधारा सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक शक्तियों की गतिमान और विकासमान दृष्टि को प्रस्तुत करती है।' इस कथन की पुष्टि कीजिए।
3. 'भारतीय संस्कृति और साहित्य में कृष्ण का व्यक्तित्व अत्यन्त विलक्षण है।' इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?
4. कृष्णभक्ति काव्यधारा के ग्रन्थों में कृष्ण कथाओं के अंदर कृष्ण के कौन-कौन-से रूप उभरते हैं?
5. भक्तिकाल से पूर्व कृष्णकाव्य के विषय में एक टिप्पणी लिखिए।
6. अष्टछाप के कवियों के नामों का उल्लेख कीजिए।
7. 'सुजान रसखान' ग्रन्थ की कृष्णभक्ति के आधार पर समीक्षा कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. वात्सल्य रस के जन्मदाता किसे कहा जाता है? उनके द्वारा इस रस से अभिभूत रचना को लिखिए।
2. नारदभक्ति सूत्र में भक्ति के विषय में क्या लिखा गया है?
3. 'गीत गोविन्द' के रचनाकार और उनका संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. कृष्णभक्ति धारा में कृष्ण के किन तीन रूपों का वर्णन मिलता है?
5. 'नैनन बनज बसाऊँरी, जौं मैं साहेब पाऊँ' यह पंक्ति किसका पद है तथा किस ग्रन्थ से लिया गया है?
6. हित हरवंश ने कितने पदों की रचना ब्रजभाषा में की है?

इकाई (Unit)

10

रीतिकाल की पृष्ठभूमि

संरचना

10.1 उद्देश्य
10.2 प्रस्तावना
10.3 रीतिकाल का सामान्य परिचय
10.4 रीतिकाल का प्रवृत्ति के आधार पर वर्गीकरण
10.5 रीतिबद्ध काव्य की प्रमुख विशेषताएँ।
- 10.5.1 कवि कर्म और आचार्य कर्म का समन्वय
- 10.5.2 शृंगारिकता
- 10.5.3 सौन्दर्य चित्रण
- 10.5.4 अलंकारिकता
- 10.5.5 काव्य रूप
- 10.5.6 नारी चित्रण
- 10.5.7 प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण
- 10.5.8 रीतिबद्ध कवियों में राधा-कृष्ण
- 10.5.9 समाज में सर्वथा विमुख कविता
- 10.5.10 पराश्रयिता की भावना
- 10.5.11 ब्रजभाषा की प्रधानता
- 10.5.12 छन्द
- 10.5.13 भक्ति, नीति और वीर रस
- 10.5.14 अभिव्यंजना पद्धति

10.6 रीतिबद्ध काव्य
10.7 रीतिबद्ध काव्यधारा की विशेषताएँ
10.8 रीतिमुक्त या स्वच्छन्द काव्यधारा
10.9 रीतिमुक्त काव्य की विशेषताएँ
बोध प्रश्न

10.1 उद्देश्य

- रीतिकाल का परिचय ।
- रीतिकल के विविध काव्यों का भेद ।
- रीतिबद्ध काव्य का परिचय तथा विशेषताएँ ।
- रीतिसिद्ध काव्य का परिचय तथा विशेषताएँ ।
- रीतिमुक्त काव्य का परिचय तथा विशेषताएँ ।

10.2 प्रस्तावना

इस इकाई से आप रीतिकाल के विषय में परिचय प्राप्त करेंगे। इसकी विविध काव्य धाराओं से प
कराया जाएगा। इसमें रीतिबद्ध काव्य का सामान्य परिचय के साथ-साथ उसके प्रमुख कवि तथा उनके द
की क्या प्रवृत्तियाँ है का अध्ययन करेंगे। रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त काव्य के कवियों तथा उनकी रचनाओं
जानकारी दी जाएगी साथ ही यह भी बताया जाएगा कि इनकी क्या विशेषताएँ है।

10.3 रीतिकाल का सामान्य परिचय

रीतिकाल जो समय सारणी के अनुसार मध्यकाल के नाम से भी जाना जाता है। रीतिकाल में शृंगार
रचनाएँ अधिक हुई है इसका कारण तत्कालीन समय का परिवेश, राजा, नवाब और सामन्त लोगों का व
था वहीं कवि अपनी जीविका का साधन काव्य रचनाओं को मानते थे और आश्रयदाता की रुचि के अ
उनके मनोरंजन के साधन के रूप में काव्य रचना की जाती थी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संवत् 1700 से 1900 तक के काल को (1643 ई. से 1843
'रीतिकाल' अथवा 'उत्तरमध्यकाल' नाम से अभिहित किया है। रीतिकाल में 'रीति' शब्द का प्रयोग 'का
निरुपण' के अर्थ में हुआ है। ऐसे ग्रन्थ जिनमें 'काव्यांगों के लक्षण' एवं उदाहरण दिये जाते हैं, 'रीति
कहलाते हैं। रीतिकाल के अधिकांश कवियों ने रीति निरुपण करते हुए लक्षण ग्रन्थ लिखे, अत: इस काल
प्रधान प्रवृत्ति 'रीति निरुपण' को माना जा सकता हैं। आचार्य शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के कालों के नामक
प्रधान प्रवृत्ति के आधार पर किए हैं, अत: रीति की प्रधानता के कारण इस काल का नामकरण उन्होंने रीति
किया है। रीति से उनका तात्पर्य पद्धति, शैली और काव्यांग निरुपण से है।

रीतिकाल का समय मुगलों के वैभव, पराभव या पतन एवं अंग्रेजों के उदय का काल है। सामन्त
प्रवृत्ति का बोलबाला इस काल में था और सामन्तवाद के दोष सर्वत्र व्याप्त थे। एक ओर विलासी शा
सामन्तों, अधिकारियों एवं मनसबदारों का बोलबाला था तो दूसरी ओर गरीब जनता पिस रही थी। विला
की बढ़ती प्रवृत्ति के कारण नारी को सम्पत्ति माना जाने लगा था। विलास के उपकरणों का संग्रह करन
सुरा-सुन्दरी में लीन रहना उच्च वर्ग के जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गया था। मध्य-वर्ग भी उन्ह
अनुकरण में लीन रहता था। अभिजात वर्ग के हर सुन्दरी नारियों एवं रक्षिताओं से भरे रहते थे। कवि
समय का सजग चितेरा होता हैं। रीतिकालीन कवियों ने भी अपने समय के विलासी राजाओं, सामन्तो
विलासवृत्ति को तुष्ट करने के लिए घोर शृन्गार प्रधान रचनाएँ लिखीं। रीतिकाल के अधिकतर कवि राजा
में रहते थे अत: इन कवियों की सम्पूर्ण अन्तश्चेतना सुरा, सुन्दरी और सुराही तक ही सीमित रह गयी।
अपनी योग्यता का विस्तार नारी के अंग चित्रण में केन्द्रित कर दिया। डॉ० नगेन्द्र ने इसी कारण लिख
कि—"इस साहित्य का साँचा चाहे जैसा भी रहा हो उसमें ढली श्रृंगारिकता ही।" डॉ. भगीरथ मि
रीतिकालीन काव्यकारों को यौवन तथा बसंत के कवि कहा है।

इसके अतिरिक्त रीतिकाल में कुछ ऐसे भी राजाश्रित कवि थे जो अपने आश्रयदाताओं के दान, पर
आदि का आलंकारिक वर्णन करते हुए धन की प्राप्ति करते थे। धार्मिक संस्कारों के कारण भक्ति परक रच
करके कुछ कवि आत्मलाभ भी करते थे, तो कुछ कवि जीवन के कटु-तिक्त वैयक्तिक अनुभवों को नीति
जामा पहनाकर नीति कथनों के रूप में भी व्यक्त करते थे।

10.4 रीतिकाल का प्रवृत्ति के आधार पर वर्गीकरण

रीतिकाल में लिखित सम्पूर्ण उपलब्ध काव्य को वर्ण्य अथवा विषय या प्रवृत्ति के आधार
निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है—

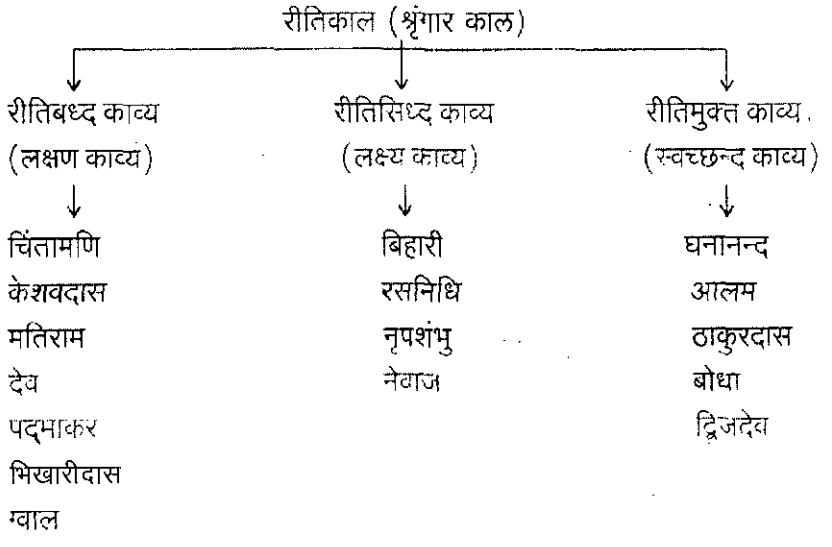

10.5 रीतिबद्ध काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

रीतिबद्ध काव्य वह काव्य है जो रीति-निरुपण के रूप में लिखा गया हो। इसमें इस काल में लिखे गये वे सभी रीति-ग्रन्थ आ जाते हैं, जिसमें काव्यांगों को पद्यमय लक्षण प्रस्तुत कर उसके उदाहरण के रूप में स्वरचित काव्य प्रस्तुत किया गया। डॉ. नगेन्द्र ने इसे "आचार्य-कवियों का काव्य कहा हैं आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इसे 'रीतिबद्ध या लक्षणबद्ध काव्य' कहते हैं। इन काव्य-ग्रन्थ निर्माताओं को रीतिबद्ध कवि कहा जाता है। दूसरे शब्दों में संस्कृत- काव्यशास्त्र के आधार पर हिन्दी में लक्षण ग्रन्थों की रचना करने वाले कवियों को रीतिबद्ध कवि माना जाता है। इन्होंने काव्यांगों के लक्षण लिखकर उनके उदाहरण भी प्रस्तुत किए। रीतिबद्ध आचार्यों ने संस्कृत के अलंकार सम्प्रदाय को विशेष रूप से स्वीकार किया और रस, रीति, ध्वनि तथा वक्रोक्ति को गौण माना। इन रीतिबद्ध काव्य रचनाकारों का मुख्य उद्देश्य अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करना था किन्तु अपने काव्य के माध्यम से वे संस्कृत भाषा में वर्णित साहित्यशास्त्र का हिन्दी लोकभाषा में (ब्रजभाषा) अनुवाद करते थे। इन आचार्यों ने किसी नए काव्यासिद्धान्त की स्थापना नहीं की इसीलिए इनकी रचना में मौलिकता का अभाव हैं उन्होंने पूर्वानिर्धारित परिपाटी का अनुकरण मात्र किया है। ये अलंकारों और नायक-नायिका भेद निरुपण में ही व्यस्त रहे। इस वर्ग में दो प्रकार के कवि हुए। प्रथम वे जिन्होंने लक्षण ग्रन्थों के साथ लक्ष्य ग्रन्थ भी लिखे। इस वर्ग में केशवदास, चिंतामणि, मतिराम, देव, पद्माकर आदि की गणना की जाती है। दूसरे वर्ग में वे आचार्य आते हैं जिन्होंने लक्षण ग्रन्थ तो लिखे पर लक्ष्य ग्रन्थ नहीं। इनमें श्रीपति का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। इस काव्यधारा की सामान्य प्रवृत्तियाँ तथा विशेषताएँ इस प्रकार है–

10.5.1 कवि कर्म और आचार्य कर्म का समन्वय

कवि कर्म और आचार्य कर्म का अद्भुत समन्वय रीतिबद्ध काव्य धारा की सबसे प्रमुख विशेषता रही है। रीतिकाल में साहित्य और साहित्यशास्त्र दोनों का आश्रय स्थान दरबार में था। दरबार का परिवेश ज्ञान और गुणग्राही उतना नहीं था, जितना चिन्तन के लिए आवश्यक होता है। संभवत इसीलिए आचार्य कर्म में इतनी गंभीरता नहीं थी। दरबारी सभ्यता इस काव्य में एक नया रूप धारण कर चुकी थी, जिसमें 'प्रदर्शन' का जितना महत्व था उतना दर्शन को नहीं। अत: आचार्य कर्म भी उन्हीं के अनुसार परिवर्तित हुआ। आचार्यों को कार्य चिन्तन नहीं प्रदर्शन हो गया। कवियों की भी यही दशा थी, इसीलिए कवियों को प्रदर्शन के लिए रीति का सहारा लेना पडा और आचायों को काव्य का। परिणामत: आचार्य कर्म और कविकर्म यहाँ एकाकार हो गये। कवित्व और आचर्यत्व के मिश्रण के दुष्परिणामों की ओर संकेत करते हुए आचार्य शुक्लजी ने लिखा है—"इस एकीकरण का प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा। आचार्यत्व के लिए सूक्ष्म विवेचन और पर्यावलोचन शक्ति की अपेक्षा

होती है, उसका विकास नहीं हुआ। कवि लोग एक दोहे में अपर्याप्त लक्षण देकर अपने कवि कर्म में प्रवृ
जाते थे। काव्यांगों का विस्तुत विवचेन तर्क द्वारा खण्डन मण्डन, नये नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन आदि कु
नहीं हुआ।''

10.5.2 शृंगारिकता

शृंगारिकता इस काव्यधारा की ही नहीं, इस कला के साहित्य की भी सर्वाधिक मुखर प्रवृत्ति रही है
काल के कवियों में मौलिकता का अभाव भले ही रहा हो पर शृंगार रस के विभिन्न अवयवों–विभाव, अनु
संचारी, इत्यादि के वर्णन, नायिकादि भेदोपाभेदों, उनकी सूक्ष्म शृंगारिक मन: स्थितियों के उद्‌घाटन ऋतु
के वर्णनों में कवियों ने जितनी सरस और मार्मिक ऊक्तियाँ प्रस्तुत की हैं संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रं
हजारों वर्षों के साहित्य से एकत्र की जाये तो भी इनकी तुलना में कम पड़ेगी। केवल मात्रा में नहीं सरसता
यह साहित्य अद्‌भूत है।

इस धारा के कवियों ने शृंगार के संयोग और वियोग-दोनों ही पक्षों का पूरे मनोवेग का चित्रण किय
प्रेम का मूलाधार आलम्बन सौन्दर्य मानने के कारण इन्होंने सौन्दर्य के चित्रण में विशेष रुचि आई है।

10.5.3 सौन्दर्य चित्रण

रीतिबद्ध शृंगारिक काव्य के मुख्य आलम्बन नायक-नायिका रहे हैं। इन दोनों में नायिका से अंग–
की ओर कवियों की दृष्टि अधिक रही है। नख-शिख वर्णन के सारे प्रसंग इसके प्रमाण है लेकिन
अनुभावादि के चित्रणों में यह रूप-सौन्दर्य अधिक मार्मिक होकर सामने आया है। भिखारीदास का एक स्व
चित्र द्रष्टव्य है—

पंकज से पायन में गूजरी जरायन की
घाघरे को घेर दीठि घेरि घेरि रखियाँ।
'दास' मनमोहिन मति के बनाय
बनि कंठमाल, कंचुकी हवेल हार परिवयां।
भाग भरी भागिनी सोहाग भरी सारी सूही
माँग भरी मोती अनुराग भरी अखियाँ।

ऐसा ही सम्मोहक रूप इस धारा के कवियों की दृष्टि में था। इसमें ललित हाव, विभ्रव हाव के उदा
हैं लेकिन हाव के स्वरूप निरुपण की वृत्ति इसमें दब गयी है और रूप की मादकता ही प्रमुख होकर स
आयी है।

10.5.4 अलंकारिकता

चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति रीतिकाल की सामान्य प्रवृत्ति रही है। चमत्कार का अर्थ है–अलंकार
होना। तत्कालीन रीतिबद्ध कवि अलंकारों पर अधिक ध्यान देता था। अलंकारों में भी ये कवि अनुप्रास,
पर विशेष बल देते थे, क्योंकि अनुप्रास के प्रयोग से मुक्तक की भाषा नाद उत्पन्न करने में समर्थ होती थी
काव्य ने भी एक मधुरता आ जाती थी। आश्रयदाता भी कविता का मर्मज्ञ नहीं होता था। उसे शब्दों के चम
और उसकी गेयता से ही अधिक मतलब होता था। कभी-कभी इन मुक्तकों को अशियोक्ति और
अलंकारों से भी सजाया जाता था। किन्तु यह अशियोक्ति कभी-कभी खिलवाड़ की सीमा तक पहुँच जाती

रीतिबद्ध कवि संस्कृत के अलंकार शास्त्र के रुढीगत उपमानों को लेकर उनका ही पिष्टपेषण करता
इस सन्दर्भ में उसने किसी नवीन मौलिक उद्‌भावना से काम नहीं लिया, परिणामत: उनके नखशिख
रुढ़िबद्ध और अवैयक्तिक ही बने रहे। रूप सादृश्य मूलक अप्रस्तुत विधान की अपेक्षा धर्म-सादृश्य वि
सुन्दरतम होता हैं रीतिबद्ध कवियों में इस प्रकार के अप्रस्तुत विधान की कमी है।

10.5.5 काव्य रूप

रीतिकालीन कवि का उद्देश्य उस युग के राजाओं और रईसों की रसिकता की वृत्ति को सन्तुष्ट करना था। वह पूर्ण रूप से राजदरबारी वातावरण से घिरा हुआ था। ऐसी स्थिति में चमत्कार उत्पादनार्थ तथा वाहवाही प्राप्ति के लिए मुक्तक काव्य शैली उसके अधिक अनुकूल थी। यह समय प्रबन्ध काव्य निर्माण के लिए सर्वथा अनुपयुक्त था। जिस दरबार में कवि पूगवों के दंगल लगते हो और जहाँ पर एक-दूसरे से बाजी मार जाने की होड चलती रहे, वहाँ प्रबन्ध काव्य का प्रश्न ही नहीं उठता। इस समय इस क्षेत्र में थोड़ा-बहुत साहस भी किया गया लेकिन वह विशेष फलीभूत नहीं हुआ। प्रबन्ध काव्यों के लिए निरंतर एकरसता और धैर्य की आवश्यकता होती है, ये बातें न तो उस समय के कवि के पास थी और न श्रोता के पास।

इस काल में यद्यपि सबके आचार्य केशवदास ने 'रामचन्द्रिका' लिखकर प्रबन्ध काव्य लिखने का मार्ग दिखलाया था, परन्तु यह परंपरा आगे नहीं चल पाई। आचार्य केशवदास स्वयं ओरछा नरेश इन्द्रजीत के दरबार में रहते थे और उनकी वेश्याओं को कविता रचना करने का हुनर भी सिखाते थे। 'कवि प्रिया' इनका इसी प्रकार का एक लक्षण ग्रन्थ है। किंतु उनकी रामचन्द्रिका की प्रबन्ध रचना पद्धति आगे नहीं चल पाई।

10.5.6 नारी चित्रण

नारी के प्रति रीतिकालीन कवियों का दृष्टिकोण भोगवादी रहा है। चाहे रीतिबद्ध कवि देव, मतिराम, केशव हो या रीतिसिद्ध कवि बिहारी हो अथवा रीतिमुक्त कवि घनानन्द, बोधा या आलम हो, सभी की दृष्टि नारी के प्रति भोगवादी रही हैं श्रृंगार भाव की इतनी बेकदरी और नारी के प्रति इतनी गिरी हुयी दृष्टि हिन्दी साहित्य में कभी नहीं प्रकट हुई। इसका मुख्य कारण यह है कि मुगल शासन की निरंकुश सत्ता के सन्मुख देशी राजवाडों के नरेशों का तेज आहत हो चुका था। मुगल दरबार के प्रचुर विलास का अनुकरण करना ही उनके जीवन का उद्देश्य बन गया था, मानों यह एक मनोवैज्ञानिक रूप से क्षतिपूर्ति थी। राजाश्रित कवि नारी के कूच-कटाक्ष के महीन ब महीन विलासात्मक रंगीले और भड़कीले चित्र उतारकर अपने स्वामी के गहरे मानसिक विषाद को दूर करने में प्रयत्नशील थे। उनके सामने नारी का एक ही रूप था और वह था विलासिनी प्रेमिका का। अपने दु:खों और पराभवों को भूलने के लिए इन लोगों ने नारी की मधुर चंचल छाया में बैठना ही उचित समझा।

रीतिबद्ध कवि दरबारी बनकर जन समाज से कट गये थे। रीतिकालीन कविता इसीलिए समाज के प्रति उपेक्षा पूर्ण दृष्टिकोण रखती हैं उसके आश्रयदाताओं के लिए नारी का सम्बल एक विलास स्थल बन गया था। अपने एकांगी दृष्टिकोण के कारण नारी जीवन के सामाजिक पक्ष, उसके श्रध्दाश्रय रूप और मातृ शक्ति को रीति कवि देख न सका। यहाँ तक कि आराध्य देवी के भी शारीरिक लावण्य पर रिझता रहा। इनके नारी चित्रण में वात्सल्य भावना कहीं पर भी नहीं दिखती। ऐसा लगता है कि मानो वासना ही उस नारी के जीवन का खाना-पीना, ओढ़ना-बिछौना सब कुछ हो। नारी रीतिबद्ध कवियों के लिए विलास का एक उपकरण मात्र है। देव ने कहा है—

"कौन गणै पुर वन नगर कामिनी एकै रीति।
देखत हरै विवेक को चित्त हरै करि प्रीति।

10.5.7 प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण

रीतिकाल में प्रकृति का आश्रय अथवा स्वतंत्र रूप में कम ही चित्रण हुआ है। रीतिबद्ध कवि दरबारी कवि था, उसके पास प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में विचरने का अवकाश भी कम था अत: उसके काव्य में वाल्मीकि, कालिदास का सा प्रकृति का विम्बग्राही रूप नहीं मिलता। प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण भी परम्परा मुक्त है। प्रकृति का चित्रण नायक और नायिका की मानसिक दशा के अनुकूल ही किया गया है। संयोग में उसका मनोमुग्धकारी उत्फुल्ल रूप है और वियोग में विदग्धकारी रूप। प्रकृति के उद्दीपन रूप का

चित्रण षट्ऋतु और बारहमासा की चित्रण पद्धति पर हुआ है। संयोग पक्ष में पावस का उतना प्रभावोत्प वर्णन नहीं, जितना इससे सम्बद्ध हिंडोले और तीज त्यौहारों का। पावस में प्रेमी-प्रेमिका के मिलन अवसर कवि का मन खूब रमता हुआ सा दिखाई देता है। रीतिबद्ध कवि की नायिका को वियोग काल में शुभ्र च कसाई सा लगता है तो पपीहे की पी-पी प्राण लेने लगती है। कहीं-कहीं इन कवियों ने प्रकृति चित्रण में उ अज्ञान का भी परिचय दिया है।

10.5.8 रीतिबद्ध कवियाँ में राधा-कृष्ण

रीतिबद्ध कवियों ने राधा-कृष्ण को अपनी श्रृंगारी कविताओं का आलम्बन बनाया। पद्माकर की का नाम राधा है। वह कृष्ण को होली खेलने के अवसर पर पकड़ लेती है और उनकी कमर से पिताम्बर लेती है, गालों पर गुलाल मल देती है और जो चाहे कर लेती है। केशव के कृष्ण वृषभानु के घर में आग के बाद सीधे राधा के पास पहुँचते हैं। यह सच ही है कि इससे अच्छा मौका रीतिकालीन रसिया को मिलता। राधा-कृष्ण रीतिकाव्य में सामान्य नायक और नायिका के रूप में चित्रित है। रीतिबद्ध कवियों ने या गोपी को परकीया रूप में चित्रित किया है। राधा परकीया रूप का एक उदाहरण हो गयी थी। अवसर ना दूसरी स्त्री के घर गया दिखाया है, जिससे स्वकीया नायिका भड़क जाती है। कहीं कहीं पर ऐसे वर्ण जिससे इस बात की गिरी हुई लोक रुचि का पता चलता है।

10.5.9 समाज से सर्वथा विमुख कविता

अधिकांश रीतिबद्ध कवि दरबारी थे। अपने आश्रयदाता विलासी राजाओं तथा सामन्तों की विलासित तुष्ट करने के लिए इन्हें घोर श्रृंगार परक कविता लिखनी पड़ी। दरबार में हल्की-फूल्की रचनाओं को ही उ प्राप्त था। अत: रीतिबद्ध कविता दरबार में पहुँचकर अपनी स्वाभाविक गंभीरता खोती रही। वह समाज दूर होती गयी। इन कवियों का सम्बन्ध केवल दरबारों से था। राजाओं को स्वयं प्रजा से लेना-देना नहीं समाज के यथार्थ से दूर होना ही रीतिकालीन काव्य के चमत्कारपूर्ण बन जाने का एक कारण था।

10.5.10 पराश्रयिता की भावना

रीतिबद्ध कवि अपने साहित्य और काव्यशास्त्रीय ज्ञान के लिए संस्कृत कवियों तथा आचार्यो अधिकतर निर्भर रहा हैं ऐसा होते हुए भी रिक्त में मिली संस्कृत साहित्य की विशाल परम्परा का सा उपयोग करके विशाल संसार को भी अपनी आँखों से देखने का अवसर उसे मिला। लेकिन यह भी सत्य रीतिकालीन कवि संस्कृत साहित्य पर अत्यधिक अवलंबित है और उनकी स्वतंत्र चिन्तन के प्रति अवश्य भाव अवश्य खटकता है। इस काव्य के कवियों में आलोचनात्मक दृष्टि का अभाव दिखाई पड़ता है।

10.5.11 ब्रजभाषा की प्रधानता

ब्रजभाषा इस युग की प्रमुख साहित्यिक भाषा है। भारतीय साहित्य में लालित्य के क्षेत्र में संस्कृत भा पश्चात् ब्रजभाषा का स्थान आता है। एक तो वह मध्यदेशीय भाषा थी, दूसरा यह प्रकृति से मधुर थी, सा कोमल रसों की सुन्दर अभिव्यक्ति की इसमें अपार क्षमता थी। माधुर्य गुण और नाजुक मिजाजी के व संगीत के लिए इनके शब्द सर्वथा अनुकूल थे। डॉ० नगेन्द्र का कथन इस दृष्टि से दृष्टव्य है–"भाषा के में इन कवियों ने एक खास नाजुक मिजाजी बरती है। इनके काव्य में किसी भी ऐसे शब्द की गुंजाइश जिसमें माधुर्य नहीं है। अक्षरों के गुंफन में इन्होंने कभी भी त्रुटी नहीं की। संगीत के रेशमी तारों में इनके माणिक्य मोती की तरह गूँथे हुए हैं।"

यह ब्रजभाषा की चरमोन्नति का काल हैं इस समय ब्रजभाषा में विशेष निखार, माधुर्य और प्रांजलत समावेश हुआ तथा वह अत्यन्त प्रौढ़ बन गयी। रीतिबद्ध कवियों की भाषा में कुछ दोष अवश्य पाये जा लेकिन यह भी सच है कि रीतिबद्ध कवि देव और पद्माकर ने कोमलाकांत पदावली की दृष्टि से तुलस पीछे छोड़ दिया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि रीतिबद्ध कवियों ने काव्य को उपयोगिता और जीवन से अलग रखकर विशुद्ध कला के रूप में देखा है। फलस्वरूप यह काव्य मोहक छटा से युक्त किंतु निर्जीव मूर्ति के रूप में सामने आया हैं परिपाटी बद्धता के कारण इस काव्य में भावना अत्यन्त संकुचित घेरे में बंध गयी है। इन्हीं बातों का ध्यान में रखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"जीवन की विभिन्न चिन्त्य बातों तथा जगत के नाना रहस्यों की ओर कवियों की दृष्टि नहीं जाने पायी। वाग्धारा बंधी हुई नालियों में ही प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव से बहुत से गोचर और अगोचर विषय रससिक्त होकर सामने आने से रह गये।"

10.5.12 छन्द

रीतिबद्ध कविता दरबारी वातावरण में साँस लेती थी। रीतिबद्ध कवियों ने दोहा, कवित्त, और सवैया छन्दों को अपनाया। सवैया और कवित्त में नाद तत्व का विधान किया जाता था और दोहों में अर्थतत्व का इसीलिए रीतिबद्ध कवि इन्हीं छन्दों का प्रयोग करते दिखाई देखते हैं। दोहा गेय न होते हुए भी अर्थ का विस्तार इसमें आवश्यक था। सवैया, कवित्त और दोहों में रीतिबद्ध कवि चित्रात्मक वर्णन करता था। गेयता और चित्रात्कता इस युग की कविता के दो प्रधान गुण थे।

10.5.13 रीति भक्ति और वीर रस

रीतिबद्ध काव्य में भक्ति और नीति सम्बन्धी सूक्तियाँ यत्र-तत्र बिखरी हुई मिल जाती है, पर इनके आधार पर हम रीति कवि को न तो अनन्य भक्त कह सकते हैं और न ही राजनीति निष्णात राधा-कृष्ण के नामोल्लेख मात्र से रीति कवि को भक्ति परम्परा में नहीं बिठाया जा सकता। प्राय: इन सभी कवियों ने शृंगार के साथ-साथ भक्ति की भी रचनाएँ की है, किन्तु उनकी भक्ति परक रचनाएँ उनके विभाजित व्यक्तित्व की परिचायक है। पद्माकर या रसखान जैसे कवियों ने भक्ति की रचनाओं में थोड़ी-बहुत सफलता अवश्य पाई है। डॉ. राजशेखर प्रसाद चतुर्वेदी ने अपने शोध-प्रबन्ध में स्पष्ट किया है कि वृद्धावस्था में अशक्त होकर केशवदास, पद्माकर आदि सभी प्रमुख कवि वैराग्य से ग्रसित दिखलाई पड़ते है। सच तो यह है कि भक्ति और नीति इस कवि के जीवन के अवसान और थकान की द्योतक है।

वीर काव्य का निर्माण यद्यपि रीतिकालीन परंपरागत शृंगारिकता के विपरीत है, परंतु रीतबद्ध कवि पद्माकर द्वारा रचित वीर रस की कविता को दुर्लक्षित नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार भूषण, सूदन आदि कवियों ने अपने आश्रयदारताओं की धमनियों में अपने अतातायी के विरुद्ध खड़े होकर सबल टक्कर लेने के लिये, नवीन रक्त का संचार करने के लिए वीर रसात्मक कविताओं की रचना की, उसी प्रकार पद्माकर ने भी बड़ी ओजस्विनी भाषा में वीर रसात्मक काव्य की सृष्टि की। इसमें राष्ट्रीयता का स्वर प्रधान है।

10.5.14 अभिव्यन्जना पद्धति

रीतिबद्ध कवियों की कविता दरबारी कविता थी। दरबार में वाह-वाह प्राप्ति के लिए उन्हें उर्दू और फारसी कवियों से होड़ लेनी पड़ती थी। अत: फारसी कवि जैसी ऊहात्मकता पद्धति को अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए उन्होंने अपनाया। वैसे मुगल शासकों के दरबार में हिन्दी को भी थोड़ा-बहुत संरक्षण मिला हुआ था।

10.6 रीतिसिद्ध काव्य

रीतिसिद्ध कवियों द्वारा लिखा गया काव्य रीतिसिद्ध काव्य कहलाता है। रीतिसिद्ध कवि वे हैं जिन्होंने रीतिकाव्य की बंधी-बन्धायी परिपाटी में आस्था रखते हुए भी लक्षण ग्रन्थों का प्रणयन नहीं किया अपितु स्वतंत्र ग्रन्थों के द्वारा अपनी कवि प्रतिभा का परिचय दिया। राजशेखर ने ऐसे कवियों के लिए 'काव्य-कवि' के पद का प्रयोग किया है। आचार्य कवियों ने अपने ग्रन्थों में 'कवि-शिक्षक' होने की अभिलाषा का स्पष्ट संकेत किया है, परंतु इन कवियों ने रीति का बन्धन स्वीकार करने पर भी इस अभिलाषा के ठीक विपरीत कवि-गौरव की अभिलाषा की है। इसी कारण इन कवियों को रीतिसिद्ध काव्य-कवि के नाम से भी अभिहित किया जाता है।

इन कवियों की एक विशेषता यह है कि वे कवित्व के लोभ में चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ बाँधने में ह लीन रहते थे। उन्हें अपनी कविता को लक्षण विशेष के साँचे में ढालने की विशेष चिन्ता नहीं रहती थी। इ स्वानुभूति के आधार पर मौलिक काव्य की रचना की। स्वतंत्र उद्भावना के लिए जितना अवकाश इन कवि के पास था उतना रीतिबद्ध आचार्य कवि के पास नहीं था। यही कारण है कि इन कवियों की वैयक्ति अपेक्षाकृत अधिक उभरी है। काव्यकवियों ने भाव पक्ष और कला पक्ष को समान रूप में महत्व दिया है कवियों की कविता की आत्मा रीति के भार से अधिक आक्रान्त नहीं हुयी, क्योंकि इन्होंने स्वतंत्र रूप लक्षण-ग्रन्थों की रचना नही की, भले ही कविता की पृष्ठभूमि में कहीं-कहीं रीति परम्परा काम कर रही भावाभिव्यक्ति के लिए इन्होंने भी आलंकारिक शैली का अवलम्ब किया हैं इस धारा के सबसे प्रमुख बिहारी है। इसके अलावा रीतिसिद्ध कवियों में सेनापति, बेनी, कृष्ण कवि, रसनिधि, नेवाज, नृपशंभु, प्री रामसराय दास आदि के नाम लिए जाते हैं।

10.7 रीतिबद्ध काव्य धारा की विशेषताएँ

रीतिसिद्ध कवियों की रचनाएँ रीति से गुथी हुयी है। लक्षण ग्रन्थों की रचना से विरत रहकर भी रीति पूरी-पूरी छाप रखने के कारण ये कवि रीति सिद्ध कवि या काव्य-कवि कहलाये और इनका काव्य रीति काव्य अभिहित हुआ। इस काव्य की विशेषताएँ निम्नलिखित है—

10.7.1 मध्यम पंथी काव्य

रीतिसिद्ध कवियों की रचनाओं में शास्त्रीय सिद्धान्तों का निरुपण और लक्षण निर्माण तो नहीं हुआ, भी इनकी रचनाएँ ऐसी बन पड़ी है, जो किसी न किसी काव्यांग के उदाहरण रूप में अवश्य रखी जा सकती लक्षणों का नियमत: पूरा-पूरा पालन न करने पर भी ये उनसे पूर्णत: मुक्त न थे जैसा कि स्वच्छन्द कवि परन्तु नियमानुसरण करते हुए भी ये स्वतंत्रता लेते थे। लक्षण ग्रन्थों की रचना में ये विरत रहते थे परंतु रीति पूरी छाप भी रखते थे। रीति की बाँध परिपाटी में इनकी आस्था पूरी थी, किन्तु ये उसके पूरे गुलाम होकर चलना चाहते थे। उससे अलग हटना भी इन्हें अभीष्ट न था, उसकी पूरी दासता भी इन्हें स्वीकार्य न थ

10.7.2 शृंगारिकता

रीतिसिद्ध कवियों ने शृंगार के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग का वर्णन किया है किंतु शृंगार के सं पक्ष में वे जितने रमे हैं, उतने वियोग पक्ष में नहीं। बिहारी इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। भले ही नायिकाओं अदाओं को इन्होंने चित्रित किया हो, लेकिन अनुभाव के विधान में इनकी रस व्यंजना अत्यन्त भव्य बन पड़ी हावों और भावों की ऐसी सुन्दर योजना इनका कोई भी समकालीन कवि नहीं कर सका। मानों एक प्रकार उन्होंने हाव-भाव भरी मूर्तिया तैयार कर दी है—

"बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाई।
सौह करै, भौहनि हँसै दैन कर नटि जाई।।

शृंगार के वियोग पक्ष में बिहारी उतने सफल नहीं हो पाये है लेकिन कुछ स्थल ऐसे भी है जहाँ नायि के हृदय के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण इन्होंने खूब किया है। शृंगार के संचारी भावों का चित्रण बड़ा हृदयस्पर्शी पड़ा है।

सघन कुँज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मन हो जात अजौ, वहै वा जमुना के तीर।।"

10.7.3 भाव पक्ष एवं कला पक्ष का सामांजस्य

रीतिसिद्ध कवियों ने काव्य के कला पक्ष के साथ-साथ भाव पक्ष पर भी पूरा बल दिया है, फलत: दो का अच्छा समन्वय इनके काव्य की एक सर्वमान्य विशेषता है। ये कवि कर्म के प्रति अधिक स्वस्थ अ

सन्तुलित दृष्टि रखते थे। फलस्वरूप काव्य के भाव और कला दोनों पक्षों को समान महत्व देते थे। एक ओर जहाँ इन रीति सिद्ध कवियों ने अपनी कविता के भाव पक्ष या वर्ण्य को नवीनता और ताजगी देने की चेष्टा की, उसे चर्वित चर्वण मात्र होने से बचाया, अपनी और अपने युग की सीमाओं तक सीमित रहने पर भी ऐहिकतापरक शृंगारी रचनाओं द्वारा रस-संचार और आनन्द सृष्टि का आयोजन किया, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने काव्य के कलापक्ष वास्तविक संभार की ओर भी ध्यान दिया। इन कवियों ने भाषा की लक्षणा और व्यन्जना शक्ति पर अधिक ध्यान दिया और उसे अधिक विकसित किया। लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता बिहारी, रसनिधि आदि में रीतिबद्ध आचायों की अपेक्षा अधिक है। बिहारी, रसनिधि, रामसहाय आदि रीतिसिद्ध कवियों ने अपने दोहनों को भावपूर्ण और सुगठित तथा सौन्दर्य-सम्पन्न करने के लिए काव्य की समास पद्धति का पर्याप्त उत्कर्ष दिखलाया है। भाषा को मृदुल, कोमल, नाद-सौन्दर्य से परिपूर्ण बनाने की इन्होंने चेष्टा की तथा प्रचलित कवित्त, सवैया के अतिरिक्त दोहों पर इन्होंने विशेष ध्यान दिया है।

10.7.4 भक्ति और नीति

वस्तुत: यह युग अनेक स्वादों का युग था और उस समय के कवि ने अनेक स्वादों से अपने ग्रन्थों को भरना चाहा। बिहारी ने कहा है—'करी बिहारी सतसई भरी अनेक संवाद।'

रीतिकालीन शृंगारी कवि देव, मतिराम, बिहारी आदि के भक्तिसम्बन्धी छन्दों पर—"राधा कन्हाई सुमिरन को बहाने है" की उक्ति चरितार्थ होती है। किंतु इसी समय में गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा मिथिला आदि में सैकड़ों भक्त, संत, सूफी तथा जैन कवियों ने अत्यधिक भक्ति-सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रणयन किया जो आज तक उपेक्षित रहा है।

10.7.5 आलंकारिकता

रीतिकालीन चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण अलंकार साधन न रहकर साध्य बन गये। संभावनामूलक उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग इस काल के कवि ने खूब किया। इसका कारण यह है कि इसमें कल्पना की उड़ान और चमत्कार प्रदर्शन की काफी छूट रहती है। इस समय चमत्कारमूलक अलंकारों में से श्लेष, यमक और अनुप्रास का अधिक प्रयोग हुआ। बिहारी ने ऐसे चमत्कारमूलक अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है, लेकिन कभी-कभी ऐसे प्रयोगों के कारण काव्य में हास्यास्पदता आ जाती है। बिहारी और केशव ने चमत्कार की अतिस्पृहा से ऐसे हास्यास्पद प्रयोग किये हैं कि शोभासृष्टि के स्थान पर अशोभनियता पैदा हुई हैं कहीं-कहीं अलंकारों से बोझिल पंक्तियाँ भी मिलती है, परंतु कहीं कहीं अलंकारों के रूप में सुन्दर अप्रस्तुत विधान की योजना भी की गयी है। जहाँ कवि एक मात्र अलंकार के चमत्कार के पीछे दौड़ा है, वहाँ तो काव्य रूप की विकृति हो गयी है। 'बिहारी सतसई' को छोड़कर शेष काव्य में चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति कम ही मिलती है।

10.7.6 कवि-गौरव के अभिलाषी

रीति की सुनिश्चित परिपाटी के अनुकूल रचना करते हुए भी रीतिसिद्ध कवियों ने लक्षण ग्रंथों की रचना नहीं की क्योंकि इन्हें कविगुरु, कवि शिक्षक या आचार्य बनने का प्रचलित रोग नहीं था। ये कवि गौरव के अभिलाषी थे, कवि गुरु, कवि शिक्षक या काव्याचार्य बनने के नहीं। इनकी दृष्टि में कवित्व शक्ति के निदर्शन द्वारा काव्यरचना के पुनीत क्षेत्र में वैशिष्टय लाभ करना अधिक श्रेयस्कर था। इसके बजाय कि कवि शिक्षा की साधारण पाठ्यपुस्तकें लिख कर रीति का आचार्य कहलाता। इनमें कवित्त्व की स्पृह भी थी। ये कवि होना अधिक सम्मान की बात समझते थे। इसी कारण इनका काव्य अधिक सरस और मार्मिक बन पड़ा है। उक्तियाँ चमत्कार से पूर्ण हैं, रीति की पद्धति से संयुक्त भी।

10.7.7 मुक्तक शैली का ग्रहण

शृंगार की सुन्दर, सरस रचना प्रस्तुत करने में ये रीतिसिद्ध कवि संस्कृत की शृंगार की मुक्तक परम्परा से प्रभावित है। हाल की 'गाथा शप्तशती' अमरुक कवि के 'अमरुक शतक', गोवर्धन की 'आर्या सप्तशती' और

भर्तृहरि के 'शृंगार शतक' का रीतिसिद्ध कवियों पर पूरा-पूरा प्रभाव है। संस्कृत और प्राकृत से होती हुई यह शृंगार मुक्तक परंपरा अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थों में भी प्राप्त होती है। बिहारी आदि काव्य-कवियों के शृंगारी मुक्तकों को इस परम्परा से थोड़ी- बहुत प्रेरणा प्राप्त हुयी। क्योंकि इन रचनाओं में एक तो लक्षणानुधावन का बंधन नहीं और ये कवि बंधन ढीला करके चलना भी चाहते थे। दूसरे इन मुक्तकों में जीवन के ऐहिक एवं भोगपरक पक्ष के चित्रण का आग्रह था, जो इनकी और समसामयिक रुचि के अनुकूल भी था। इस परम्परा का उद्देश्य ही शृंगार के रसात्मक मुक्तकों द्वारा चित्त को उत्फुल्लता प्रदान करना था। यही कार्य रीतिसिद्ध कवियों ने किया।

10.7.8 रीतिशास्त्रीय विषयों की मानसिक पृष्ठभूमि

रीतिशास्त्रीय विषयों की ही मानसिक पृष्ठभूमि होने के कारण इन कवियों ने भी नायिका भेद, ऋतु वन, बारहमासा, नखशिख आदि परम्परागत और शास्त्रकथित विषयों को काव्य के वर्ण्य के रूप में प्रचुरता से ग्रहण किया, परंतु उसमें अपनी नूतन गति का परिचय दिया। ये विषय ऐसे थे जिनपर स्वतंत्र ढंग से निजी अनुभव के बल पर काफी कुछ करने का अवकाश था। ये विषय रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध दोनो ही प्रकार के कवियों द्वारा उठाये गये, किन्तु भावनाओं एवं उद्भावनाओं की नूतनता रीतिसिद्ध काव्य में अधिक अभिव्यक्त हुई है।

10.7.9 अभिनव कल्पना विधान

रीतिसिद्ध कवि 'शास्त्रस्थिति सम्पादन' मात्र से सन्तुष्ट न होते थे। कभी ये अपने काव्य में शाब्दिक एवं आर्थिक अलंकारों की नयी चमत्कृति दिखलाते थे, तो कभी अभिनव कल्पना विधान एवं स्वतंत्र भाव-सृष्टि द्वारा नूतन ढंग का रस-संचार भी करते थे। कभी ये कविता में अपनी जिन्दगी के अनुभव भी उंडेल दिया करते थे। इसी में इनकी रचना की विशिष्टता है इनमें रीति है, चमत्कार भी, किन्तु स्वानुभूति और रस की व्यन्जना भी। रस-संचार के लिए ये काव्य कवि स्वानुभूतियों के सहारे अभिनव कल्पनाओं एवं उद्भावनाओं की सृष्टि कर काव्य में नवीनता और रमणीयता का संचार करते थे। संसार विषयक अपने अनुभव के सहारे भाव एवं सौन्दर्य-विधान की नयी सामग्री प्रस्तुत करने में ये कवि कुशल थे।

10.7.10 स्वतन्त्र कवि व्यक्तित्व

रीति ग्रन्थ लिखने वालों को लक्षणों से बाहर जाने की गुंजाइश न थी। परन्तु रीति सिद्ध कवि रीति से केवल संकेत ग्रहण करते थे और भाव एवं कल्पना का बंधान स्वतंत्र ढंग से भी करते थे। यही कारण है कि जहाँ ये लोग नवीन उद्भावनाएँ कर सके हैं, वहाँ रीतिबद्ध कवि अपनी रचनाओं में प्राय: नवीनता का वैशिष्टय नहीं ला सके हैं। बिहारी की रचनाओं के वैशिष्टय का यही कारण है। कवित्त, सवैया जैसे अधिक प्रचलित छन्दों को छोड़कर बिहारी ने दोहे को जो ग्रहण किया, वह भी इसी व्यक्ति-वैशिष्टय का सूचक है। उनके दोहों में जो सूक्ष्म कारीगरी है, वर्ण एवं नाद सौन्दर्य का विधान है, गहरी अर्थवत्ता और ध्वन्यात्मकता है, वह कोरी रीति प्रथा का अनुकरण नहीं। वह स्वतंत्र कवि अस्तित्व के विकास का विशाल प्रयास द्योतित करती है।

10.8 रीतिमुक्त या स्वच्छन्द काव्य धारा

रीतिकाल में रीति-साहित्य शास्त्रीय बन्धनों से जकड़ा हुआ था। इस युग के अधिकांश कवि काव्यशास्त्रीय परिपाटी पर चलकर काव्य रचना करते थे। राज दरबारों में इसी तरह के साहित्य का सम्मान था। इसीलिए अधिकतर साहित्यकार इसी धारा में बहते दिखाई देते हैं। कुछ कवि रीति के निर्वाह में भी अपनी प्रतिभा और अनुभूति को कुछ हद तक अभिव्यक्त करते थे। लेकिन इस युग में कुछ कवि ऐसे भी थे जो साहित्य की बाह्य रीतियों से मुक्त, अपनी अनुभूति की सही अभिव्यक्ति के धरातल पर विद्रोही थे। वे तत्कालीन साहित्य को रूढ़िबद्धता से अर्थात् 'रीति' से मुक्त करना चाहते थे इसीलिए वे 'रीतिमुक्त' कहलाये। ये कवि अपने को किन्हीं सीमाओं में न बाँध सके और एवं स्वतंत्र मार्ग पर पल पड़े। यह बन्धनमुक्त चलने का विद्रोहात्मक स्वर ही इन्हें स्वच्छन्द कवि के रूप में स्थापित करता है। इस स्वतंत्र मार्ग पर चलने का एक

कारण यह भी था कि ये उन्मुक्त चेतना के कवि थे। निजी, प्रेम तथा आत्मानुभूत वेदना का गायन करने वाले स्वतंत्र-चेतना सदैव ही परम्पराओं का मुख-मर्दन कर अपनी एक नई राह बनाते हैं। इसी कारण इन कवियों के मन में भी परम्परा-विद्रोह ने कुलाल भर दी। परिणाम यह हुआ कि इन कवियों की निडरता और स्वच्छन्दता ने रीतिबद्ध या रीतिसिद्ध कवियों के व्यक्तित्व तथा कृतित्व को भी आड़े हाथों लिया। उन्होंने उस कविता परिपाटी, रीति परम्परा तथा उनकी दृष्टि को भी अनुपयुक्त कहकर ललकारा। साथ ही रीतिबद्ध या रीतिसिद्ध कवियों को आश्रय देने वालों को भी अपनी तीखी अभिव्यन्जना का शिकार बनाया।'' आपको न चाहे ताके बाप को न चाहिए'' कहने वाले इन कवियों ने दरबारी आश्रय को ठोकर मार दी और काव्य के प्रति सम्मान भाव रखते हुए कहा कि—

''लोग है लागे कवित्त बनावत,

मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ऐसे कवियों को रीतिमुक्त और स्वच्छन्द प्रेम के उन्मत्त गायक स्वीकार किया है। रीतिमुक्त स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने काव्य में अपनी आत्मानुभूतियों का सहज उन्मुक्त प्रकाशन किया है। इसलिए इनके काव्य में जो ताजगी और आन्तरिकता मिलती है, वह रीतिबद्ध काव्य में नहीं। इन कवियों का भाव, भाषा प्रयोग और शैली-सभी दृष्टियों से रीति कवियों से पार्थव्य स्पष्ट है। रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने अपनी रचनाओं में स्वच्छन्द रूप से 'प्रेम की पीर की अभिव्यक्ति की। इन्होंने लक्षण तथा लक्ष्य ग्रन्थ नहीं लिखे। मुक्तक शैली में इन्होंने शृंगार, नीति, वीर तथा भक्ति की कविताएँ लिखी। इस धारा में घनानन्द, आलम, बोधा, ठाकुर, लाल, भूषण, सूदन, वृंद, गिरधर, दीनदयाल गिरि, सबलसिंह, खुमान, मुरलीधर, द्विदेव आदि के नाम महत्वपूर्ण है।

10.9 रीतिमुक्त काव्य की विशेषताएँ

यद्यपि 17वीं शताब्दी के साहित्य में रीति बद्ध काव्य प्रणयन की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बलवती होती गई, किन्तु इसके समानान्तर काल में रीतिमुक्त काव्यों की भी रचना हुई। इस काल में कुछ ऐसे भी कवि हुए, जिन्होंने रीति के बन्धन से मुक्त होकर साहित्य-सृष्टि की। इन्होंने केशव, मतिराम और चिन्तामणि के समान न तो कोई लक्षण ग्रंथ लिखा और न ही बिहारी की भाँति कोई रीतिबद्ध रचना लिखी। इन रीति-मुक्त कवियों की संख्या पचास से भी अधिक है। इनमें से कुछ कवि ऐसे है, जिन्होंने लक्षणबद्ध रचना नहीं की और वे अपने स्वच्छन्द प्रेम की पीर जनता को सुनाते रहे। इस वर्ग में घनानन्द, आलम, बोधा और ठाकूर आदि आते हैं। दूसरा वर्ग उन कवियों का है, जिन्होंने प्रबन्ध काव्य लिखे, जैसे लाल और सूदन आदि। तीसरे वर्ग में दानलीला ओर मान लीला आदि पर वर्णनात्मक प्रबन्ध-काव्य लिखने वाले आते हैं। जैसे-वृन्द, दीनदयाल गिरि और गिरधर दास आदि। पाँचवे वर्ग में ब्रह्मज्ञान, वैराग्य और भक्ति पर लिखने वाले कवि आते हैं। छठे वर्ग में वीरस के फुलकर पद्य लिखने वाले आते हैं।

इन उपरोक्त कवियों के काव्य में—(1) भाव-पक्ष की प्रधानता है। (2) इनकी शैली अलंकारों के अनावश्यक बोझ से भी आक्रान्त नहीं हुई है। (3) भाषा के क्षेत्र में भी ये लोग अधिक सफाई से उतरे हैं। (4) इनके काव्यों में सामाजिकता की घोर अवहेलना भी नहीं है, और न ही रुग्ण शृंगारिकता है। इनका शृंगार चित्रण अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ, संयत और स्वच्छ है। (5) इनके काव्य के मूल में स्वान्त: सुखाय की प्रेरणा काम कर रही है, अत: उसमें लोक-संग्रह की परिपुष्ट भावनाएँ है। (6) रीति-मुक्त धारा में शृंगारी कवियों का शृंगार चित्रण एक भिन्न पद्धति पर चला है।

10.9.1 स्वच्छन्द संयत प्रेम का निरुपण

रीतिमुक्त कवियों का प्रेम स्वच्छन्द और संयत है। उसे कहीं भी रीति के बंधे-बंधायें साँचों में ढालने का प्रयास नहीं किया गया है। उसमें भाव प्रवण हृदय की सच्ची अनुभूति है, कही भी कृत्रिमता नहीं और न ही

कही कोई छिपाव और दुराव है तथा काइयाँ और बाँकापन है। इनके प्रेम में शुद्ध हृदय का योग है। यह प्रेम उनकी आत्मा की पुकार है। रीतिबद्ध कवियों जैसा अतंरंग और बहिरंग सखियों का विधान रीतिमुक्त काव्य में नहीं। ये कवि प्रेम के स्वच्छन्द गायक है। इनके यहाँ रीति का विशेष आदर नहीं। अगर कही रीति का निर्वाह हुआ भी है तो परोक्षरुप से। इनका प्रेम एकनिष्ठ है, इसमें लोकापवाद की तनिक भी चिंता नहीं। इनके पास प्रेम की उदात्त अनुभूतियाँ है और उनका इन्होंने उदात्त रूप में वर्णन किया हैं

स्वच्छन्द प्रेम का अर्थ यह है कि इन्होंने विशुद्ध सौन्दर्यानुभूति प्रेरणा से जाति समाज एवं धर्म के बन्धनों की अवहेलना करते हुए, ऐसी नायिकाओं से प्रेम किया जो अन्य जाति एवं धर्म से संबंधित थी। आलम, घनानन्द, बोधा मूलत: हिन्दू थे, लेकिन उनकी प्रेमिकाएँ-आलम की शेख, घनानन्द की सुजान, बोधा की सुभान मुस्लिम थी। ऐसी स्थिति में इन्हें प्रेम के क्षेत्र में पर्याप्त संघर्ष करना पड़ा, तथा साहस एवं त्याग का परिचय देना पड़ा। मित्रों के उपहास, समाज के बहिष्कार, आश्रयदाताओं के विरोध को सहन करते हुए इन्होंने प्रेम के क्षेत्र में गंभीरता का परिचय दिया। बोधा अपनी प्रेयसी के लिए संसार के समस्त वैभव को दुत्कारते हैं। घनानन्द अपनी सुजान के लिए गाना गाते है, और आश्रयदाता के कोप को सहते है।

10.9.2 शृंगार के संयोग और वियोग पक्ष

वैसे तो इन कवियों ने शृंगार के उभय पक्षों का वर्णन किया है, किन्तु इनकी मनोवृत्ति वियोग पक्ष में अधिक रमी है। इनकी विरह विषयक धारणा अत्यन्त विलक्षण है। यहाँ संयोग में भी वियोग पीछा नहीं छोड़ता है। घनानन्द के शब्दों में–

"यह कैसी संयोग न जानि परै जु वियोग न क्यौं हू। बिछोहत है?"

वस्तुत: इन कवियों का प्रेम-तृषा सदा बढ़ती रहती है, चाहे तो मिलन यामिनी हो और चाहे विरह की अमावस्या। इन कवियों में प्रेम की अथाह पीर है ओर उस पीर को पहचानने के लिए हृदय अवेक्षित है। घनानन्द के शब्दों में—

"समुझै कविता धन आनंद की, हिय आँखिन प्रेम की पीर तकी।"

इनकी प्रेम की पीर सूफियों से प्रभावित जान पड़ती है। इस धारा के प्राय: सारे कवि प्रेम के उपासक है। इनकी स्पष्ट घोषणा है—आनन्द अनुभव होत नहिं बिना प्रेम जग जान।

कै वह विषयानन्द कै प्रछानन्द लखन।।"

इन्होंने कृष्ण के सगुन-सलोने रूप को अपने काव्य का विषय बनाया है, अत: इन्होंने राधा और कृष्ण के संयोग पर के प्रेम की भी बड़ी मनोहर और मार्मिक झाँकियाँ प्रस्तुत की है लेकिन कहीं भी मिलन पक्ष के असंस्कृत और अपरिष्कृत चित्र नहीं उतारे।

10.9.3 प्रेम का लौकिक

रीतिमुक्त कवियों का प्रेम उनके जीवन का प्रेम होने के कारण लौकिक है। उसमें राधा और कृष्ण के नाम डालकर प्रेम के अर्थ को कमजोर नहीं किया गया है। बिहारी का दोहा–'मेरी भव-लाहा हरो राधा नागरि सोइ' में न तो ठीक ढंग से राधा के तन की छवि उभरती है और न ही उनकी भक्ति, किन्तु घनानन्द की मीठी मुस्कान से रस निचुड़ता है और उसके चलने की अदा में अनंग के वेग की वर्षा होती है। रस में प्रेम भी साफ झलकता है और वर्णन भी प्रेम की रूगड़ता या कमजोरी इसमें नहीं है, और न ही राधा और कृष्ण का नहाना ही बनाया गया है।

10.9.4 व्यक्तिपरकता

इस काव्यधारा में प्रेम की अभिव्यक्ति पूर्णतया व्यक्तिपरक है। यह किसी सामूहिक रीति या पद्धति पर आधारित नहीं है। इसीलिए इन कवियों के प्रेम में आत्मनिवेदन का भाव है प्रेम प्रिय के प्रति समर्पित है। इनका प्रेम वासना से मुक्त है।

10.9.5 भक्तिभावना

वस्तुत: इस श्वास के सभी कवियोम को भक्त कवि नहीं कहा जा सकता। इन पर भी यही कथन चरितार्थ होता है कि—

'आगे के कवि रीझि है तो कविताई,

न तु राधिका कन्हाई सुगरिन का बहाने है।''

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद जी को ऐसे कवियों की रचनाएँ भक्तिपरक लगती है जिन्होंने रीतिबद्ध पदार्पण किया है। यहाँ इन्हें उन्मुक्त भक्त कवि कहा जा सकता है, लेकिन इस धारा के सभी कवियों को नहीं। रसखान और घनानन्द को उक्त कोटि में रखा जा सकता है। इनकी भक्ति में साम्प्रदायिकता और संकीर्णता की भावनाएँ नहीं है। उन्होंने अनेक देवी, देवताओं के प्रति उदार आस्था प्रदर्शित की है।

10.9.6 प्रकृति-चित्रण

वैसे तो हिन्दी साहित्य के प्रथम तीन कालों में प्रकृति-चित्रण प्राय: उपेक्षित रहा हैं। रीतिकाल में प्रकृति सजीव रूप में चित्रित नहीं है। इन कवियों ने प्रकृति को उद्दीपन रूप में ही चित्रित किया है। सेनापति की रचना में प्रकृति कही-कही उद्दीपन के बन्धन से मुक्त अवश्य मिल जाती है। गुमान मिला का कृष्णचन्द्रिका नामक प्रबन्ध-काव्य इस दृष्टि से विशेष ध्यान देने योग्य हैं। इसमें कवि ने संस्कृत कवियों के समान प्रकृति के खुले दर्शन कराये है। गुमान के भाई खुमान का अप्रकाशित कृष्णायन भी इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है। द्विनदेव प्रकृति—चित्रण में स्वच्छन्द दृष्टि लेकर बाहर निकले हैं। 'विरह-वारीश' में बोधा ने प्रकृति-वर्णन कुछ तो शास्त्र-बद्ध और कुछ स्वच्छन्द वृत्तिबद्ध रहा है।

10.9.7 सांस्कृतिक झॉकी

स्वच्छन्द दृष्टि के कारण इस धारा के कवि सांस्कृतिक बिम्ब को प्रस्तुत करने में समर्थ हो चुके हैं। ये कवि देश के आनन्दोल्लाय में भी ठुकार्ने अपनी सांस्कृतिक रचनाओं में बुंदेलखंड के सांस्कृतिक जीवन का वैभवमय चित्र खड़ा किया है। इन्होने अखतीज, गजनौर, होली आदि के बड़े ही भावुक चित्र प्रस्तुत किये हैं। नरोत्तमदास है स्वनाभों में उस समय का हीन-दीन भारत मुखरीत हो उठा है। रीति कवि ने सामूहिक क्रीड़ामों-सूला तथा होली आदि में विलासिता के स्वर को उच्च बनाये रखा है। इसमें आँख मिचौनी और चोर मिठीचनी जमकर वर्णन है, क्योंकि इसमें स्पर्षाजन्य कामात्मक सुख की उपलब्धी अधिकाधिक संभव थी।

10.9.8 काव्य-पद्धति

इन कवियों ने रीतिकाल के प्रचलित कवि समयों और रुढ़ियों को अपनाया। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त सभी कवियों में नेत्र व्यापार संबंधी उक्तियाँ समान रूप से पाई जाती है। रीति बद्ध कवियों के समान रीति मुक्त कवि रसखान, आलम ठाकुर और घनानन्द में खंडिता की उक्तियाँ मिलती है, क्योंकि ज्यो कवि दरबारी थे, उन्हें उर्दू और फारसी की काव्य-रचना से होड़ लेनी थी। उन्होंने उर्दू कविता की माशूक की बराबरी में खण्डिता को पेश किया। स्वच्छन्द कवियों ने इस पद्धति का ग्रहण इसलिए किया कि प्रेम-वैषम्य के लिए उन्हें भी भारतीय काव्यपद्धति में यही बात अनुकूल दिखाई पड़ी। इन कवियों ने खण्डिता के हृदय को दिखलाने का प्रयत्न किया। विपरीत के कुत्सित चित्र प्राय: इन कवियों में नहीं मिलते। बोधा में कहीं-कहीं पर कुछ लाजारु रंग-दंगल मिलता है। घनानन्द और ठाकुर आदि पर भी फारसी काव्य-पद्धति की रंगत देखी जा सकती है।

10.9.9 मुक्तक शैली

इन कवियों में मुक्तक शैली का बोलबाला रहा, किन्तु फुटकर रूप में प्रबंध रचनाएँ भी होती रही। आलम ने 'माधवानल-कामकन्दला' 'सुदामा-चरित्र' 'श्याम-स्नेही' नामक तीन प्रबन्ध काव्य प्रस्तुत किये। बोधा ने भी 'विरह-वारीश' नामक प्रबन्ध-काव्य प्रस्तुत किया। अन्य कई प्रबन्ध रचनाएँ इस काल में हुई।

10.9.10 छन्द तथा अलंकार

इस धारा में प्राधिकारिता, कवित्त, सवैया और दोहा जैसे छन्दों का प्रयोग किया गया। यद्यपि बीच-बीच सेम छप्पय, बरवै, हरिपद आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है, किन्तु सभी रीति-कवियों की वृत्ति प्राधिकर दोहा, सवैया और कवित्त में रमी रही। रीतिमुक्त धारा के कवियों ने अलंकारों का प्रयोग अपने प्रकृत रूप किया। इनके अलंकार कहीं भी पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए नहीं आये बल्कि इनके द्वारा हृदय की सूक्ष्म वृत्ति के द्योतन के लिये सहायता मिली है। इनके यहाँ अलंकार साधन रूप में आये हैं, न कि साह्य रूप में घनान की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—'नेह भीत्री बातें रसना पै उर आँच लागै? यहाँ विरोधाभास अलंकार की सुंदर छटा है

10.9.11 ब्रजभाषा

इन कवियों ने साफ-सुथरी भाषा का प्रयोग किया है। प्रेम के वर्णन की स्वच्छन्द पद्धति अपनाने कारण रीतिमुक्त कवियों की भाषा और उसकी व्यंजना रीतिबद्ध कवियों से भिन्न है। रीतिबद्ध कवियों बिहारी, मतिराम और पद्माकर को छोड़कर दूसरे कवियों में भाषा की सफाई के दर्शन नहीं होते। भूषण औ देव आदि ने तो स्वेच्छानुसार शब्दों का अंग-अंग दिया है। इनकी भाषा में प्रादेशिकता का पुट बना रहा। परं रीतिमुक्त कवियों में न तो भाषा के अंग-अंग की प्रवृत्ति है और न ही प्रादेशिक पुट। रसखान और घनानन्द तो ब्रजभाषा का ऐसा प्रयोग किया है। जिसे ब्रजभाषा का साहित्यिक, परिनिष्ठित रूप स्वीकार किया जा सकर है।

इन कवियों की भाषा में उक्ति-वैचित्र्य, लाक्षणिकता, लोकोक्तियों और मुहावरों का भी सुन्दर प्रयो हुआ है। घनानन्द की भाषा की लक्षणिकता विशेष हृदयग्राही है। ठाकुर ने लाकोक्तियों का अत्यंत सुन्दर प्रयो किया है।

संदर्भित ग्रन्थ

हिन्दी का गद्य साहित्य	—	रामचन्द्र तिवारी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य की भूमिका	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
साहित्येतिहास आदिकाल	—	सुमन राजे
हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास	—	बच्चनसिंह
हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन	—	विद्यानिवास मिश्र
हिन्दी साहित्य का अतीत भाग 1	—	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
साहित्य सहचर	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

बोध प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. रीति बद्ध काव्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए?
2. रीति सिद्ध काव्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए?
3. रीति मुक्त काव्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए?

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. 'रीतिकाल मुगलों के वैभव के कारण आला, बाला और प्याला के गुण से युक्त था।' इस विषय पर टिप्पणी लिखिए।
2. प्रवृत्ति के आधार पर रीतिकाल का वर्गीकरण कीजिए।
3. रीतिकाल के कवि कर्म और आचार्य कर्म में समन्वय स्थापित कीजिए।
4. 'नारी के प्रति रीतिकालीन काव्य कवियों की दृष्टि में भोगवादी रहा।' इस बात से आप कहाँ तक सहमत हैं?
5. 'रीतिकाल में ब्रजभाषा में निखार, माधुर्य और प्रांजलता का समावेश हुआ।' इस पक्ष में अपने विचार प्रकट कीजिए।
6. शृंगार रस के संयोग और वियोग पक्ष से आप क्या समझते हैं? बिहारीलाल के पदों द्वारा प्रकट कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. रीतिकालीन काव्यकारों को डॉ० भगीरथ मिश्र ने क्या कहा है?
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल को किन नामों से संबोधित किया है?
3. रीतिकाल के कवित्व और आचार्यत्व के मिश्रण के दुष्परिणामों की ओर संकेत करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने क्या टिप्पणी की है?
4. रीतिंकाल में कवियों द्वारा अपने आश्रयदाता राजाओं तथा सामन्तों की विलासिता को तुष्ट करने के लिए किस प्रकार की कविताएँ लिखनी पड़ीं?
5. रीतिकाल में वीर रस में कविता लिखने वाले कवियों के नाम लिखिए।

इकाई (Unit)

11

रीतिकाल का परिवेश और आधार

संरचना

11.1 उद्देश्य
11.2 प्रस्तावना
11.3 रीति और रीतिकाव्य
11.4 रीतिकाल का नामकरण
11.5 रीतिकाल की सीमा निर्धारण
11.6 रीतिकालीन कविता की पृष्ठभूमि
11.7 दरबारी पृष्ठभूमि
11.8 सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
11.9 सामाजिक पृष्ठभूमि
11.10 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
11.11 चित्रकला
11.12 रीतिकालीन काव्य-भाषा का आधार
11.13 रीतिकालीन काव्य का आधार
11.14 काव्य शास्त्रीय आधार
11.15 रीतिकालीन परिवेश
11.15.1 रीतिकालीन सामाजिक परिवेश
11.15.2 रीतिकालीन सांस्कृतिक परिवेश
11.15.3 रीतिकालीन राजनीतिक परिवेश
बोध प्रश्न

11.1 उद्देश्य

- रीतिकाल की पृष्ठभूमि के पीछे सक्रिय सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक वास्तविकता को समझाना
- रीतिकालीन काव्य का आधार।
- रीतिकालीन काव्य शास्त्रीय आधार।

11.2 प्रस्तावना

हर युग की परिस्थितियाँ कविता के रूप और अर्थ का गठन करती हैं। परिस्थितियों की भिन्नता के कारण ही कविता का स्वाद भी बदल जाता है। रीति युग की कविता का मिजाज समझने के लिये आवश्यक है कि हम उस युग की पृष्ठभूमि को समझे। रीति युग की कविता में एक खास प्रकार का सौंदर्य है। यह सौंदर्य जीवन के त्रुति ऐहिक दृष्टिकोण के कारण विकसित हुआ है। रीति कविता के साथ-साथ इस युग की

सांस्कृतिक उपलब्धियों की चर्चा हम इस इकाई में करेंगे। विभिन्न सांस्कृतिक उपलब्धि और उस युग की कविता के बीच के अत: सूत्रों को भी इस इकाई में खोजने का प्रयत्न करेंगे।

इस पाठ्यक्रम के खण्ड-3 भक्तिकालीन साहित्य में आप तत्कालीन काव्यप्रवृत्तियों का अध्ययन कर चुके हैं। हिन्दी साहित्य का रीति काल भक्तिकाल के बाद शुरू होता है अत: इस काल खंड में जिन काव्यप्रवृत्तियों का प्रवर्तन हुआ उन पर पूर्ववर्ती काव्यधाराओं का पर्याप्त प्रभाव पाया जाता है। भक्तिकाल की कृष्णभक्ति में दरबारी वातावरण और फारसी साहित्य के प्रभाव से लौकिक शृंगार से परिणत हो गयी।

11.3 रीति और रीतिकाव्य

रीति शब्द का अर्थ है—परिपाटी, मार्ग, प्रणाली, पद्धति आदि। रीति शब्द 'रीड़' धातु में प्रत्यय के योग से बना है। रीति का सर्वप्रथम प्रयोग आचार्य वामन ने किया। आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा माना। आचार्य वामन के अनुसार रीति का अर्थ है—विशिष्ट पद रचना अर्थात् विशिष्ट पदों की रचना रीति कहलाती है और काव्य में यह विशिष्टता गुणों के कारण आती है। कहने का तात्पर्य है कि काव्य-सृजन की शैली विशिष्ट का नाम रीति है।

हिंदी साहित्य में 'रीति' का प्रयोग एक विशेष प्रकार की चमत्कारिक रचना के रूप में हुआ है। प्रत्येक कवि की अपनी अपनी अभिव्यंजना शैली होती है। इस अभिव्यंजना शैली में जितनी अधिक कुशलता विदग्धता होगी उतनी ही वह अभिव्यक्ति काव्य स्वरूप के अधिक निकट होगी। इस प्रकार कवि का वाक-चातुर्य, अलंकार, वक्रोक्ति, शब्द चयन और गुण सभी रीति में समाहित हो जाते हैं। अत: रीति शब्द का प्रयोग हिंदी साहित्य में एक विशेष काव्य प्रवृत्ति के लिए हुआ है। रचना सम्बन्धी नियमों से युक्त इस विशिष्ट काव्य प्रवृत्ति के आधार पर लक्षण ग्रंथों अथवा रीति काव्य की रचना हुई।

11.4 रीतिकाल का नामकरण

इस काल के नामकरण को लेकर विद्वानों में वैमनस्य है। मिश्रबधुओं ने इस काल को अलंकृत काल, पंडित रमा शंकर शुक्ल ने कला काल आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'शृंगारकाल' डॉ० रामकुमार वर्मा ने -कला काल' तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे 'रीतिकाल' की संज्ञा दी है। लेकिन सभी नामों में रीतिकाल को सर्वाधिक महत्व मिला हैं आचार्य शुक्ल से लेकर बाबू श्यामसुंदर दास, रामकुमार वर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी और नगेंद्र जैसे विद्वानों ने इसे स्वीकार किया है। फिर भी इस काल के सभी नामों की समीक्षा समीचीन होगी।

सर्वप्रथम मिश्रबंधुओं ने अपने ग्रंथ 'मिश्रबंधु विनोद में विवेच्य समय को 'अलंकृतकाल' कहा। इस सम्बन्ध में उनका कहना था कि इस युग में कविता को अलंकृत करने की परिपाटी अधिक थी। उनके इस तर्क में विशेषबल नहीं है क्योंकि इस युग की कविता का केवल अलंकृत मान लेने से काव्य के अन्य अंग रसभाव आदि उपेक्षित रह जाते हैं।

डॉ रमा शंकर शुक्ल रसाल और रामकुमार वर्मा ने इस काल को 'कला काल' कहा है। सम्भवत: ऐसा उन्होंने इसलिए कहा क्योंकि इस समय का कला पक्ष-भाषा, छन्द, अलंकार आदि सभी रूपों में समृद्ध एवं श्रेष्ठ दिखाई पड़ता है। किन्तु वास्विकता तो यह है कि इस काल का रीतिमुक्त काव्य भाव पक्ष की दृष्टि से भी श्रेष्ठ था। और फिर कला काल नाम के अंतर्गत लक्षण ग्रंथ भी समाविष्ट नहीं हो पाते।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल को शृंगार काल नाम से अभिहित किया। उनके अनुसार शृंगार उक्त काल की प्रमुख प्रवृत्ति थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी हिंदी साहित्य का इतिहास में इस नाम का संकेत दिया है। वास्तव में शृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता शृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई शृंगार काल कहे तो कह सकता है। "इसमें संदेह नहीं है कि इस युग में अधिकांश रचनाएँ शृंगारिक ही हैं। परंतु इन शृंगारिक रचनाओं का प्रेरक तत्व कामवासना नहीं

अपितु धन है जो विलासी आश्रदाताओं की रुचि के अनुरूप काव्य रचना करके ही प्राप्त किया जा सकत
इस युग में ऐसी कवि भी रहे जो अपने इस कर्म से असंतुष्ट रहे अन्यथा भिखारीदास यह क्यों कहते-

आगे के कवि रीझिहै तो कविताई न तो
राधिका कन्हाई सुमिरन का बहानौ है।

इस काल को श्रृंगार काल कहने से अव्याप्ति दोष होगा क्योंकि इस दशा में वीर, भक्ति, नीति औ श्रृंगारेत्तर रचनाएँ इस की परिसीमा में नहीं आ सकेंगी।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उत्तर मध्यकाल को 'रीति काल' नाम दिया। उन्हें इस काल के साहित्य व्यापक रूप से रीतिपद्धति पर लिखने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हुई। संस्कृत काव्यशास्त्र में वामन ने सर्वप्र 'रीति' शब्द का प्रयोग किया। रीति शब्द का अर्थ है—विशिष्ट पद रचना। इस समय के काव्य रचना की विशेष प्रणाली थी। पहले वे काव्य रचना की रीति अर्थात् लक्षण समझाते थे और उसके बाद लक्षणों उदाहरण रचते थे। लक्षणोदाहरण पद्धति पर काव्य रचना करने वाले ये कवि रीतिबद्ध कवि कहलाए। रीतिसि कवियों ने भी अपने लक्ष्य ग्रंथों में रीति परम्परा का निर्वाह किया। रीतिमुक्त कवियों की रचनाएँ विशिष्ट रचना के अतंर्गत आंकी जा सकती है। इस प्रकार इस काल के साहित्य में रीति कहीं न कहीं दृष्टिगत होती है

उत्तर मध्यकाल के सभी नामों में 'रीति काल' सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इस सम्बन्ध में डॉ. भागी मिश्र का यह कथन उपयुक्त प्रतीत होता है 'कला काल कहने से कवियों की रसिकता की उपेक्षा होती श्रृंगारकाल कहने से वीर रस और राजप्रशंसा की। "रीति काल कहने से प्राय: कोई भी महत्वपूर्ण वस्तु विशेषता उपेक्षित नहीं होती और प्रमुख प्रवृत्ति सामने आ जाती है। यह युग रीति पद्धति का युग था। यह धार वास्तविक रूप से सही है।

11.5 रीतिकाल की सीमा निर्धारण

साहित्य में किसी प्रवति का न तो अविर्भाव होता है न पूर्णत: तिरो भाव। उसमें एक प्रवेशित प्रारंभ हो है। उसका उत्थान होता है फिर धीरे-धीरे अवसान। रीतिकाव्य का सूत्रपात तो बहुत पहले हो चुका था। जिसव प्रमाण कृपाराम की हिततरंगिणी से मिलता है, किन्तु उसका विधिवत् प्रवाह चिंतामणि से माना जाता है। आचा रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के मध्यकाल का विस्तार सं० 1375-1900 वि० तक माना है। इसे पुन: द खंडों में विभाजित किया गया—पूर्व मध्यकाल अर्थात् भक्तिकाल (सं० 1375 से 1700 वि) और उत्त मध्यकाल अर्थात् रीतिकाल (स० 1700 से 1900 वि) वास्तव में संपूर्ण मध्यकाल की साहित्य प्रवृत्ति भक्ति और श्रृंगार परक रही है। पहले भक्ति प्रमुख थी और श्रृंगार गौड़ा, बाद में श्रृंगार प्रमुख हो गया और भक्ति गौ रीतिकाल के नामकरण और सीमा निर्धारण की विस्तृत चर्चा हम पाठ्यक्रम-6 के खंड-I की पहली इका काल विभाजन और नामकरण में कर चुके हैं। अत: यहाँ हमने रीतिकाल के नामकरण पर तथा सीमानिर्धारण पर केवल संकेत भर दिया है।

11.6 रीतिकालीन कविता की पृष्ठभूमि

पूर्वमध्यकाल का काव्य लोकवादी रहा है। क्योंकि भक्त कवि प्राय: सामान्य जन के बीच अपनी भक्ति भावना का प्रचार करते थे। उनमें लोक मंगल और रंजन की प्रवृत्ति प्रधान थी। किंतु रीतिकालीन कविता सामान्य जन से कटकर राजदरबारों में आ गयी। परिणामत: वह जन-साहित्य न होकर गोष्ठी साहित्य हो गयी। गोष्ठी साहित्य में जीवन का गतिशील रूप नहीं रहता बल्कि उसका स्थिर रूप ही प्रस्तुत होता है। साहित्य अपने परिवेश से प्रभावित होता है। रीतिकालीन कविता देशी या विदेशी राजाओं नवाबों के दरबार में लिखी गयी इसलिये उस पर तत्कालीन सामंती परिवेश का पूरा प्रभाव पड़ा। रीतिकालीन कविता की निम्नलिखित पृष्ठभूमियों का विवेचन हम यहाँ संक्षेप में कर रहे है।

11.7 दरबारी पृष्ठभूमि

हर युग में कवि अपने आश्रम के लिये राज सभाओं में जाने को बाध्य होता है। क्योंकि उसे वहीं पोषण मिलता है। प्राचीन काल के सम्राटों की सभाओं में विद्वान, कवि, गायक, विदूशक, इतिहास पुराण के ज्ञाता आदि रहते थे। इन्हें आश्रम और सम्मान देकर आश्रम दाता भी यश और सम्मान प्राप्त करता था। विक्रमादित्य और भोज ऐसे ही गुणज्ञ शासक थे। किंतु धीरे-धीरे राजाओं की गुणज्ञता क्षीण होने लगी और उनके दरबारों में रूढ़िबद्धता बैठने लगी भाव की गंभीरता और व्यापकता के स्थान पर काव्यों का अंलकरण और प्रदर्शन की प्रवत्ति ही शेष रह गयी।

जब शासन-व्यवस्था सुदृढ़ होती है। देश में समृद्धि और शांति होती है। तब अन्य कलाओं के साथ काव्य का भी उत्कर्ष होता है। सम्राट हर्षवर्द्धन के शासन काल, आठवीं शताब्दी विक्रमी तक देश में शांति, सुव्यवस्था दृढ़ थी तो काव्य और कलाओं का पूर्ण उत्कर्ष हुआ किन्तु उसके बाद पश्चिमोत्तर सीमांत से विदेशियों के आक्रमण प्रारम्भ हो गये और देश के उतर भू-भाग में अराजकता छा गयी। यह स्थिति न्यूनाधिक अकबर के समय तक बनी रही। मुगल दरबार में संगीतज्ञ, शिल्पी चित्रकार और विविध भाषाओं के कवि रहते थे। नरहरि, तानसेन, गंग, बीरबल आदि अकबर के अनेक दरबारी कवि थे किन्तु उसके बाद औरंगजेब की कटटरता के कारण कवि-कलाकार मुगल दरबार से विदा हो गये।

जो स्थिति मुगल दरबार की थी वही स्थिति उत्तर भारत के सभी राज दरबारों में थी। अकबर के प्रभाव से देशी राजाओं में भी सुरा-सुंदरी का प्रचलन बढ़ा। रीतिकालीन कवि इस दरबारी वातावरण से पूरी तरह प्रभावित हुए। रीतिबद्ध कवि तो उसके अभिन्न अंग थे ही रीतिमुक्त कवि भी उससे अछूते न रहे। बाद में अपनी स्च्छंदशक्ति के कारण ये कवि दरबारों से मुक्त होकर स्वतंत्रतापूर्वक काव्य-रचना में लगे।

11.8 सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

रीतिकालीन कविता जिस संस्कृति की उपज थी, उस पर तत्कालीन दरबारों का गहरा प्रभाव पाया जाता है। दरबारों में ही संगीतकला, चित्रकला और स्थापत्यकला का पोषण हो रहा था। मुगल दरबारों में फारसी भाषा ही प्रचलित थी, उनकी कलात्मक अभिरुचि ईरानी शैली से प्रभावित थी। हिन्दु दरबारों में जिन कलाओं को संरक्षण मिला उन पर भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का प्रभाव देखा जा सकता है, किन्तु उन पर धीरे-धीरे ईरानी शैली अपना रंग चढ़ाती गई।

11.9 सामाजिक पृष्ठभूमि

जब देश में पौरुषहीन विलासिता और वैभव के प्रदर्शन की प्रवृत्ति व्याप्त हो तब सामाजिक सुव्यवस्था कैसे रह सकती है? समाज में शासक और शासित के बीच खाई बढ़ती जा रही थी। शासनतंत्र निरंकुश और शोषक बन गया था। शोषित प्रजा हर प्रकार के अत्याचार को सहने के लिए विवश होती जा रही थी। ऐसी दशा में अपने भाग्य का ही दोष मानकर उसने संतोष कर लिया था।

कवि–कलाकार उत्पन्न होते थे प्रजा–वंर्ग में, किन्तु उन्हें अपनी कला के समादर और अपनी आजीविका के लिए सामन्त या रांजन्य वर्ग की शरण लेनी पड़ती थी। ऐसी स्थिति में वे अपने आश्रमदाता की रुचि के अनुकूल अपनी कला को ढालते थे। सामान्य जन में न तो कला की परख थी न ही कलाकार को पुरुस्कृस्त करने की क्षमता उसे तो परिवार का पेट भरना ही कठिन था। सारा जीवन घोर परिश्रम में ही बीत जाता था। इनकी भी रुचि नागर होती थी। ये अशिक्षित ग्रामीणों को गँवार समझते थे जिनकी गणना अरसिको में होनी थी।

वे न इहाँ नागर, बठी जिन आदर तो आब।
फुल्यो अनफूल्यौ भयौ, गँवई-गाँव, गुलाब।।

11.10 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

औरंगजेब की मृत्यु के बाद देश की केंद्रीय सत्ता का प्रभाव कम होने लगा। जगह-जगह सामंत ओ शक्ति को बढाने लगे। सामंत, बादशाहों की जीवन पद्धति का भी अनुसरण करने लगे। हरमखाना में ह स्त्रियाँ पुरुष के मनोरंजन के लिए रखी जाने लगी वस्तुत: सामंत, जीवन के हर पक्ष में बादशाह की नकल क लगे सत्ता विकेंद्रीकरण के कारण जीवन दृष्टियों का भी विकेंद्रीकरण हुआ, जिस जीवन दृष्टी को सामंतवा अर्जित किया था सामंतवादी जीवन मूल्यों ने प्रदर्शन और विलासिता को बढ़ावा दिया।

रीतिकालीन एक वर्ग विशेष की प्रवृत्तियों को ही प्रतिफलित करता है। जिस समय रीतिकाल का अ हुआ उस समय सम्राट ओर सामंत वैभव के प्रदर्शन और विलासिता में अपने कर्तव्यों को तिलांजलि दे चुके शाहजहाँ के पश्चात उसके बेटों में सत्ता के लिऐ संघर्ष शुरू हो चुका था। हिन्दुओं पर तरह-तरह के अत्या हुए, इसके परिणामस्वरूप सिखों, मराठो, जाटो आदि ने विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। उसका अधिक स विद्रोहियों से युद्ध करने में व्यतीत हुआ। उसका अधिक समय विद्रोहियों से युद्ध करने में व्यतीत हुआ। प्रजा राजनीतिक दुरावस्था से दुखित थी।

दुसह दुराज प्रजान कौं, क्यों न बठै दुख-दुदु।
अधिक अंधेरौ जग करत मिलि मावस रबि-चंदु।।

शासन व्यवस्था के शिथिल होने और आंतरिक कलह के कारण विदेशियों के आक्रमण शुरू हो ग नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली ने मनमाने ढ़ंग से कत्लेआम किया और प्रजा को लूटा। उसके प्रतिरोध क्षमता न तो दिल्ली के बादशाह में थी और न देशी राजाओं में ही। यही दशा अंग्रेजों से युद्ध करते समय बक्स में हुई जिसमें शाह आलम को बुरी तरह पराजित होना पड़ा और देश का पूर्वी भाग अंग्रेजों के अधिकार में गया। शासक वर्ग में शड़यंत्र और स्वार्थपरता व्याप्त थी।

11.11 चित्रकला

रीतिकाल में राजपूत शैली और मुगल शैलीयों में चित्रकार, की आंतरिक ऊर्जा के स्थान पर परम्प निर्वाह की प्रवशत्ति ही प्राप्त होती है। चाहे ये चित्र नायक नायिका भेद से संबद्ध हो चाहे राग-रागनियों से फिर पौराणिक आख्यानों से, सब में विलासिता और प्रदर्शन की ही प्रमुखता होती है। पौराणिक आख्यानों व्यक्ति चित्रों के आलेख में कोई मौलिकता या सजीवता नहीं मिलती।

11.12 रीतिकालीन काव्य भाषा का आधार

रीति काल में जिस प्रकार काव्य के वर्ण्य विषय पूर्ववर्ती भक्तिकाल से लिए गये उसी प्रकार काव भाषा-बृजभाषा भी ली गयी। रीतिकाल को डॉ० रसॉल ने 'कलाकाल' कहा है। उनका कथन इस दृष्टि स उपयुक्त है कि इसी काल में भाषा-शैली को कलात्मक सज्जा प्रदान की गयी। मुगल दरबार में कलात्मक अभिव्यक्ति के विशेष गौरव प्राप्त था। यही स्थिति देशी राज-दरबारी की थी। वहाँ के दास-दासी भी अलंकृत शैली का प्रयोग करते थे ऐसी स्थिति में कवियों की शिल्प सम्बन्धी सजकता स्वभाविक थी।

रीतिकाव्य की भाषामूलत: ब्रजी थी। किंतु उसमें अन्य भाषाओं के शब्दों का ग्रहण उदारतापूर्वक किय गया। इसका कारण यह है कि चिरकाल से मध्यदेश की भाषा ही उत्तर देश की साहित्य भाषा बनी हुई थी शौरसेनी प्राकृत में प्रभूल साहित्य की रचना हुई। इस युग के साहित्य में शैरसेनी की बेटी बृजभाषा में गुजराती पजांबी, मैथिली, अवधी, बुंदेलखेडी, खडी बोली और संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, अरबी-फारसी में शब्दों का मुक्त रूप तक उपयोग में पाया जाता है।

भक्ति काल की अपेक्षा रीतिकाल में ब्रजभाषा का शब्द-भंडार अधिक समृद्ध और वैविध्यपूर्ण हुआ। आचार्य भिखारी दास ने 'तुलसी-गंग, के विविध भाषा प्रयोग की चर्चा की है रीतिकाल के कवियों की भाषा भी गुण की दृष्टि से किसी से कम नहीं है। उस समय भी शब्द रूप, क्रिया प्रयोग, वाक्य—विन्यास, में त्रुटियाँ प्राप्त होती है। पर उन्होंने ही मतिराम बिहारी पद्माकर और घनानंद की भाषा और शैली की प्रशंसा भी की है। रीतिकाल के कवि मतिराम, देव बिहारी, घनानंद और पद्माकर जैसे रस सिद्ध कवियों ने सवैया, कवित्त और दोहा छंदों में जिस प्रकार प्रौढ़ और प्रांजल भाषा के द्वारा प्रयुक्त किया है उसके समक्ष भक्तिकाल के शीर्षस्थ कवि तुलसी की पदावली अनगढ़ सी लगती है।

रीतिकवियों ने शैली को भी ले लिया। जिस कारण अनेक कवियों पर दूर की कौडी लाने, अरुचिकर और अश्लील वर्णन करने का आरोप लग गया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि भाषा और अभिव्यंजना शिल्प की दृष्टि से रीतिकाव्य की उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण है। इसलिए भारतेन्दु युग तक इसका वर्चस्व बना रहा।

11.13 रीतिकालीन काव्य का आधार

पहले 'रीतिकालीन कविता की पृष्ठभूमि' में तद्यगीन दरबारी, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों का परिचय दिया जा चुका है। उस युग के कवियों ने प्रेरणा ली तथा साहित्य रचना की और उन्मुख हुए। देखा जाए तो रीतिकालीन कविता में जो प्रविष्टियाँ दृष्टिगत होती है उनका सूत्रपात बहुत पहले ही हो चुका था। आइए, रीतिकाव्य के विकास के आधारों पर चर्चा करे।

11.14 काव्यशस्त्रीय आधार

रीतिकालीन कविता के विकास का मुख्य आधार काव्यशास्त्रीय है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसी प्रवृत्ति के आधार पर उत्तर मध्य युग को 'रीतिकाल' की संज्ञा प्रदान की। भक्तिकाल में ही कृपाराम की 'हिततंरगिणी' नंददास की 'रममंजरी' सुरदास की 'साहित्यलहरी' केशवदास की 'कवियत्रिया' और 'रसिकप्रिया की रचना हो चुकी थी। आचार्य केशवदास का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि उन्होंने रीतिनिरुपण की हिन्दी से सुदृढ़ परंपरा स्थापित की दी। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने नंददास से लेकर सेनापति तक रीति-निरूपक आचार्यों की अविच्छिन्न परंपरा का उल्लेख किया है। अन्य साहित्य इतिहासकारों ने उक्त तालिका में कृपाराम का भी नाम जोड़ दिया है।

संस्कृत में काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र और कामशास्त्र की एक लंबी परंपरा प्राप्त होती है। नाट्यशास्त्र और कामशास्त्र का जो प्रभाव संस्कृत काव्यशास्त्र पर पड़ा उसे अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किया। संस्कृत में शास्त्रीय विवेचन जिस प्रौढ़ता और गंभीरता से किया गया वैसा हिन्दी में नहीं हो सका। केवल रस और अलंकार संप्रदायों का ही किंचित परिचय इन हिन्दी काव्य शास्त्रीय ग्रंथों से मिलता है। वास्तव में हिन्दी के आचार्य कवि-कर्म का निर्वाह भी साथ-साथ करने लगे थे। जिससे वे न तो पूर्ण रूप से आचार्य ही हो पाये, और न रीतिबंधन को स्वीकार करने के कारण अपनी काव्य प्रतिभा का ही उत्कृष्ट प्रदर्शन कर सके। रीतिबद्ध कवियों में उसका चरम प्रदर्शन हो सका हैं

रीतिकालीन कवियों को तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जाता है

(i) रीतिबद्ध कवि

(ii) रीतिसिद्ध कवि

(iii) रीतिमुक्त कवि

रीतिबद्ध कवि दो प्रकार के माने गये—एक सर्वागनिरूपक और दूसरे विविधांग निरूपक। रीतिबद्ध सर्वांगनिरूपक वे है जिन्होंने काव्य के सभी अंगों काव्य—लक्षण, काव्य—हेतु काव्य—प्रयोजन, काव्य—गुण,

काव्य—दोष शब्द—शक्ति, रीति, वशत्ति रस, अलंकार, ध्वनि आदि का विवेचन किया। इस वर्ग में केशव चिंतामणि, देव, सोमनाथ, भिखारी दास, प्रतापसिंह और ग्वाल मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। इन कवि आचार्य कर्म को अधिक गंभीरता से लिया। अत: उदाहरणों की अपेक्षा लक्षणों पर इनका ध्यान अधिक कवि ध्वनि और उसके भेदों के विवेचन में प्रवृत्त होते हुए भी स्पष्टता और स्वच्छता न ला सके।

विविध कवियों ने काव्यशास्त्र के उन अंगों का निरूपण किया जिनमें उन्हें सरस उदाहरणों की रच अधिक अवकाश था।

इन्हें मुख्यत: तीन वर्गों में रखा जा सकता है—

(i) रस निरूपक, (ii) अलंकार निरूपक, (iii) पिंगल निरूपक

रस निरूपक आचार्यों ने मुख्यत: श्रृंगार रस का सांगोपांग विवेचन किया किन्तु अन्य रसों का सं परिचय मात्र दिया। इनमें भी उन्होंने अधिक रुचि नायक—नायिका भेद के प्रतिपादन में दिखाई। इन्होंने रूप से संस्कृत के मानुदत्त की रस मंजरी और रस तरंगिणी को अपना आधार बनाया। किन्तु कहीं- 'नाट्यशास्त्र' 'कामशास्त्र', 'काव्यशास्त्र' और 'साहित्यदर्पण' से भी सहायता ली है। संस्कृत के अलावा के 'रसिकप्रिया' 'बखै नायिका भेद' और 'नगरशोभा' भी इनके आधार ग्रंथ रहे हैं। इस वर्ग में हिन्दी रीति— तोश की 'सुधानिधि' देव के 'भावविलास' भिखारी दास के 'रस सारांश' सैयद गुलाम नबी 'रसलीन के प्रभावो' पद्माकर के जगद्विनोद' बेनी प्रवीन के नवरसतरंग' आदि का उल्लेख किया जा सकता है श्रृंगार एवं नायक-नायिका भेद—निरूपक ग्रंथों में मतिराम के 'रसराज' कालिदास त्रिवेदी के 'वारवधू विनोद' विशिष्ट स्थान है। अलंकार निरूपक आचार्यों ने संस्कृत के जयदेव के 'चद्रलोक' और अप्पयदीक्षित 'कुवलयानंद का ही अधिक आधार ग्रहण किया है। हिंदी में आचार्य केशवदास ही ऐसे आचार्य—कवि जिन्होंने दंडी के काव्य दर्श को अपने अलंकार विवेचन का आदर्श बनाया।

11.15 रीतिकालीन परिवेश

इस पाठ का उद्देश्य रीतिकाल के दौर में मौजूद सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थिति विद्यार्थियों का परिचय कराना है। किसी युग विशेष की साहित्यिक उपलब्धियों पर युगीन परिस्थितियाँ ग असर डालती है। हिंदी साहित्य के इतिहास के विभिन्न काल खण्डों के साहित्य का अध्ययन करते हुए सवाल बरबरस घुमड़ने लगते होंगे। किस तरह प्रारंभ में छोटे स्तर पर प्रवृत्ति-विशेष का उभार दिखाई पड़त धीरे-धीरे वह प्रवृत्ति-विशेष सृजन की धुरी के रूप में स्थापित हो जाती है, फिर कुछ समय तक केन भूमिका में रहने के बाद किनारे हो जाती है, इसी दरम्यान नयी प्रवृत्ति की कोंपल फूट पड़ती है। धीरे—धीरे विराट वृक्ष का रूप धारण कर लेता है, फिर अंत में जर्जर होकर उपेक्षित हो जाता है। साहित्य का इति सृजन की नयी-नयी प्रवृत्तियों के उभर विकास और अवसान का कालक्रमिक ब्यौरा भी होता है।

सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ अपने समाज में अभिन्नता से जुड़ी होती हैं, सवंत 1700 से 1900 तक कालखंड की केन्द्रीय साहित्यिक प्रवृत्ति 'रीति' का भी तद्युगीन समाज से गहरा जुड़ाव था। भक्ति भाव निहित प्रेम की आध्यात्मिकता, अलौकिकता व वायवीयता एक हद तक विनष्ट हो चुकी थी। प्रेम नि इहलौकिक एवं ऐन्द्रिक हो गया था, व्यापार वाणिज्य के विकास, केंद्रीकृत साम्राज्य निर्माण व अपेक्षाकृत श के माहौल ने श्रृंगार और अलंकरण की ओर काव्य सृजन को उन्मुख किया। अकबर के नेतृत्व मुगल बादश ने सुदृढ़ राजनितिक ढाँचा स्थापित कर लिया था, अकबर द्वारा शुरू की गयी मनसवदारी व्यास्था ने समाज- विशेष किस्म का सामंती ढ़ाँचा निर्मित किया। बादशाह और उनके मनसबदारी-नवाबों और जमीदारों के रूप कला, साहित्य का संरक्षक वर्ग अस्तित्व में आया। आश्रय पाने वाले कलावन्तों और कवियों ने अपने सृजन उनकी रुचियों और आवश्यकताओं को आधार बना लिया, समाज में व्याप्त घोर वर्ग वैषम्य इस ढंग के साहि को फलने-फूलने में मददगार रहा, आम जनता गरीब एवं अशिक्षित थी, उसे अपनी आजीविका अर्जित क

से ही फुर्सत मुश्किल से मिलती थी, अशिक्षा के कारण रीत्यात्कता एवं अलंकरण को उस तरह वे समझ नहीं पाते थे। थोड़ा बहुत-बहुत शृंगारिकता का रस ले लेते थे, इसलिए कवि कलाकार भी जीजान से कलावन्त और रईसों को रिझाने में लगे रहते थे।

युद्ध और वीरता अवसर सीमित हो जाने के कारण भी रीति की प्रवृत्ति को बल मिला, शहजादे, अमीरजादे जमींदार-नबाव युद्ध कौशल के प्रशिक्षण की बजाय काव्य कौशल व कला-आस्वाद के प्रशिक्षण में रुचि लेने लगे, आश्रयदाताओं सहृदय, रसिक वृन्द और भविष्य के कल्वंतों के काव्य शिक्षण के लिए लक्षण-ग्रंथों की रचना जरूरी हो गयी। लक्षण ग्रन्थ के रचयिता कवियों की लक्षण विवेचन में विशेष रुचि न थी क्योंकि इस युग में आचार्यत्व का कोई विशेष लाभ भी न था, इसलिए रीति काल के कवियों ने स्वयं ही आचार्य की भी भूमिका निभाई, केशव, चिंतामणि, मतिराम, सेनापति, देव भिखारीदास, आदि सब के सब मूल रूप से तो कवि ही हैं, लेकिन लक्षण ग्रन्थ रचने में अपना आचार्यत्व भी दिखाया, वीरता के वास्तविक मौन के अभाव में काव्य के भीतर आश्रयदाता की वीरता के बखान को प्रेरित किया। इस अपेक्षा ने आदिकाल में लोकप्रिय-वीर गाथात्मक परम्परा को रीतिकाल में एक बार फिर पुनजीर्वित किया। इस युग में भी परिस्थितियों के अनुरूप कुछ सच्ची वीरगाथाएँ भी रची गयी। भूषण लाल कवि, और सूदन की रचनाएँ इनके आश्रयदाताओं के संघर्षशील व्यक्तित्व का एक हद तक यथार्थपरक अंकन है।

साहित्य व कलाएँ परस्पर जुड़ी हुयी होती हैं, रीतिकाल के साहित्य का इस युग की अन्य ललित कलाओं चित्रकला एवं संगीत व स्थापना से भी गहरा संबंध है। चित्रकला के विषय निरूपण और रंग-संयोजन से इस युग का कांव्य वस्तु जुड़ा हुआ है। 'रागमाला' चित्रकला शैली की शुरूआत ही शब्दों में पिराये गए भावों को चित्र रूप में उकेरने के उद्देश्य से हुयी। इस समय दरबारों में गायन के लिए भी काव्य सृजन होते थे, इस युग में कला के समग्र विकास के लिए काव्य और संगीत में भी जबरदस्त जुगलबंदी देखने को मिलती है।

11.15.1 रीतिकालीन सामाजिक परिवेश

रीतिकालीन समाज में स्तरीकरण की विशेषता विद्यमान रहती थी, समाज में वर्ग, वैषम्य, चरम पर था। समाज स्पष्ट रूप से उच्च वर्ग एवं निपम्न वर्ग में बँटा हुआ था, हालांकि इन वर्गों के अंतर्गत भी कई मध्यवर्ती स्तर मौजूद थे। निम्न वर्ग के लोग उत्पादन एवं सेवा कार्य से जुड़े हुए थे लेकिन यह वर्ग अपने उत्पादन का उपंभोग नहीं कर पाता था। सुव्यवस्थित और कठोर कर-प्रणाली के कारण उत्पादन का बड़ा हिस्सा साम्राज्य के कब्जे में चला जाता था, ऊपर से क्षेत्रीय जागीरदारों एवं जमीदारों का भी परम्परानुमोदित हिस्सा इसमें बनता था, हिन्दू और मुस्लिम समुदाय से पुरोहिजन वर्ग-पण्डित-मौलवी इसके हिस्सेदार थे, उत्पादन से जुड़े समुदायों के पास इतना कम संसाधन बचता था कि वे मुश्किल से अपना गुजर चला पाते थे। साम्राज्य द्वारा किये जा रहे वृहत कर-वसूली का व्यापक असर राज्य की व्यवस्था, सैन्य-क्षमता, नगर-निर्माण और साहित्य व कला के संरक्षण पर देखने को मिलता है।

17वीं शताब्दी तक आते-जाते भारतीय समाज में जाति-व्यवस्था काफी मजबूत हो चुकी थी। वेद विहित वर्ण व्यवस्था जाति-व्यवस्था का अनुलंघनीय स्वरूप अस्वीकृत कर चुकी थी। समय के साथ-साथ नये-नये शिल्पों के विकास में जातियों-उपजातियों की संख्या में खूब बढ़ोत्तरी हुई, धीरे-धीरे प्रत्येक पेशा अलग जाति से जुड़ गया, सामान्यत: पेशों के वंशानुगत होते जाने के क्रम में पेशेवर-जातियाँ बनती चली गई। जातियों की संख्या में होने वाली वृद्धि ने भारतीय सामाजिक ढ़ाँचे को संकीर्ण बना दिया। हजारी प्रसाद द्विवेदी इस युग की सामाजिक स्थिति पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं—"सन ईसवीं की सत्रहवीं शताब्दी तक आते-आते हिन्दुओं की जाति-पाती की व्यवस्था और भी कसी जाकर सिमट गयी थी, अब वह पुराणी वर्ण-व्यवस्था के आदर्श पर न चलकर पेशेवर जातियों के रूप में ढलने लगी थी, अब वह पुरानी वर्ण-व्यवस्था के आदर्श पर न चलकर पेशेवर जातियों के रूप में ढलने लगी थी। **अब पुरानी वर्ण-व्यवस्था के आदर्श पर न चलकर पेशेवर जातियों के रूप में ढलने लगी थी।** पेशे वंशानुक्रम में चलने लगे, प्रत्येक पेशे के लोग अलग-अलग जातियों

के रूप में संगठित होते गए।'' संसाधनों के असमान सामाजिक वितरण ने रीतिकालीन साहित्य के स्वरू गंभीर असर डाला। संसाधनों पर स्वामित्व अभिजात वर्ग का था। बादशाह, अमीर-वर्ग, में आते थे प्रचलित शिक्षा ग्रहण करने और रुचि-अनुकूल कला साहित्य को संरक्षण देने का साहित्य व अवकाश इस के पास था। यही वजह है कि रीतिकालीन काव्य का पोषण दरबारों एवं सभा समाज में हुआ। इस युग के कलावत पूरे मनोयोग से आश्रयदाता की रुचियों और आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में लगे रहे। आम दरबारी काव्य का आस्वाद पाने में न तो समर्थ थी और न ही इसमें उनकी विशेष रुचि थी। इस स्थिति के में डॉ० नगेन्द्र का मानना है कि—''निम्न वर्ग न तो इतना संपन्न ही था कि इनकी कृतियाँ पर पुरस्कार दे और न इतना शिक्षित ही कि उनका रस ले सके।''

रीतिकाल में लक्षण, निरूपण ग्रन्थ और शृंगारिक काव्य सृजन परिपाटी शुरू हुयी, रीतिक सामाजिक ढाँचे ने ही इनका पोषण किया। कवि और कलाकार वर्गीय दृष्टिकोण से सामान्य वर्ग या निम्न से ही आते थे। राजाओं, नवाबों, के ऐश्वर्यपूर्ण जीवन का इन्हें विशेष अनुभव नहीं होता था। इनकी कला रुचियों से भी ये नवाकिफ होते थे। इस युग में रचे गए लक्षण ग्रंथों और अलंकर शास्त्र की पुस्तक कवियों—कलाकारों के लिए प्रशिक्षण-सामग्री का काम किया जाता था। इन पुस्तकों का उपयोग राजाओं न ने भी अपने कला-शिक्षण के लिए किया। हजारी प्रसाद द्विवेदी इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं— दो वर्गों के मध्य में कवियों, चित्रकारों, संगीतज्ञों आदि कलावन्तों का वर्ग था जो प्राय: उत्पादक वर्ग से उत होता था, किन्तु उपभोक्ता वर्ग की स्तुति और मनोविनोद करके जीविका निर्वाह करता था। जिस प्रकार मालिकों का मनोरंजन इन कवियों और कलावन्तों को करना पड़ता था, उस वर्ग को संतुष्ट करने के लिए ि प्रकार के जीवन से परिचित होना आवश्यक है, वह इन कवियों को प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात नहीं था। उसके ि उन्हें पुस्तकी विद्या की आवश्यकता थी।'' केशव मतिराम, देव पद्माकर आदि के लक्षण, ग्रंथों में आवश्यकता की पूर्ति सफलता से की।

रीतिकाल में नगरीय जनसंख्या में खूब वृद्धि हुई, व्यापार-वाणिज्य के विकास एवं शांति-व्यवस्था असर नगर समाज की समृद्धि पर भी हुआ। इस युग में कला व साहित्य पर नगर समाज का वर्चस्व दिर पडता है। इस युग की कला और साहित्य का आनंद कला-पारखी ही ले सकते थे। कुछ कवियों ने अप कविताओं में अज्ञानता और गंवारपन का मजाक भी बनाया है। नगर जीवन विलासमय और वैभवपूर्ण होता रीतिकालीन काव्य में इस वैभव विलास की बानगी सहज दृष्टव्य है। इस युग की कविताओं में लोगों आहार-विहार, रहन-सहन और अभिरूचिया भी खुलकर व्यक्त हुयी हैं। धनी लोग बड़े-बड़े महलों में र थे। सेवा-टहल के लिए अन्त:पुर में स्त्रियों को संगृहीत करने की परिपाटी थी। महल के साथ-साथ बगीच बावड़ी और पुष्प वाटिकाएँ भी लगी होती थी। रीति काल के ऐतिहासिक परिस्थिति पर विचार करते ह डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है—नगर के बाहर चित्र-विचित्र उपवन और उद्यान सुशोभित थें और स्थान-स्थान रमणीक, सरोवर, जिनके पार्श्वों पर खड़े हुए विहारी और देव जैसे अनेक रसिक 'मणि कुच ऑचर बिच माँ देकर भीगे-पेट घर को जाने वाली सुंदरियों की शोभा निखारते होंगे।'' इस दौर में भाँति-भाँति के मनोरंज खेलों का भी प्रचलन था। अमीर-उमरा और शहजादे तीतर-बटेर लड़ाते थे, पंतगबाजी करते थे और चौप खेलते थे।

इस युग में स्त्रियों की दशा में भारी गिरावट दिखाई पडती है, नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन हो गया थ शृंगारिक मनोवृत्ति में स्त्रियों को भोग्य बना दिया था। पत्नी, पुत्री, माँ और मित्र जैसी अस्मिताएँ बिल्कु उपेक्षित थी। परकीया, खंडिता, प्रेषित पतिका जैसे नायिका भेदों का महात्म्य जोरों पर था। मुगल बादशाह नवाबों और राजाओं-महाराजाओं ने 'हरम' की संस्कृति को खूब प्रक्षन दिया। यहाँ भोग-विलास के लि देश-विदेश से स्त्रियाँ इकट्ठी की जाती थी। इस स्थिति ने स्त्रियों की गरमि को धूमिल किया। इस स्थिति पर्दा-प्रथा और घूँघट निकालने की परंपरा को पोषित किया। इस युग की स्त्रियों की हीनदशा पर विचार कर

हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—"इससे इतना स्पष्ट है कि नारी की विशेषता इनकी दृष्टि में कथ्य नहीं है; वह केवल पुरुष के आकर्षण का केंद्र भर है, उसका सामाजिक अस्तित्व मानों कुछ है ही नहीं।

आम जनता गरीबी और अभाव में जीने के लिए अभिशप्त थी। भक्ति की परंपरा जीवित तो थी, लेकिन 'रति' ने उस पर भी अपना रंग जमा दिया था, पुराने प्रसिद्ध भक्तों की गद्दी स्थापित हो गयी थी राजाओं-नवाबों का अनुग्रह भी मिलने लगा था। दरबारी-संस्कृति के दोषों से ये भी अछूते नहीं रह गए थे, रामलीला और रासलीला के आयोजन का उद्देश्य सिर्फ मनोरंजनमूलक हो गया था। किसी प्रतिभाशाली युग-प्रवर्तक व्यक्तित्व और प्रभावशाली श्रेष्ठ जीवन दर्शन के अभाव में जनता धर्मभीरु अन्धविश्वासी और भाग्यवादी हो गयी थी, डॉ० महेन्द्र कुमार लिखते हैं—'जनसाधारण की चिकित्सा, शिक्षा, सम्पत्ति, रक्षा आदि का भी इस काल में प्रवेश न था, ऐसी शोचनीय अवस्था को यदि लोग भाग्यवादी अथवा नैतिक मूल्यों से रहित थे, तो कोई आश्चर्य नहीं"

11.15.2 रीतिकालीन सामाजिक परिवेश

रीतिकाल की साहित्यिक-सांस्कृतिक उपलब्धियाँ सामाजिक-संस्कृति के विकास का प्रतिफल है। सामाजिक संस्कृति की नींव सल्तनत काल में पड़ी। हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति संवादरत हुयी। मुगल काल में इसका चरम विकास देखने को मिला। अकबर की सृजनात्मकता एवं दूरदर्शिता ने इनका खूब पोषण किया। केंद्रीकृत सुदृढ़ साम्राज्य के संरक्षण में स्थापत्य, चित्रकला, संगीत और साहित्य, सबने अभूतपूर्व उन्नति की। बादशाह की देखा देखी राजाओं नवाबों ने भी इसे खूब प्रज्ञय दिया। दरबारी संरक्षण का असर आम जनता पर भी पड़ा। आम जनता इन उपलब्धियों से चमत्कृत थी। उनके लिए इन चीजों का विशेष उपयोग न होने के बावजूद उनके बीच स्थापत्य, चित्रकला, संगीत और काव्य आदि का काफी सम्मान था। कवियों और कलावन्तों की राजकीय नजदीकी उनके सामाजिक प्रतिष्ठा का भी निर्धारण करती थी।

हिन्दु-इस्लामी संस्कृति के संवाद का शुरुआती असर स्थापत्य कला पर देखने को मिलता है। भवन-निर्माण की कड़ी शहतीर शैली और भित्ति-मेहराब शैली ने सामंजस्य कायम कर लिया, आगे के निर्माण-कार्य दोनों विशेषताओं से युक्त होने लगे। अकबर ने आगरा का किला, लाहौर का किला और फतेहपुर सीकरी जैसा भव्य और विराट निर्माण कार्य कराया। फतेहपुर सीकरी में निर्मित जामा मस्जिद एवं बुलंद दरवाजा मुगल बादशाह के ओज एवं माधुर्य का प्रमाण है। जहाँगीर ने भी निर्माण कार्य जारी रखा, लेकिन मुगल स्थापत्य को चरम विकास की अवस्था में शाहजहाँ ने पहुँचाया। उसके काल को स्थापत्य कला का सवर्णयुग कहते हैं। उसने सार्वजनिक निर्माण कार्यों के प्रबंध के लिए एक अलग विभाग ही बना दिया था। वह इन निर्माण कार्यों में व्यक्तिगत रूप से रुचि लेता था और इसकी निगरानी भी करता था। उसके काल में संगमरमर के कलात्मक उपयोग वाले निर्माण कार्य अस्तित्व में आये। आगरा किले का सबसे सुन्दर भवन, मोती मस्जिद उसने ही बनवाया। उसने दिल्ली में शाहजहाँ नामक एक नगर बसाया। इसमें लाल किला और जामा मस्जिद उसने बनवाई। भारत में निर्मित अभूतपूर्व स्थापत्य ताजमहल शाहजहाँ ने ही बनवाया। शाहजहाँ और ताजमहल के सन्दर्भ में रामकुमार वर्मा की टिप्पणी है—"शाहजहाँ का गंभीर व्यक्तित्व राजसिंहासन के दर्पण में प्रतिबिंबित होकर रतिराज की भांति आकर्षक हो गया। उसने मुमताज विरह को साकार करने की भावना से जिस ताजमहल का निर्माण कराया, वह -समय के कपोल पर अस्तु बिंदु' बन कर अमर हो गया। 18 वर्षों की निरंतर कला साधना के फलस्वरूप ताजमहल किसी अलंकार शास्त्र से कम नहीं था जिसके प्रत्येक दृष्टि पथ में सौन्दर्य था" मुगल साम्राज्य की अवनति के दौर में भी निर्माण-कार्य होते रहे। इसके प्रभाव में राजा-महाराजा और नवाबों ने निर्माण करवाए। आमिर वर्ग के जीवन का इन स्थापत्यों से गहरा नाता रहा। इनकी जीवन शैली ने रीतिकालीन काव्य को गहराई से प्रभावित किया।

मुगलों ने चित्रकला को भी खूब प्रोत्साहन दिया। बाबर सुन्दर चित्रकारी का परम प्रशंसक था लेकिन उसे युद्धों से फुरसत नहीं मिली कि वह चित्रकारी के विकास पर ध्यान दे पाता। हुमायुँ ने अपने ईरान प्रवास के

दौरान चित्रकला में गहरी रुचि दिखाई। तैमूरिया खानदान के इतिहास की पुस्तक को चित्रित करने के लि उसने ईरानी चित्रकार मीर सैयद सिराजी और ख्वाजा अब्दुस्समद तबरीजी की मदद ली। बाद में इन चित्रक ने अकबर के संरक्षण में चित्रकारी की। अकबर के दरबार में चित्रकारों की पूरी फौज सक्रिय थी। दसवंत बसावन लोकप्रिय चित्रकार थे। स्थापत्य के विकास में जो स्थान शाहजहाँ का है, चित्रकला के विकास में स्थान जहाँगीर का है। मंसूर, आगा रेजा और अबुल हसन आदि जहाँगीर के दरबार के मशहूर चित्रकार मंसूर को पक्षियों की चित्रकारी में महारथ हासिल थी। इस काल के बादशाह में गरिमामय व्यक्तित्व को प्र करने के लिए चित्र में प्रभामंडल का भी प्रयोग किया जाने लगा। औरंगजेब के समय में चित्रकला को संरक्ष मिलना बंद हो जाने पर बहुत सारे चित्रकार क्षेत्रीय राजाओं और नवाबों के संरक्षण में चले गए। इस राजस्थानी चित्रकला, पहाडी चित्रकला और पटना कलम आदि की परंपरा लम्बे समय तक विकसित हो रही।

रीतिकालीन काव्य तो इस युग की चित्रकला से प्रभावित हुआ ही, इसने भी चित्रकला को प्रभावि किया। इसने चित्रकारी को नया विषय उपलब्ध करवाया। इस युग में रागमाला चित्रकला का विकास हुआ राजस्थानी चित्रकला ने रागमाला को अपना आधार बना लिया। इस शैली में शब्दों में शब्दों का रंग और कू की सहायता से चित्र रूप से उतारा जाता है। इस सन्दर्भ में नगेन्द्र लिखते हैं—"राजस्थानी चित्रकला का मुख विषय रागमाला थी। रागमाला की चित्रावली विभिन्न ललित कलाओं की मौलिक एकता का व्यक्त निदर्शन वास्तव में कलाओं की मूल आत्मा एक ही है, अभिव्यक्ति मात्र का अंतर है, गीत ध्वनिमय चित्र है, चि अंकित ध्वनि, हमारे शास्त्रों में रसों और रागों के देवता और वर्ण आदि की कल्पना तो बहुत पहले से मिलती है। इन चित्रों में कुछ तो उसके सहारे और कुछ अनुकूल ऋतुओं का आश्रय लेकर शब्दों को रखा औ रंग में चित्रित किया" केशव, देव, बिहारी और मतिराम की रचनाओं को रागमाला में ढ़ाला गया।

इस युग में संगीत-कला को भी दरबारी में खूब संरक्षण मिला। दरबारों में गायकों, वादकों एवं नर्तकों व पूरी टोली मौजूद होती थी। गुणवंत कलाकारों को उदारतापूर्वक अशर्फियाँ एवं जागीर दी जाती थी। अकबर के दरबार में तानसेन एवं बाज बहादुर जैसे मशहूर गायक थे। तानसेन को ध्रपुद गायन में महारत हासिल थी उन्होंने कुछ रागों का आविष्कार किया था। शाहजहाँ के दरबार में लाल खाँ, विलास खां और पंडित जगन्नाथ जैसी हस्तियाँ निवास करती थीं, इनके अलावा इस युग में ग्वालियर-दरबार में भी संगीत को भरपूर संरक्षण मिला। दिल्ली दरबार में औरंगजेब के काल में संगीत को संरक्षण मिलना बंद हो गया था। मुहम्मद शाह रंगीले ने पुन: संगीत को महत्व दिया। अदारंग और सदारंग नामक प्रसिद्ध ख्याल गायक मोहम्मद शाह के दरबार में ह थे। आगे भी लखनऊ के नवाबों ने संगीत का प्रश्रन दिया। नवाब वाजिद अली शाह को ठुमरी का आविष्कारक माना जाता है। यह गायन शैली खूब लोकप्रिय हुई। संगीत के विकास और लोकप्रियता के प्रभाव से रीतिकालीन काव्य भी अछूता नहीं रहा। रीतिकालीन काव्य की लयात्मकता पर संगीत का असर आसानी से दिखाई देता है रामस्वरूप चतुर्वेदी का मानना है कि—"देव पद्माकार घनानंद के कवित्त—सवैये लय और यति के श्रेष्ठतम उदाहरण हैं। संगीत में भाषा का उपयोग और भाषा में संगीत का, यह ब्रजभाषा के विकास की श्रेष्ठतम उपलब्धि है।

मुगल बादशाहों ने शिक्षा के प्रसार के लिए भी पहल की। बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ आदि सबने मदरसों का निर्माण करवाया। इन्होंने शिक्षण-स्थानों को अनुदान भी दिए। उन्होंने इतिहास-लेखन, साहित्य-सृजन एवं अनुवाद कार्य को भी प्रोत्साहन दिया। दरबार में सरकारी इतिहासकार होते थे। जो इतिहास लेखन के लिए अधीकृत कर दिए जाते थे। कभी-कभी स्वतंत्र रूप से व्यक्तिगत प्रयासों द्वारा भी इतिहास लेखन का उदाहरण मिल जाता है। अकबर ने संस्कृत, तुर्की और अरबी भाषा में मौजूद महत्वपूर्ण ग्रंथों को फारसी में उपलब्ध कराने के लिए एक अनुवाद विभाग ही खोल दिया था। अब्दुल रहीम खाने खाना, फैजी और बदायुंनी आदि इस विभाग में कार्यरत महत्वपूर्ण विद्वान थे, लीलावती, महाभारत और रामायण जैसे ग्रंथों का फारसी भाषा में अनुवाद किया गया। इन प्रयासों का जोरदार असर सामाजिक, संस्कृति के विकास पर पड़ा।

प्रकारांतर से इसने अपना असर रीतिकालीन काव्य पर भी डाला। इसमें उर्दू भाषा का विकास हुआ। नामवर सिंह इस उपलब्धि को इस तरह रेखांकित करते हैं—"एक जो सबसे ऐतिहासिक बात हुई, वह यह है इस्लाम के साथ भारत का मेल-जोल भले ही वे लोग आक्रमण के लिए भारत आये हों पर धीरे-धीरे दो मजहबों, दो संस्कृतियाँ का मेल जोल बढ़ा। नतीजा यह हुआ कि इस मेल जोल के साथ फारसी और संस्कृत का भी मेल हुआ जिससे कि उर्दू भाषा विकसित हुई। फारसी और संस्कृत में आपस में संवाद था। इसके सबसे बड़े प्रमाण रीतिकाल के कवि हैं जो अपने ढंग से गजल लिख रहे थे।, रुबाई लिख रहे थे, दोहा जवाब था गजल के शेर का।"

11.15.3 रीतिकालीन राजनीतिक परिवेश

'रीतिकाल' का ऐतिहासिक समय संवत 1700 से 1900 तक है। यह काल निर्धारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा किया गया है। 40-50 साल के लचीलेपन के साथ यह काल निर्धारण आज भी मान्य है। वैसे भी साहित्य के इतिहास लेखन के अंतर्गत प्रवृत्ति-विवेचन के क्रम में किसी प्रवृत्ति की शुरुआत और अवसान को बिल्कुल कालक्रमिक रुप में प्रस्तुत कर पाना नामुमकिन है। इसलिए सामान्य तौर पर 17वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी के मध्य के काल को 'रीतिकाल' के अंतर्गत निर्धारित करते हैं। वैसे 'भक्त कवियों की रचनाएँ रीतिकाल में भी और 'रीति' की प्रवृत्ति वाली रचनाएँ आधुनिक काल में भी कुछ समय तक होती रही। विश्वनाथ त्रिपाठी हिंदी साहित्य का सरल इतिहास में 'रीतिकाल का काल निर्धारण' 1700 ई० से 1850 ई० तक करते हैं।

पानीपत का दूसरा युद्ध (1526 ई०) दिल्ली पर मुगलों के अधिपत्य के लिहाज से निर्णायक रहा। अकबर जैसे प्रतिभाशाली और सृजनात्मक व्यक्तित्व ने आगरा और दिल्ली को केन्द्र बनाकर विशाल मुगल साम्राज्य स्थापित किया। उसकी उदार धार्मिक नीति ने जनता के बीच स्वीकृति और लोकप्रियता हासिल करने में सहायक साबित हुई। राजपूत नीति भी साम्राज्य-विस्तार शांति व्यवस्था के लिए लाभप्रद रहा। उसने मनसबदारी व्यवस्था की शुरूआत कर साम्राज्य के हितों से जुड़ा अमीर-वर्ग तैयार किया यह अमीर वर्ग लम्बे समय तक मुगल-साम्राज्य को स्थायित्व देने वाला इस्पाती बुनियादी बना रहा। कालांतर में योग्य बादशाहत को नेस्तानाबुत करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अकबर ने कर प्रणाली में भी सुधार किया। टोडरमल को प्रगतिशील कर प्रणाली लागू करने की जिम्मेदारी सौंपी। 'आहन-ए-ढहसाला' के अंतर्गत दस साल की उपज और कीमत के औसत के आधार पर कर निर्धारित किया जाता था। इससे कर वसूली में निश्चितता एवं वैज्ञानिकता आई। 'केन्द्रीय साम्राज्य' द्वारा इस ढंग से कर वसूली का सीधा फायदा 'मुगल साम्राज्य' एवं इसे जुड़े हितधारकों को हुआ। साम्राज्य को स्थापत्य, चित्रकला, संगीत, साहित्य और सैन्य अभियानो के जरूरी संसाधन जुटाने में सुगम हो गया। चूँकि साम्राज्य की सम्पन्नता से ही अमीर-जमींदार वर्ग के हित जुड़े हुए थे। इसलिए संसाधनों की उपलब्धता का लाभ उन्हें भी मिला। साम्राज्य का राजनीतिक स्वरूप पिरामिडनुमा था, सबसे ऊपर बादशाह और निचले स्तर पर जनता थी। मध्यवर्ती स्तर पर बड़े-छोटे अमीरों-जमींदारों और राजकर्मचारियों की कई श्रेणियाँ थी। अमीर वर्ग जीवन शैली-पहनावा ओढ़ावा और कलात्मक रुचियों में बादशाह का ही अनुसरण करते थे। इस स्थिति में 'रीतिकाल' के काव्य और कवियों का संरक्षक-वर्ग तैयार किया। यही वजह है कि रीतिकालीन काव्य का बहुलांश दरबार की छाया में ही पोषित हुआ।

काव्यांग-निरुपण और नायिका भेद विवेचन रीतिकालीन काव्य का मुख्य विषय वस्तु है। तदयुगीन राजनीतिक ढांचे की ये बड़ी आवश्यकताएँ थी। भक्ति के तेज को सामंती ढ़ांचे ने। ग्रस लिया था। शान्ति-व्यवस्था के माहौल ने वीरता के ओज के प्रदर्शन के मौकों को सीमित कर दिया। अमीर वर्ग की सम्पन्नता ने मुक्त विलास की ओर प्रेरित किया अपने जीवन के अबाध अवकाश के क्षणों को वे रुचि के अनुकूल कला व साहित्य के प्रोत्साहन में लगाने लगे। यह कतई आश्चर्यजनक नहीं है कि रीतिकाल का हर

छोटा बड़ा कवि किसी न किसी अमीर-जमींदार आश्रय से जुड़ा हुआ है। यहाँ तक कि कुछ राजाओं-नवाबों भी युगीन प्रवत्ति वाली रचनाएँ की। केशवदास ओरछा नरेश के भाई इन्द्रजीत सिंह के आश्रय में थे। इन्ह 'कविप्रिया' की रचना ही आश्रयदाता की गणिका 'रायप्रवीण' को प्रशिक्षण देने के लिए की देव और मतिर बूंदी के महाराज भावसिंह के आश्रय में लम्बे समय तक रहे। जसवंत सिंह मारवाड़ के राजा थे। इन्होंने युगीन प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए अलंकार पर आचार्यों की शैली में 'भाषा-भूषण' लिखा।

रीतिकालीन लक्षण ग्रंथों की रचना के कई उद्देश्य थे। एक तो ऐसे रचनाकार अपनी काव्यांग, सम और प्रस्तुतिकरण का लोह मनवाना चाहते थे। दूसरी बात यह कि इसकी सहायता से वे कवित्व में चमत्कार अलंकरण की योजना कर लेते थे। इसका तीसरा उद्देश्य था दरबार में अपनी धाक जमाना। इसका उपयो संरक्षकों व कलावन्ती को जानकारी देने के लिए भी किया जाता है। इस पर देखा जाये तो रीतिकालीन रचनाक अपने लक्षण ग्रंथों के मार्फत कई उद्देश्य साध रहे थे। ये रचनाकार मुद्रा तो आचार्यत्व का अपनाये हुए लेकिन असल में थे कवि ही। आचार्य शुक्ल लिखते हैं। "इस रीतिग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपु कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अत: उनक द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषत: शृंगार रस) और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राह उदाहरण अत्यंत प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए।" वैसे भी रीति ग्रंथकार का लाभ कवित्व में ही था क्योंकि लक्षण के नाम पर पूर्व-प्रचलित संस्कृत काव्यशास्त्र के चिंतन को ही ब्रजभाषा में प्रस्तुत कर रहे थे। उनके लक्षण-निरूपण की सार्थकता स्वयं द्वारा रचे गए उदाहरण देने में ही सिद्ध हो पाती थी।

'रीतिकालीन' राजनीतिक परिस्थिति पर विचार करते हुए नगेन्द्र लिखते हैं—"संवत 1700 से 190(तक भारत का राजनीतिक इतिहास चरम उत्कर्ष को प्राप्त मुगल साम्राज्य की अवनति के आरम्भ और फि क्रमश: उसके पूर्ण विनाश का इतिहास है।" इतिहास का यह दुर्लभ संयोग है कि "रीतिकाल" के आरम्भ विकास और अवसान का भी कालखंड यही है। मुगल साम्राज्य के वैभव ने 'रीति' की प्रवृत्ति का खूब पोषण किया। काव्य और कला को प्रश्रन देना उस युग में रुचि के साथ-साथ शान की भी बात मानी जाती थी कला-शिक्षण, काव्य-प्रशिक्षण के साथ-साथ शृंगारिक-मानसिकता की तृप्ति और आश्रयदाता-प्रशंसा क कामना भी इससे जुड़ी हुई थी। इस युग में मुगल राज दरवार में तो कवियों-कलावन्तों का जमघट लगा रहत था। अधीनस्थ राजा, महाराजा और नवाबों के दरबारों में भी ऐसे जमावड़े होते रहते थे। बाद में मुगल साम्राज्य की अवनति के दौर में क्षेत्रीय स्तर के राजाओं-नवाबों ने ही साहित्य और कला के प्रोत्साहन को बरकरार रखा। यही कारण है कि मुगल साम्राज्य के क्रमिक पतन के दौर में भी कुछ समय तक कला और साहित्य का विकास जारी रहा, अवरुद्ध नहीं हुआ।

रीतिकालीन काव्य में 'अलंकरण' को विशेष महत्व प्राप्त था। 'भूषण बिनु न विराजाइ कविता वनिता मित' इस युग की बहु प्रचलित काव्य दृष्टि थी। इतिहासकारों का मत है कि मुगल दरबार में प्रचलित फारसी की अभिव्यक्ति शैली से गहरा सम्बन्ध है। फारसी भाषा के अलंकरण का असर देशी भाषा के कवियों पर भी पड़ा। डॉ० बनारसी प्रसाद सक्सेना के हवाले से रामकुमार वर्मा लिखते हैं—"जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में जो रचनाएँ फारसी भाषा में लिखी गई उनमें भावों की अपेक्षा शब्दों के जुड़ाव पर अधिक ध्यान दिया गया हैं जिस प्रकार आभूषण रत्न-जटिल होते थे और इमारतों में सुन्दर पच्चिकारी का काम होता था, उसी प्रकार फारसी साहित्य में अलंकरण का आधिक्य हुआ। कवि तथा गद्यकार की प्रशंसा इसी पर निर्भर थी की उसको उसके शब्द विन्यास में कितना चातुर्य प्राप्त है। रीतिकाल में प्रेम नितान्त ऐहिक रूप अख्यितार कर चुका था। इसकी वजह से शृंगारिकता के भाव को खूब तरजीह मिली। अवकाशभोगी और संपन्न समत्वर्ग के लिए भी यह भाव अपेक्षित था। इस दौर के कवियों ने भी इस भाव को केंद्र में रखकर मुक्तक के रूप में 'चुने हुए गुलदस्ते' खूब तैयार किये। बिहारी, पद्माकर और देव आदि कवियों को इसमें विशेष सिद्धि प्राप्त थी। शृंगारिक भाव की लोकप्रियता ही 'नायिका भेद' को महत्वपूर्ण बना देती है। रामचंद्र शुक्ल इस स्थिति को ऐसे स्पष्ट करते हैं—"अलंकारों की अपेक्षा नायिका भेद की ओर कुछ अधिक झुकाव रहा। इससे शृंगार रस के अंतर्गत बहुत

मुक्तक रचना हिंदी में हुई। इस रस का इतना अधिक विस्तार हिंदी साहित्य में हुआ कि इसके एक अंग को लेकर स्वतंत्र ग्रन्थ रचे गए। इस रस का सारा वैभव कवियों ने नायिका भेद के भीतर दिखाया। रस ग्रन्थ वास्तव में नायिकाभेद के ही ग्रन्थ हैं जिनमें और दूसरे रस पीछे से संक्षेप में चलते कर दिए गए हैं। नायिका शृंगार रस का आलंबन है।'

रीतिकाल में ही परिपाटीबद्ध कविताई को मकर कर रीतिमुक्त कवियों ने काव्य सृजन का स्वछन्द मार्ग अपनाया। घनानंद, आलम, बोधा और ठाकुर इस धारा के प्रसिद्ध कवि हैं। इनकी कविताएँ भी वैसे शृंगार के घेरे में ही आती हैं। लेकिन ये कवि 'प्रेम के भोग' की बजाय 'प्रेम के पीर' के कवि थे। ये वियोग और विरह को संयोग से ज्यादा तरजीह देते थे। इन कवियों को भी दरबारी-आश्रय प्राप्त हुआ लेकिन एकनिष्ठ प्रेम, स्वाभिमान और स्वच्छंद मनोवृत्ति के करण उन्हें दरबार की उपेक्षा भी मिली।

मुगल साम्राज्य के पतन, कंपनी राज की शुरुआत, पुराने राजाओं-नवाबों की बदहाली तथा आधुनिकता के आगमन ने रीतिकालीन साहित्य के आधार को ही नष्ट कर दिया। लोक-रुचि का हिस्सा बने होने के कारण ब्रज की शृंगारिक कविताएँ कुछ समय तक प्रचलित रही। आधुनिकता के आगमन ने साहित्य को रीतिकालीन जड़ता से मुक्ति दिलायी। आधुनिक युग की शुरुआत के साथ एक बार फिर साहित्य की नयी सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर हुई।

संदर्भित ग्रन्थ

सूफी मत साधना और साहित्य	—	रामपूज तिवारी
हिन्दी साहित्य का अतीत भाग 2	—	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
कहानी नयी कहानी	—	नामवरसिंह
हिन्दी का गद्य साहित्य	—	रामचन्द्र तिवारी
प्रसाद के नाटकों में नियतिवाद	—	पद्माकर शर्मा
प्रसाद के नाटक	—	डॉ० गोविन्द चातक
प्रसाद के तीन नाटक	—	डॉ० प्रेमनारायण टंडन
हिन्दी गद्य की नवीन विधाएँ	—	राजेन्द्र प्रसाद
आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ	—	नामवरसिंह
आधुनिक हिन्दी साहित्य: विविध आयाम	—	रामचन्द्र तिवारी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का अतीत भाग 1	—	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	—	राम कुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य की भूमिका	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
साहित्येतिहास: संरचना और स्वरूप	—	सुमन राजे
साहित्येतिहास आदिकाल	—	सुमन राजे
हिन्दी साहित्य का आदिकाल	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	डॉ नगेन्द्र
हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास	—	बच्चनसिंह

हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास	—	रामस्वरूप चतुर्वेदी
हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन	—	विद्यानिवास मिश्र
आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
भारतीय साहित्यशास्त्र	—	गणेश त्रयम्बक देशपाण्डे
नयी समीक्षा के प्रतिमान	—	निर्मला जैन
व्यावहारिक हिन्दी	—	दंगल झाल्टे
भारतीय नाट्य शास्त्र और आज का रंगमंच	—	विश्वनाथ मिश्र
मध्यान्तर भारत के लोकनाटय-नृत्य	—	अर्जुनदा केसरी
साहित्य सहचर	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
नाटय मीमांसा	—	गोविन्ददास
हमारी नाटय परम्परा	—	दिनेश नारायण उपाध्याय
भारतकालीन कलाएँ	—	भारतेन्दु मिश्र
नाटक और रंगमंच	—	राजकुमार

बोध प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. रीतिकाल का नामकरण और सीमा निर्धारण बताते हुए इसकी पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
2. रीतिकालीन काव्य का आधार बनाइए।
3. टिप्पणी लिखिए।
   (क) राजनीतिक परिवेश
   (ख) सामाजिक परिवेश

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. रीतिकाल की सीमा का निर्धारण किस प्रकार किया गया है?
2. रीतिकाल की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
3. रीतिकालीन काव्य का काव्यशास्त्रीय आधार क्या है?
4. 'रीतिकाल में मुगलों ने चित्रकला को प्रोत्साहन दिया।' इस कथन से आप कितना सहमत हैं?
5. रीतिकालीन राजनीतिक परिस्थिति के विषय में डॉ० नगेन्द्र के क्या विचार है?

अति लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. डॉ० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' और रामकुमार वर्मा ने रीतिकाल को क्या नाम दिया है?
2. रीतिकाल को दरबारी पृष्ठभूमि कहने का क्या कारण है?
3. रीतिकालीन कवियों को किन श्रेणियों में रखा गया है?
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रीतिकाल की सामाजिक परिस्थिति के विषय में क्या कहा है?

इकाई (Unit)

12

रीतिकालीन कवि और कविता का स्वरूप

संरचना

12.1 उद्देश्य
12.2 प्रस्तावना
12.3 रीतिबद्ध कवि और कविता
12.3.1 आचार्य केशवदास
12.3.2 भूषण
12.3.3 पद्माकर
12.3.4 चिन्तामणि त्रिपाठी
12.3.5 कालिदास त्रिवेदी
12.3.6 बेनी
12.3.7 शिव सहायदास
12.3.7.1 रूपसाहि
12.3.7.2 बैरीसाल
12.3.8 मतिराम
12.3.9 देव
12.3.10 भिखारीदास
12.4 रीतिसिद्ध कवि और कविता
12.4.1 बिहारीलाल
12.5 रीतिमुक्त और कवि और कविता
12.5.1 घनानन्द
12.5.2 ठाकुर
12.5.3 बोधा
12.6 शृंगारेत्तर काव्य
12.7 वैराग्य तत्व ज्ञान परक काव्य
बोध प्रश्न

12.1 उद्देश्य

- रीतिबद्ध रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त कवियों तथा उनकी कृतियों का परिचय दे सकेंगे।
- रीतिकाल के साहित्य के तीनों वर्गों के कवियों के साहित्य की विशेषता बता सकेंगे।
- रीतिकालीन शृंगारोत्तर काव्य के अन्तर्गत आने वाले भक्ति नीति वैराग्य तथा प्रशस्ति काव्य की चर्चा कर सकेंगे।
- रीतिकालीन कवियों के भाषा सौन्दर्य और शिल्प की जानकारी दे सकेंगे।

12.2 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में अलंकार रीति, रस, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि काव्यशास्त्रीय चिंतन के पहलू अलंकार वाद, रीतिवाद, रसवाद इत्यादि काव्यशास्त्रीय चितंन की सुदृढ़ प्रणाली है। हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में कवि अर्थोपार्जन के लिए कविता करते थे। सांमतों का दरबार उनकी कविता का मुक्त बाजार था। सामंतों व रुचि का ख्याल रखना और उनका मनोरंजन करना कवियों के लिए महत्वपूर्ण हो गया। इस कार्य के लि कवियों ने तीन प्रकार से शास्त्र का सहारा लिया। प्रेम क्रीड़ाओं से सम्बन्धित काम शास्त्र, उक्ति वैचित्य सम्बन्धित अलंकार शास्त्र और नायक नायिका के स्वभाव का वर्णन करने वाले रस शास्त्र को कवियों ने अपन आधार बनाया।

काव्यशास्त्र-विवेचन हिन्दी में काफी पुराना है। सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में कृपाराम की 'हिततरंगिणी' की रचना को विद्वानों ने असामान्य तो ठहरा दिया लेकिन उसी में उसकी एक निश्चित परम्परा का संकेत है ज कभी समाप्त नहीं हुई। ऐसा हो सकता है कि आदिकाल में सामंत युद्ध में व्यस्त थे और संत सामान्य जन में अध्यात्मिक चेतना जगाने और अपने मत के प्रचार में डूबे हुए थे। अत: उस समय कविता वीरों में युद्धोन्माद और लोक में अलौकिक शक्तियों के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने का साधन बनी। धार्मिक-आध्यात्मिक प्रवाह में तथा आगे चलकर रीतिकाल में हिन्दी कविता का स्वरूप बदलता रहा। रीतिकाल तक आते-आते कविता क विषय शृंगार हो गया इस युग में भक्ति गौड और शृंगारिकता प्रमुख हो गयी।

रीतिकाल में जो कविता प्राप्त होती है। उसके कर्ता तीन वर्गों में विभक्त किए गये है, ये वर्ग है।

(i) रीतिबद्ध कवि और कविता

(ii) रीतिसिद्ध कवि और कविता

(iii) रीतिमुक्त कवि और कविता

12.3 रीतिबद्ध कवि और कविता

रीतिबद्ध काव्य मुख्यत: शास्त्रीय स्वरूप के उद्घाटन में नियोजित था। जिसके परिणाम स्वरूप उसमें विभिन्न का व्युरीतियों का बंधन पाया जाता है। कवि को अपनी भावना के प्रसार के लिए व्यापक भूमि नहीं मिली। आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में रीतिकाल पर चर्चा करते हुए लिखा है। 'वाग्धारा बँधी हुई नालियों में प्रवाहित होने लगी। जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रस–हसिक्त होकर सामने आने से रह गए''। शुक्ल जी की मर्यादावादी दृष्टि समग्रजीवन के विविध भावों का पूर्ण उत्कर्ष रीतिकाव्य में न पाकर इसे वासनात्मक और चमत्कार प्रधान एवम रूढ़िग्रस्त मानती है। किंतु शृंगार रस के कोमल-ललित भावों का अपूर्व भडांर भी घोषित करती है। वस्तुत: रीतिबद्ध कविता में शास्त्रीयता और शृंगारिकता का अद्भुत संयोग देखने को मिलता है। इस काव्य प्रवृष्टि की पृष्ठभूमि में दरबारी मानसिकता कार्यरत थी। दरबार में कविता को संगीत और नृत्य की तरह मनोरंजन का साधन समझा जाने लगा। सामंत का मनोरंजन कविता का उद्देश्य हो गया सामंत की रूचि का महत्व काव्य-प्रवृष्टि का रुझान रीतिकाल में काव्यशास्त्र-विवेचन का लक्ष्य दूसरा था। ये संस्कृत के आचार्यों की तरह बौद्धिक विश्लेषण में रुचि न ले सकें क्योंकि इन्हें तो सामान्य रसिक सामन्तों को हिन्दी भाषा के माध्यम से काव्यशास्त्र का साधारण ज्ञान कराना और रमणीय उदाहरणों के द्वारा उनका मनोरंजन करना था। ये आचार्य-कर्म के बहाने अपने काव्य कौशल का प्रदर्शन करना चाहते थे। ये मूलत: कवि-शिक्षक थे।'' अत: लक्षणों के वेष्ठन में वेष्ठित करके कोमल–मादक मनोभावों को प्रस्तुत करना ही इनका लक्ष्य था। जिसमें इन्हें पर्याप्त सफलता मिली। इस वर्ग में आने वाले कुछ प्रमुख कवि–आचार्यों तथा उनके साहित्य का परिचय हम यहाँ उदाहरण के रूप में दे रहे है।

12.3.1 आचार्य केशवदास

आचार्य केशवदास को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने समय-विभाग की दृष्टि से यद्यपि भक्तिकाल में स्थान दिया है तथापि प्रवृत्ति की दृष्टि से वे रीतिकाल के अंतर्गत आते हैं। वस्तुत: केशव से हिंदी की रीति परंपरा प्रारंभ होती है। वे हिंदी के प्रमुख अलंकारवादी आचार्य माने जाते हैं।

केशव का जन्म 1560 ई० में मृत्यु 1617 ई० में हुई। ये आरेछा नरेश महाराज रामसिंह के भाई इंद्रजीत सिंह के आश्रय में रहते थे। केशव को अलंकारवादी इसलिए कहा जाता है क्योंकि वे अलंकारहीन कविता को सुंदर ही नहीं मानते—

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिंदु न विराजई कविता बनिता मित्त।।

आचार्य केशवदास के लिखे नौ ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं–

रचना का नाम	रचनाकाल
1. रसिकप्रिया	1591 ई०
2. रामचंद्रिका	1601 ई०
3. कविप्रिया	1601 ई०
4. रतन बावनी	1607 ई०
5. वीरसिंह देव चरित	1607 ई०
6. विज्ञानगीता	1607 ई०
7. जहाँगीर जसचंद्रिका	1612 ई०
8. नख-शिख	–
9. छंदमाला	–

इनमें **रसिकप्रिया, कविप्रिया** और **छंदमाला**-रीतिपरक ग्रंथ है। रसिकप्रिया 16 प्रकाशों में विभक्त लक्षण ग्रंथ जिसका मूल प्रतिपाद्य श्रृंगार विवेचन है। इस ग्रंथ के **13 प्रकाशों** में तो श्रृंगार चर्चा है तथा शेष तीन प्रकाशों में अन्य रसों, वृत्तियों एवं काव्य दोषों का विवेचन है।

कविप्रिया की रचना केशव ने अपने आश्रयदाता राजा इंद्रजीत सिंह की राजनर्तकी **'राय प्रवीण'** को काव्य शिक्षा देने के उद्देश्य से की थी। अलंकार निरूपण के साथ-साथ इसमें काव्य रीति काव्य दोष आदि का भी विशद विवेचन हैं केशव के आचार्यत्व एवं कवित्व की पूर्ण अभिव्यक्ति इसी ग्रंथ में हुई है।

छंदमाला में कवि ने 77 छंदों के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत किए है। **'रामचंद्रिका'** के केशवदास द्वारा रामकथा पर लिखा गया उत्कृष्ट महाकाव्य है जबकि **विज्ञानगीता** एक **आध्यात्मिक ग्रंथ** है जिसमें कवि के दार्शनिक विचारों को अभिव्यक्ति मिली है।

केशव ने अलंकार विवेचन **'दंडी'** के **काव्यादर्श** तथा **केशव मिश्र** द्वारा रचित **'अलंकार शेखर'** नामक संस्कृत ग्रंथों के आधार पर किया है। केशव द्वारा किया गया अलंकार विवेचन यद्यपि सूक्ष्म एवं व्यापक है। तथापि कुछ अलंकारों के लक्षण अस्पष्ट हैं तथा लक्षण और उदाहरण में असंगति मिलती है।

केशव की कविता में अलंकरण, चमत्कार प्रदर्शन एवं पांडित्य प्रदर्शन की प्रमुखता है। उनकी कविता में क्लिष्टता आ गई है। जिसके कारण उन्हें **'कठिन काव्य का प्रेत'** कहा जाता है। उनकी कविता की क्लिष्टता के विषय में यह उक्ति प्राय: कहीं जाती है।

कवि को देन न चहै विदाई। पूछे केशव की कविताई।।

आचार्य शुक्ल ने उनके संबंध में कहा है—"केशव को कवि हृदय नहीं मिला था। उनमें वह सहृ और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिए। कवि कर्म में सफलता के लिए भाषा पर जैसा अ चाहिए वैसा उन्हें प्राप्त न था। केशव केवल उक्ति वैचित्रय एवं शब्द क्रीड़ा के प्रेमी थे।"

केशव की कविता में प्रबंध रचना के गुण भी नहीं थे। शुक्ल जी ने प्रबंध काव्य के लिए तीन अनिवार्य मानी हैं—1. संबंध निर्वाह, 2. कथा के गंभीर और मार्मिक स्थलों की पहचान और 3. दृश्य स्थान गत विशेषता। केशव में इन तीनों का अभाव है। **प्रबंध रचना के योग्य न तो केशव में शक्ति थी न अनुभुति**—ऐसा निष्कर्ष शुक्ल जी का है।

रामचंद्रिका में केशव को सर्वाधिक सफलता मिली है। संवाद योजना में संवादों में पात्रानुकूल उत्साह आदि की सुंदर व्यंजना है। केशव की रचनाओं में सूर, तुलसी जैसी सरसता और तन्मयता चाहे न ह काव्यांगों का विस्तृत परिचय कराकर उन्होंने आगे के लिए मार्ग खोला।

केशव की रचना से कुछ प्रसिद्ध पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं—

1. मूलन ही की जहाँ अधोगति केसव गाइय।
   होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाइए।
   दुर्गति दुर्गन ही जो कुटिलगति सरितन ही में
   श्री फल कौ अभिलाष प्रगट कविकुल के जी में।।
2. कौन के सुत, बालि के, वह कौन बालि न जानिए।
   काँख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखनिये।।
3. सिंधु तर्‌यों उनको बनरा
   तुमपै धनुरेख गई न तरी।
   बानर बाँधत सा न बंध्यां उन
   वारिधि बाँध के बाट्करी।
   अजहूँ रघुनाथ प्रताप की बात,
   तुम्हें दसकंठ न जानि परी।।
   तेलनि तुलनि पूंछ जरी न,
   जरी जरी लंक जराई जरी।।
4. कै स्रोनित कलित कपाल यह किल कालापिक काल को।
   यह ललित लाल कैंधो लसत दिगभामिनी के भोल को।।
5. तिन नगरी तिन नागरी प्रतिपद हंसक होन।
   जलजहार सोभित न जहं प्रकट पयोधर पीन।।
6. विधि के समान हैं विमानीकृत राजहंस
   विविध विवुधयुत मेरु सो अचल है।
   दीपति दिपति अति सातों द्वीप दीपियतु,
   दूसरो दिलीप सा सुदक्षिणा को बलु है।

12.3.2 भूषण

भूषण छत्रपति शिवाजी और पन्ना के राजा छत्रसाल बुंदेला के आश्रय में रहने वाले ऐसे रीतिकालीन कवि हैं जिन्होंने वीररस की कविताएँ लिखकर अपूर्व ख्याति अर्जित की। चित्रकूट के राजा रुद्रसाह सोलंकी ने इन्हें **'भूषण'** की **उपाधि दी थी** और वे इस नाम से इतने प्रसिद्ध हुए कि इनका वास्तविक नाम ही किसी को नहीं पता। इनका जन्मकाल 1613 ई० में माना गया है। भूषण के विषय में कहा जाता है कि इनकी पालकी में स्वयं महाराज छत्रसाल ने अपना कंधा लगाया था।

भूषण ने जिन दो नायकों को अपने वीरकाव्य का विषय बनाया वे अन्याय दमन में तत्पर, हिंदू धर्म के संरक्षक, दो इतिहास प्रसिद्ध वीर महाराज शिवाजी एवं छत्रसाल बुंदेला थे। अत: उनके द्वारा वर्णित प्रशस्तियाँ रीतिकाल के अन्य कवियों जैसी झूठी खुशामद नहीं थी, अपितु भूषण के उद्‌गार सारी जनता के हृदय की संपत्ति बन गए। आचार्य शुक्ल के अनुसार, "इन दो वीरों का जिस उत्साह के साथ सारी हिंदू जनता स्मरण करती है। उसी की व्यंजना भूषण ने की है। वे हिंदू जाति के प्रतिनिधि कवि है।"

भूषण ने **शिवराज भूषण** और **शिवा बावनी** को रचना महाराज शिवाजी के आश्रय में रहकर की। इनमें से शिवराज भूषण **अलंकार ग्रंथ** है, जिसमें 105 अलंकारों के लक्षण और उदाहरण **जयदेव** कृत **'चंद्रालोक'** के आधार पर दिए गए हैं। अलंकारों के लक्षण दोहों में तथा उदाहरण कवित्त-सवैयों में हैं। उदाहरण कहीं-कहीं लक्षण के अनुरूप नहीं है। **छत्रसाल दशक** में महाराज **छत्रसाल** की वीरता का वर्णन है तो **शिवा बावनी में शिवाजी** का बखान है।

अब तक भूषण के लिखे उक्त तीन ग्रंथ ही उपलब्ध हुए है। कुछ लोग इनके लिखे तीन और ग्रंथों का उल्लेख करते हैं, जिनके नाम हैं—**भूषण उल्लास, दूषण उल्लास, भूषण हजारा**। भूषण की ख्याति आचार्य के रूप में उतनी नहीं है जितनी वीररस के कवि के रूप में है। युगधर्म के अनुरूप उन्होंने अलंकार विषयक ग्रंथ अवश्य लिखा तथापि मूलत: वे ओजस्वी कवि ही हैं। उनकी भाषा ओजपूर्ण तो है, किंतु वह अव्यवस्थित है। उनकी कविता में राष्ट्रीयता विद्यमान है। वे भारतीय संस्कृति के रक्षकों की प्रशंसा में छंद लिखने वाले कवि के रूप में समग्र हिंदू जनता के द्वारा सराहे गए कवि है।

भूषण की कविता के उदाहरण द्रष्टव्य है—

1. इंद्र जिमि जृंभ पर वाड़व सुअंभ पर
   रावन संदभ पर रघुकुलराज हैं।
   पौन वारिवाह पर संभु रतिनाह पर
   ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज हैं।
   दावा द्रमदंड पर चीता मृगझुंड पर,
   भूषण वितुंड पर जैसे मृगराज हैं
   तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि के पर
   त्यों म्लेच्छ वंस पर सेर सिवराज हैं।
2. मोटो भई चंडी बिन चोटी के चबाया सीस,
   खोटी भई संपत्ति चकता के घराने की।।
3. ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहन बारी,
   ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।

भूषण भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,

नगन जड़ातीं तो वे नगन जड़ाती हैं।।

4. दारा की न दौर यह रार नहिं खजुए की,

बांधिबो नहीं है कैंधों मीर सहबाल को।

बूढ़ति है दिल्ली सो संभारै क्यों न दिल्लीपति

धक्का आनि लाग्यो सिवराज महाकाल को।।

12.3.3 पद्माकर

रीतिकाल के कवियों में पद्माकर का नाम आदर से लिया जाता है। बिहारी के बाद ये सब लोकप्रिय कवि रीतिकाल के है। इनकी जैसी लोकप्रियता बहुत कम कवियों को प्राप्त होती है। पद्माक पिता मोहनलाल भट्टा एक महान विद्वान एवं कवि थे। **पद्माकर का जन्म बाँदा में 1753 ई०** में हुअ 80 वर्ष की आयु पाकर 1833 ई० में इनका स्वर्गवास हुआ।

पद्माकर किसी एक स्थान पर टिककर नहीं रह पाए। हिम्मद बहादुर अवध के बादशाह की से बड़े अधिकारी थे। उनकी वीरता पर मुग्ध होकर पद्माकर ने **'हिम्मद बहादुर विरुदावली'** की रचना क वीररस की फड़कती हुई रचना है। सतारा के महाराज रघुनाथ राव (राघोबा) से इन्हें एक हाथी, एक रुपया और दस गाँव प्राप्त हुए थे। तत्पश्चात् पद्माकर जयपुर के महाराज प्रतापसिंह के यहाँ रहे। उनके जगत सिंह के संरक्षण में रहकर पद्माकर ने अपने प्रसिद्ध ग्रथ **'जगद्विनोद'** की रचना की। यहीं पर इ- अपने अलंकार ग्रंथ **'पद्माभरण'** की रचना की। महाराजा जगतसिंह के स्वर्गवास के बाद ये ग्वालिय महाराजा दौलतराव सिंधिया के दरबार में भी रहे। **'हितोपदेश' का भाषा अनुवाद** इन्होंने ग्वालियर में र किया। बाद में ये ग्वालियर से बूँदी गए और वहाँ कुछ काल तक रहने के बाद बाँदा आ गए। अंतिम समय रोगग्रस्त रहते थे। तभी इन्होंने 'प्रबोधपचासा' की रचना की। अंतिम समय निकट जानकर ये कानपुर में गं पर रहने लगे और वहीं इन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **गंगालहरी** की रचना की।

इस प्रकार पद्माकर के लिये ग्रंथ निम्नवत् हैं—

1. हिम्मद बहादुर विरुदावली — वीर रस प्रधान चरित काव्य
2. प्रताप सिंह विरुदावली — चरित काव्य
3. कलि पच्चीसी — कलियुग का वर्णन
4. जगद्विनोद — शृंगार रस का ग्रंथ (रस निरूपक रीतिग्रंथ)
5. पद्माभरण — अलंकार ग्रंथ (लक्षण ग्रंथ)
6. प्रबोध पचासा — वैराग्य निरूपण
7. गंगा लहरी — गंगा माहात्म्य

'जगद्विनोद' में छ: प्रकरण और 731 छंद हैं। शृंगार रस एवं नायिका भेद का विशद विवेचन कि गया है। काव्यांगों के लक्षण दोहों में हैं तथा उदाहरण कवित्त-सवैयों में है। इस ग्रंथ की रचना के लिए आ सामग्री भानुदत्त की रसमंजरी, केशव की रसिकप्रिया और विश्वनाथ के साहित्यदर्पण से ली गई है। इस ग्रंथ विशेषता यह है कि लक्षण सुबोध है तथा उदाहरण सरस हैं।

पद्माकर की गणना अच्छे कवियों में होती है। उनकी रचनाओं में कवित्व का पूर्ण उत्कर्ष दिखाई पड़ है। मधुर और स्वाभाविक कल्पना, सजीव मूर्ति विधान एवं उपयुक्त शब्द चयन के कारण इनकी कविता

भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनों ही सशक्त बन पड़े हैं। भाषा की प्रवाहमयता एवं विषय की सरसता के कारण पद्माकर रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में स्थान पाते रहे हैं। इनका होली विषयक एक प्रसिद्ध सवैया निम्न प्रकार हैं—

फागु की भीर अंभीरन में गहिं,
गोविंद लै गई भीतर गोरी
भाय करी मन की पद्माकर,
ऊपर नाय अबीर की झोरी।।
छीनि पितंबर कम्मर तें सु,
विदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कहीं मुसकाय लला,
फिरि आइयो खेलन होरी।।

पद्माकर की कविता में अनुप्रसागिकता के साथ-साथ कोमल भाव तरंग, मधुकल्पना, साफ, सुथरी ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। लाक्षणिक शब्दों के प्रयोग से वे अनुभूति को सशक्त रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

1. एहो नंदलाल। ऐसी व्याकुल परी है बाल,
हाल ही चलौ तौ चलौ जोरे जुरि जायगी।
कहैं पद्माकर नहीं तो ये झकोरे लगे,
औरे लौं अचाका बिनु घोरे घुरि जायगी।
सीरे उपचारन घनेरे घनसारन सों
देखत ही देखौ दामिनी लौं दुनि जायगी।
तौही लगि चैन जौ लौं चंतिहैं न चंदमुखी,
चेतैगी कहूं तौ चाँदनी में चुरि जायगी।

2. मोह लखि सोवत विथारिगो सुबनी बनी,
तोरिगों हिए को हार छोरिगो सुगैया को।
कहै पद्माकर त्यों घोरिगों घनेरो दुख,
बोरिगो विसासी आज लाज ही की नैया को।।
अहिंत अनैसा ऐसो कौन उपहास यातैं,
सोचन खरी मैं परी जोवति जुन्हैया को।
बूझिहै चबैया तब कैहों कहा, दैया।
इत पारिगो को मैया! मेरी सेज पै कन्हैया को।।

रीतिकाल के कवियों में से कुछ कवि ही ऐसे है जिन्होंने लोक जीवन का अपना काव्य विषय बनाया। इस प्रकार के कवि अधिकतर वे है जो नीतिकार एवं सूक्तिकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। ऐसे कवियों में प्रमुख है—वृंद कवि गिरधर, कविराय, दीनदयाल गिरि, वेताल कवि आदि।

12.3.4 चिन्तामणि त्रिपाठी

वे तिकवाँपुर (जिला कानपुर) के रहने वाले और चार भाई थे—चिन्तामणि, भूषण, मतिराम जटाशंकर। चारों कवि थे, जिनमें प्रथम तीन तो हिन्दी साहित्य में बहुत यशस्वी हुए। इनके पिता का रत्नाकर त्रिपाठी था। चिन्तामणि का जन्मकाल संवत् 1666 के लगभग और कविताकाल संवत् 170(आसपास ठहरता हैं इनका कविकल्पत नामक ग्रंथ संवत् 1707 का लिखा है। इनके संबंध में शिव सिंह स में लिखा है कि ये बहुत दिन तक नागपुर में सूर्यवंशी भोंसला मकरंदशाह के यहात्र रहे और उन्हीं के नाम छंद विचार नामक पिंगल का बहुत भारी गंथ बनाया और 'काव्य विवेक', 'कविकुल कल्पतरू', 'काव्यप्रक 'रामायण' ये पाँच ग्रन्थ हैं। इनकी बनायी रामायण कवित्त और अन्य नाना छंदों में बहुत अपूर्व है। बाबू साहि सोंलकी शाहजहाँ बादशाह और जैनदी अहमद ने इनको बहुत दान दिये हैं। इन्होंने अपने ग्रंथ- कहीं-कहीं अपना नाम मणिमाल भी कहा है। चिन्तामणि ने काव्य के सब अंगों पर ग्रंथ लिखे। इनकी भ ललित और सानुप्रास होती थी। अवध के पिछले कवियों की भाषा देखते हुए इनकी ब्रज भाषा विशुद्ध दि पड़ती है। ये वास्तव में एक उत्कृष्ट कवि थे।

येई उधारत हैं तिन्हें जे, परे मोह महोदधि के जल फेरे।
जे इनको पल ध्यान धरै मन, ते न परै कबहूँ जम घेरे।
राजै रमा रमनी उपधान, अभै वरदान रहैं जन तेरे।
हैं बलभार उदंड भरे, हरि के भुदंड सहायक मेरे।
इक आजू में कदंन बेलि लिखी, मनिमंदिर की रुचिवंद भरैं।
अरबिंद के पल्लव इंदु तहौ, अरविंदन तें मकरंद झरैं।।
उत बुंदन के मुकतान हवै, फल सुंदर भ्वै पर आनि पैर।
लखि यो दुति कंद अनंद कला, नँदनंद सिलाद्रव रूप धैर।।
आँखिन मुँदिवे के मिस आनि, अचानक पीठि उरोज लगावै।
केहूँ कहूँ मुसकाय चितै, अगरास अनुपम अंग दिखावै।।
नाह हुई छल सो छतियाँ, हत्रसि भोंह चढ़ाय अनंद बढ़ावै।
जोबन के मद मंत्र तिया, हित सो पति को नित चित्त चुरावै।।

12.3.5 कालिदास त्रिवेदी

ये अंतर्वेद के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका विशेष वृत्त ज्ञान नहीं। जान पड़ता है कि संव 1745 वाली गोलकुंडे की चढ़ाई में ये औरंगजेब की सेना में किसी राजा के साथ गये थे। इस लड़ाई औरंगजेब की प्रशंसा से युक्त वर्णन इन्होंने इस प्रकार किया है—

गढ़न गढ़ी से गढ़ महल मढ़ी से मढ़ि,
बीजापुर ओटयो दलमलि सुघराई।
कालिदास कोटयो वीर औलिया अलमगीर,
तीन तरवारि, गही पुहुमी पराई में।।
बूँद तें निकसि महिमंडल घमंड मची,
लोह की लहरि हिमगिरी की तराई में।

गढ़ि के सुंझडा आड़ कीनी बादशाह, तातें,

डकरी चमुंडा गोलकुंडा की लड़ाई में।।

कालिदास का जंबूनरेश जगजीत सिंह के यहाँ भी रहना पाया जाता है, जिनके लिए संवत् 1749 में इन्होंने वर-वधू-विनोद बनाया। यह नायिकाभेद और नखशिव की पुस्तक है। बत्तीस कविताओं की एक इनकी छोटी सी पुस्तक 'जँजीराबंद' भी है। राधा-माधव बुधमिलन-'विनोद नाम का एक कोई ग्रंथ इनकी खोज में मिला है। इन रचनाओं के अतिरिक्त इनका बड़ा संग्रह ग्रन्थ 'कालिदास हजारा' भी बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं इनके पुत्र कवींद्र और पौत्र दूलह भी बड़े अच्छे कवि हुए।

चुमौ करकंज मंजू अमल अनूप तेरो,

रूप के निधार कान्ह! मो तन निहारि दै।

कालिदास कहै मेरे पास हरै हेरि-हेरि,

माथे धरि मुकुट, लकुट कर डारि दै।।

कुँवर कन्हैया मुखचंद को जुन्हैया, चारू,

लोचन चकोरन की प्सासन निवारि दै।

मेरे कर मेहँदी लगी है, नंदलाल प्यारे।

लट उलझी है नकबेसर संभारि दै।।

हाथ हँसि दीन्हों भीति अंतर परसि प्यारी, देखते ही छकी मखि कान्हर प्रवीन की।

निकस्यो झरोखे माँझ बिस्यो कमल सम,

ललित अँगूठी तामे चमक चुनीन की।।

कालिदास तैसी लाल मेहँदी के बुँदन की,

चारू नख चंदन की लाल अँगरीन की।

कैसी छवि छजाति है छाप और छलान की सु,

कंकन चुरीन की जड़ाऊ पहुँचीन की।।

12.3.6 बेनी

ये असनी के बंदीजन थे और संवत् 1700 के आसपास विद्यमान थे। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिलता पर फुटकट कवित्त बहुत से सुने जाते है, जिनसे यह अनुमान होता है कि इन्होंने नख-शिख और षट् ऋतु पर पुस्तकें लिखी होंगी। कविता इनकी साधारणत: अच्छी होती थी। भाषा चलती होने पर भी अनुप्रास युक्त होती थी।

छहरै सिर पै कवि मोरपखा, उनकी नथ के भुकुता छहरै।

फहरै पियरो पट बेनी इतै, उनकी चुनरी के झवा झहरै।

रसरंग भिरे आभिरे हैं तमाल, दोऊ रसख्याल चहैं लहरैं।

नित ऐसे सनेह सों राधिका स्याम हमारे हिए में सदा बिहरै।

कवि बेनी नई उनई है घढ़ा, मोरवा बन बोलत कूकन री।

छहरै बिजुरी छितिमंडल छूवै, लहरै मन मैन भभूकन री।

पहिरौ चुनरी चुनि के दुलही, सँग लाल के झलहु झूकन री।

ऋतु पावस यों ही बितावत हौ, भारिहौ, फिरि बाबरि हूकन री।

12.3.7 शिवसहाय दास

ये जयपुर के रहने वाले थे। इन्होंने संवत् 1809 में 'शिवचौपाई' और लोकोक्तिरस कोमुदी दो ग्र बनाये। लोकोक्तिरस कौमुदी में विचित्रता यह है कि पखानों या कहावतों को लेकर नायिकाभेद कहा गया जैसे—

करै रूखाई नाहिंन बाम। बेगिहिं लै आऊँ घनस्याम।।

कहै पखानों भरि अनुराग बाजी ताँत, कि बूडयो राग।।

बोले निठुर पिया बिनु दोस। आपुहि तिय बैठी गहि रोस।

कहै पखानों जेति गाहि मौन। बैल न कूद्यौ, कूदी गौन।।

12.3.7.1 रूपसाहि—ये पन्ना के रहने वाले श्रीवास्तव कायस्थ थे। इन्होंने संवत् 1813 'रूपविलास' नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमें दोहे में कुछ पिंगल, कुछ अलंकार, नायिकाभेद आदि है। दो दोहे नम् के लिए दिये जाते हैं—

जगमगाति सारी जरी, झलमल भूषण जेति।

भरी दुपहरी तिया की, भेंट पिया सों होति।

लालन बेगि चलौ न क्यों? बिना तिहारे बाल।

मार मनोरनि सो मरति, करिए परसि निहाल।।

12.3.7.2 बैरीसाल—ये असनी के रहने वाले ब्रह्म भट्ट थे। उनके वंशधर अब तक अस नी में है इन्होंने 'भाषाभरण' नामक एक अच्छा, अलंकारग्रन्थ संवत् 1825 में बनाया, जिसमें प्राय: दोहे ही है। दो बहुत सरस है और अलंकारों के अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

नहिं कुरंग नहिं ससक यह, नहिं कलंक, नहिं पंक।

बीस बिसे बिरहा दही, गहीं दीठि ससि अंक।।

करत कोकनद मदहि रद, तुव पव हर सुकुमार।

भए अरुण अति दवि मनो पायजेब के भार।

12.3.8 मतिराम

मतिराम रीतिकाल के प्रमुख कवियों में है तथा प्रसिद्ध कवि भूषण और चिंतामणि के भाई कहे जाते है डॉ. नगेंद्र ने इनका जन्म 1604 ई० के आसपास माना है। इनके पिता का नाम विश्वनाथ त्रिपाठी था तथा व सम्राट जहाँगीर बूँदी नरेश राव भावसिंह हाड़ा, कुमायूँ नरेश ज्ञानचंद्र तथा बुंदेलखण्ड के स्वरूप सिंह बुंदेला के आश्रय में रहे थे। इनके द्वारा रचित ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—

1.	फूलमजरी	रचनाकाल 1619 ई० जहाँगीर के आश्रय में लिखी गई
2.	ललित ललाम	रचनाकाल 1661-64 ई० भावसिंह के आश्रय में
3.	सतसई	रचनाकाल 1681 ई० भोगनाथ के आश्रय में
4.	अलंकार पंचाशिका	रचनाकार 1690 ई० ज्ञानचंद के आश्रय में
5.	वृत्तकौमुदी	रचनाकाल 1701 ई० स्वरूप सिंह बुंदेला के आश्रय में

6.	रसराज	रचनाकाल 1633-43 ई० स्वतंत्र रूप से लिखा गया।
7.	लक्षण शृंगार	उपलब्ध नहीं है।
8.	साहित्यसार	उपलब्ध नहीं है।

रीतिग्रंथों की दृष्टि से इनकी उत्कृष्ट रचनाएँ हैं--समाज और ललित, लालम। आचार्य शुक्ल के अनुसार--"रस और अलंकार की शिक्षा में इनका उपयोग बराबर चलता आया है।"

'रसराज' में शृंगार रस एवं नायिका भेद का विवेचन **'भानुदत्त की 'रसमंजरी'** और **'रहीम' के बरवै नायिका भेद'** के आधार पर किया गया है। पहले दोहे में लक्षण देकर फिर कविता और सवैये में सरस उदाहरण दिए गए हैं। इनकी भाषा की प्रशंसा करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है--"रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों में पद्माकर को छोड़ और किसी कवि में मतिराम की सी चलती भाषा और सरल व्यंजना नहीं मिलती। उनकी भाषा में नाद सौंदर्य भी विद्यमान है।"

मतिराम की कविता में न तो भावों की कृत्रिमता है और न भाषा की। भाषा शब्दाडम्बरो से पूरी तरह मुक्त है। केवल अनप्रासंगिकता के लिए अशक्त शब्दों की भरती इन्होंने नहीं की। दूर की कौड़ी लाने के फेर में भी वे नहीं पड़े इसलिए उन्होंने नायिका के विरहताप का वैसा वर्णन नहीं किया जैसा बिहारी ने करके उसे मजाक की हद तक पहुँचा दिया।

'रसराज' और **'ललित लालाम'** अपने विषय के अनुपम ग्रंथ हैं **'ललित ललाम'** में अलंकारों के उदाहरण बहुत सरस एवं स्पष्ट हैं। मतिराम सतसई के दोहे भी बिहारी सतसई की टक्कर के हैं।

उनके दोहों को लोग भ्रमवश बिहारी का दोहा समझ बैठते हैं क्योंकि ये बिहारी सतसई के दोनों में किसी भाँति कम नहीं आके जा सकते।

मतिराम के दो सवैये यहाँ प्रस्तुत हैं--

1. कुंदन को रंग फीकी लगै,
झलकै अति अंगनि चारु गोराई।
आँखिन में अलसानि चितौन में,
मंजु विलासनि की सरसाई।।
को बिनु मोल बिकात नहीं,
मतिराम लहै मुसकनि मिठाई
ज्यौं-ज्यौं निहारिए नेरे है नैननि,
त्यों-त्यों खरी निकरै सी निकाई।।
2. केलि कें राति अघाने नहीं,
दिन ही में लला पुनि घात लगाई।
'प्यास लगी कोउ पानी दै जाइयो,
भीतर बैठि के बात सुनाई।।
जेठी पठाई गई दुलही, हँसि,
हेरि हरैं मतिराम बुलाई।
कान्ह के बोल पै कान न दीन्हीं,
सुगेह की देहरि पै धरि आई।।

12.3.9 देव

कवि देव का पूरा नाम **देवदत्त** था तथा ये इटावा के रहने वाले थे। इनका जन्म 1673 ई० में हुआ था तथा इन्होंने अनेक राजा-रजवाड़ों का आश्रय प्राप्त किया था। इनकी मृत्यु अनुमानत: 1767 ई० के आसपास हुई। देव को कोई अच्छा उदार आश्रयदाता नहीं मिला। जहाँ ये टिककर रहते, परिणामत: ये बराबर अपना आश्रयदाता बदलने को विवश हुए।

देव ने प्रचुर मात्रा में ग्रंथों की रचना की, जिनकी संख्या कुछ लोग 72 बताते है, किंतु अभी तक केवल 15 ग्रंथ ही उपलब्ध हुए है जिनके नाम है—

1. भाव विलास— इस ग्रंथ को इन्होंने औरंगजेब के बड़े पुत्र आजमशाह को सुनाया था, जो हिंदी कविता के प्रेमी थे।

2. अष्टयाम—यह ग्रंथ अजयशाहू को सुनाया था।

3. भवानी विलास—भवानीदत्त वैश्य के नाम पर लिखा गया।

4. कुशल विलास—फफूँद रियासत के राज कुशल सिंह के नाम पर लिखा।

5. प्रेम चंद्रिका—राजा उद्योत सिंह वैस के लिए लिखी।

6. जाति विलास—भिन्न-भिन्न प्रांतों एवं जातियों की स्त्रियों का वर्णन।

7. रस विलास—राजा भोगीलाल के आश्रय में लिखा।

8. राग रत्नाकर—संगीत विषयक लक्षण ग्रंथ है।

9. देवशतक—अध्यात्म विषयक ग्रंथ है जिसमें जीवन और जगत को असारता का चित्रण है।

10. देवचरित्र—कृष्ण के जीवन पर आधारित प्रबंध काव्य है।

11. शब्द रसायन—लक्षण ग्रंथ तथा सर्वांग निरूपक रीति ग्रथ है।

12. सुजान विनोद—सुजानमणि के आश्रय में लिखा।

13. सुख सागर तरंग—रस, नायिकाभेद आदि से सम्बद्ध कवित, सवैयों का संग्रह।

14. देवमाया प्रपंच—प्रबोध चंद्रदय नामक संस्कृत नाटक का पद्यानुवाद।

15. प्रेमतरंग—प्रेम के महाक्षम्य का वर्णन।

देव एक समर्थ कवि एक प्रतिभा संपन्न आचार्य के रूप में समादूत रहे है। आचार्यत्व की अपेक्षा देव का कवित्व अधिक सशक्त हैं। **इनके काव्य का मूल विषय शृंगार रहा है।** इनकी रचनाओं में कल्पना की चारूता और अर्थ वैभव का सुंदर सामंजस्य हुआ है। विषयानुकुल शब्द चयन, अनप्रासंगिकता के कारण इनकी अभिव्यंजना शैली भी प्रशसंनीय बनी पड़ी है। कही-कहीं शब्दों की अनावश्यक तोड़-मरोड़ एवं व्याकरणिक अव्यवस्था के बावजूद उनकी कविता सरस, भावपूर्ण एवं हृदयग्राही बन पड़ी हैं देव की कविता का उदाहरण प्रस्तुत है।

धार में धाय धंसी निरधार है
जाय फंसी उकसी न उघेरी।
री अगराय गिरी गहरी गहि,
फेरे फिरी न घिरी नहिं घेरी।।

देव कहु अपनो बम ना रस

लालच लाल चितै भइ चेरी।

बेगि ही बूहि गई पखियाँ अँखियाँ

मधु की मखियाँ भई मेरी।।

देव की भाषा प्रवाहपूर्ण ब्रजभाषा है। 'रीतिकाल के कवियों में ये बड़े ही प्रगल्य और प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। ऐसा शुक्ल जी का मत है। इनका एक प्रसिद्ध सवैया इस प्रकार है—

सांसन ही में समीर गयो अरु,

आंसुन ही सब नीर गयो ढ़रि।

तेज गयो गुन लै अपनो अरु,

भूमि गई तनु की तनुता करि।।

'देव' जियै मिलिबेई की आसकै,

आसहु पास अकास रहयौ भरि।

जा दिन तैं मुख पेरी हरै हांसि,

हेरि हियेजु लियो हरिजू हरि।।

सवैये का अर्थ यह है कि वियोग में उस नायिका के शरीर को संघिटत करने वाले पंचभूत धीरे-धीरे निकलते जा रहे हैं। **'वायु'** दीर्घ विश्वासों के द्वारा निकल गई, **जल** तत्व आँसुओं में बह गया, **तेज** भी न रह गया क्योंकि शरीर कांतिहीन हो गया। **पार्थिव** (पृथ्वी) तत्व के निकल जाने से शरीर क्षीण हो गया। अब तो उसके चारों ओर आकाश ही आकाश रह गया हैं अर्थात् चारों ओर शून्य ही दिखाई पड़ रहा है। जिस दिन से श्रीकृष्ण न उसकी ओर मुँह फेर के देखा है और मंद-मंद हँसकर उसके मन को हर दिया है, उसी दिन से उसकी यह दशा हो गई है।

अब तो जीवन में सर्वत्र शून्य व्याप्त है, ऐसा कहते हुए विरह की जो व्यंजना यहाँ की गई है वह अत्यंत मार्मिक बन पड़ी है। देव की विरह विषयक ये उक्तियाँ बिहारी की उन उक्तियो से कहीं अधिक सबल एवं सटीक हैं जिनमें विरहिणी के शरीर के पास ले जाने पर गुलाबजल सूख जाता है और उसके विरह ताप से बचने के लिए माघ की रात्रि में गीले वस्त्र पहनकर सखियाँ पास जो पाती है निश्चिय ही देव बिहारी से कुछ मामलों में श्रेष्ठ हैं।

देव के रीतिग्रंथों पर मम्मट के काव्यप्रकाश, आचार्य विश्वनाथ के साहित्यदर्पण, भानुदत्त की रसमंजरी, केशव की रसिकप्रिया और रहीम के 'बरवै नायिका भेद' का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। शब्द शक्ति विवेचन में वे अभिधा को उत्तम मानते हैं तथा ताप्पर्य नामक एक चौथी शब्दशक्ति की उद्भावना करते हैं। उनके अनुसार—

अभिधा उत्तम काव्य है मध्य लक्षणाहीन।

अधम व्यंजना रस-विरम उलटी कहत नवीन।।

रस क्षेत्र मे देव ने 'छल' नामक नवीन संचारी भाव की उद्भावना की किंतु आचार्य शुक्ल के अनुसार 'छल' का समाहार 'अवहित्था' नामक संचारी भाव के अंतर्गत हो जाता है। नायका भेद का विवेचन भी देव ने अत्यंत सूक्ष्म ढंग से किया है। इस विवेचन पर भानुदत्त को 'रसमंजरी' का प्रभाव साफ झलकता है। अलंकार निरूपण में वे भामह एवं दंडी के ग्रंथों में प्रभावित हैं। देव 'रसवादी' आचार्य थे तथा इसका निर्वाह उन्होंने अपनी काव्य रचनाओं में किया भी है। रीति निरूपण की दृष्टि से कवि देव उतने महत्त्वपूर्ण नहीं है। जितने

कवि के रूप में हैं। उनकी कवित्व शक्ति की तुलना विद्वानों ने बिहारी से करते हुए हिंदी क्षेत्र में एक विवाद खड़ा कर दिया कि देव बड़े या बिहारी? इस विषय के पक्ष-विपक्ष में अनेक पुस्तकें तक लिखी गयी।

देव आचार्य और कवि थे। देव के काव्य में मानव मनोभाव का अत्यंत सूक्ष्मतापूर्वक विश्लेषण किया गया हैं मनोभाव का सजीव चित्र उनके काव्य में मिलता है। प्रेम भाव में मन स्थिति की चंचलता का बड़ा ही रमणीय चित्र इस पद में प्रस्तुत हुआ है।

मूरति जो मनमोहन की मनोमोहिनी के थिर ह्वै थिरकी सी।
देव गोपाल को बोल सुने छतियाँ सियराति सुधा छिरकी सी।
नीके झरोखे ह्वै झाँकि सकै नहिं नैनहिं लाज घटा, घिरकी सी।।
पूरन प्रीति हियै हिरकी खिरकी खिरकीन फिरै फिरकी सी।।

देव की कविता में मात्र संयोग श्रृंगार का मनोरम वर्णन नहीं हे, उनके साहित्य में वियोग की करुणा का हृदयविदारक दृश्य भी मिलता है। सौदर्य वर्णन में उनकी प्रतिभा बेजोड़ है। भाववर्णन का प्रसंग हो, रूपवर्णन का प्रसंग हो अथवा चेष्टा का वर्णन हो, कवि देव, बिंब योजना के माध्यम से उसे कविता में प्रकट करते हैं। बिम्ब विधान के माध्यम से कवि कविता में प्रेम, मिलन, रागानुभूति के अनुभव को बड़े ही सघन रूप में रखते हैं। देव की कविता में छंद की गति, शब्द की वर्णमैत्री और सरसत्ता नाद सौंदर्य को पुष्ट करते प्रतीत होते हैं। अपनी तकनीकी विशेषता और भाव की सरसता के कारण देव की कविता रीतियुग की प्रतिनिधि कविता बन जाती है।

माखन सों मन दूध सों जीवन है दधि सों अधिकौ उरई ठी।
जा छबि आगे सुधाकर छोछिं समेत सुधा बसुधा सब मीठी।
नैनन नेह चुवै कहि 'देव' बुझावत बैन बियोग अँगीठी।
ऐसी रसीली अहीरी अहै कहौ क्यों न लै मनमोहनै मीठी।

12.3.10 भिखारीदास

इन्हें सर्वांग-निरूपक आचार्यों में प्रमुख माना जाता है। इनके द्वारा रचित 'रस सारांश' में रस और रसांगो का तथा '**श्रृंगार निर्णय**' में श्रृंगार के आलंबन नायक-नायिका के भेदों का वर्णन भानुदत्त की 'रसमंजरी' और 'रसतरंगिणी' के आधार पर किया गया है। '**काव्य निर्णय**' में मम्मट, विश्वनाथ जयदेव और अप्पय दीक्षित आदि के ग्रंथों को आधार बनाया गया है। इसमें रस, अलंकार, गुण, दोष और ध्वनि का विवेचन किया गया है। इनका काव्य उत्कृष्ट और ललित है। भाव पक्ष और कलापक्ष का सुन्दर सामंजस्य इनके कवि कर्म की उत्कृष्टता को प्रमाणित करते है, पर आचार्य कर्म में इन्हें पर्याप्त सफलता नहीं मिली। अलंकारों के वर्गीकरण और तुकों के विवेचन में इनकी मौलिकता झलकती है। 'छंदार्णव पिंगल' में संस्कृत-प्राकृत हिन्दी ग्रंथों में सहायता ली गई है। इन्होंने नीतिपरक सुन्दर सूक्तियों की भी रचना की है। रीतिकाव्य में भिखारीदास का महत्त्व कवि और आचार्य दोनों रूपों में है। अलंकार विवेचन के क्रम में उन्होंने अलंकारों को वर्गीकृत करने का प्रयास किया। नायिका भेद पर उन्होंने नई दृष्टि से विचार किया। छंद विवेचन में भी कवि ने मौलिक सूझबूझ का परिचय दिया है। छंद के संदर्भ में इन्होंने प्राकृत और संस्कृत काव्यों का अध्ययन किया। इन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष दिया कि तुक का प्रारंभ अपभ्रंश काव्य से होता है। काव्यांग के निरूपण में भी भिखारीदास का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने छंद, रस, अलंकार, रीति, गुण, दोष, शब्द-शक्ति आदि सब विषयों पर गहराई से विश्लेषण किया है। काव्यांग विवेचन के क्रम में इन्होंने बड़े मनोहर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। भावों की स्वाभाविकता के साथ कलात्मकता का संयोग निम्नलिखित पद में देखा जा सकता है।

नैननि को तरसैये कहाँ लौं कहाँ लगि बिरहागि में तैये।
एक घरी न कहूँ कल पैये कहाँ लगि प्रानन को कल पैये।
आवै यही अब जी मैं विचार रखि चलि सौतिन के गृह जैये।
मान घटे ते कहा घटि है जु पै प्रान पियारे को देखन पैये।।

12.4 रीतिसिद्ध कवि और कविता

रीतिसिद्ध काव्य में काव्यशास्त्रीयता इतनी अधिक है कि लगता है कवि रस अलंकार ध्वनि, ध्वनि, नायक-नायिका भेद आदि के उदाहरण स्वरूप काव्य-रचना कर रहा हो। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे माध्यम मार्ग का काव्य माना है क्योंकि इसमें न तो लक्षण- उदाहरण की आचार्यवादी परंपरा है न ही रीतिमुक्त काव्य का स्वच्छन्द भावावेग ही। इस वर्ग के कवि 'शास्त्रकाव्योमय कवि' माने गए जो रीति से बंधे भी थे और उससे कुछ स्वच्छंद होकर भी चलते थे।

रीतिकाल के सर्वप्रमुख कवि बिहारी की विशेषताओं की स्वतंत्र चर्चा करने के लिए आचार्य मिश्र ने इस काव्य परंपरा को रीतिबद्धकाव्य की श्रेणी से पृथक कर दिया। आचार्य शुक्ल ने मूलत रीतिकालीन कवियों को दो वर्गों में विभाजित किया—प्रथम और प्रमुख वर्ग लक्षणग्रंथकारों का रखा जिनकी संख्या 57 है। दूसरे वर्ग के कवियों को फुटबर शृंगार परक पद्यकार या अन्य प्रकार की रचना करने वाला माना। वास्तव में **'बिहारी'** इसी वर्ग में आते है क्योंकि इन्होंने रीतिग्रंथ की रचना नहीं की, लेकिन शुक्लजी ने इन्हें प्रतिनिधि, रीतिग्रंथकारों के वं वर्ग में रखा है क्योंकि इनका काव्य लक्षणानुसारी है। अंत में प्रतिनिधि कवियों में ही समाहित कर लिए गए। आचार्य मिश्र ने इस गड़बड़ी को दूर करने लिए रीतिसिद्ध कवियों का एक स्वतंत्र वर्ग बना दिया। उन्होंने इस वर्ग के कवियों के लिए स्पष्टीकरण दिया "जिन्होंने रीति की सारी परंपरा सिद्ध कर ली थी अर्थात् रचनाएँ जिन्होंने रीति की बंधी परिपाटी के अनुकूल ही की हैं पर लक्षणग्रंथ प्रस्तुत न करके स्वतंत्र रूप से अपनी रचनाएँ रची है।" आगे वे फिर कहते है, "इस प्रकार के कवियों को, जो रीतिविरुद्ध नहीं और लक्षणग्रंथ से ऐसे भी नहीं बँधे है कि तिलभर भी उससे हट न सकें, भले ही वे रीति की परंपरा को अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाते हो, रीतिसिद्ध कवि कहना चाहिए।" "हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास में ऐसे कवियों को काव्यकवि के वर्ग में रखा गया है।

वास्तव में, रीतिसिद्ध कवियों को आचार्य या कवि-शिक्षक बनने की अभिलाषा नहीं था। इन्होंने अपने काव्यकौशल के प्रदर्शन पर विशेष ध्यान दिया। इनमें स्वानुभूति की प्रधानता मिलती है जिसे अलंकृत शैली में प्रस्तुत किया गया है। यों तो संपूर्ण रीतिकाव्य मुक्तक शैली में निर्मित हुआ है किन्तु रीतिसिद्ध कवियों ने संस्कृत, प्राकृतादि की मुक्तक परंपरा से सीधे प्रभाव ग्रहण किया है। ये कवि विद्यापति, चंडीदास, सूरदास, रहीम, तुलसीदास आदि भाषा कवियों से भी प्रेरित हुए हैं। इनकी काव्य-दृष्टि तत्कालीन सामंती परिवेश से ही निर्मित है। इसलिए इन पर फारसी काव्य का भी प्रभाव पाया जाता है। रीतिसिद्ध काव्य यद्यपि विलासप्रधान है, फलत उसके केन्द्र में नारी का रूपाकर्षण प्रमुख है फिर भी उसका क्षेत्र रीतिबद्ध की अपेक्षा विस्तृत है। इनमें शृंगार के साथ-साथ भक्ति, प्रशस्ति, नीति, ज्ञान-वैराग्य और प्रकृति के आलंबन-उद्दीपक रूपों का भी वर्णन प्राप्त होता है।

12.4.1 बिहारीलाल

बिहारी रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं जिनका जन्म 1595 ई० में ग्वालियर में हुआ था। बिहारी के एकमात्र ग्रंथ का नाम 'बिहारी सतसई' है जिसकी रचना सन् 1662 ई० में संपन्न हुई। बिहारी का देहावसान 1663 ई० में हुआ। बिहारी ने यद्यपि कोई लक्षण ग्रंथ नहीं लिखा तथापि उन्हें रीतिशास्त्र की अच्छी जानकारी थी जिसका उपयोग उन्होंने अपनी सतसई में किया है।

बिहारी की ख्याति का मूल आधार उनका अन्यतम ग्रंथ '**बिहारी सतसई**' है जिसमें कुल मिलाकर 713 दोहे हैं। इस ग्रंथ का निर्माण '**गाथा सप्तशती**', '**अमरुक शतक**', '**आर्या सप्तशती**' की प्रेरणा से हुआ है बिहारी जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। कहा जाता है कि जिस समय बिहारी जयपुर पहुँचे उस समय महाराज जयसिंह अपनी छोटी रानी के प्रेम में इतने आसक्त थे कि राजकाज भूलकर महल से बाहर तक न निकलते थे। तब बिहारी ने यह दोहा लिखकर उनके पास भिजवा दिया—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।

अली कली ही सौं विंध्यौ ओ कौन हवाल।।

दोहे में निहित व्यंग्यार्थ को समझकर राजा जयसिंह तुरंत बाहर निकल आए और राजकाज में संलग्न हो गए। तब से बिहारी का मान बहुत बढ़ गया। राजा ने उन्हें ऐसे ही सरस दोहे बनाने का निर्देश दिया तथा प्रत्येक दोहे के बदले उनहें एक अशर्फी (स्वर्ण मुद्रा) दी जाने लगी।

'**बिहारी सतसई**' मूलत: शृंगार रस से ओतप्रोत मुक्तक काव्य है जिसका प्रत्येक दोहा हिंदी साहित्य का एक-एक रत्न माना जाता है। बिहारी सतसई की **पचासों टीकाएँ** लिखी गई जिनमें से चार-पाँच टीकाएँ अति प्रसिद्ध है। इनके नाम हैं—

1. कृष्ण कवि की टीका जो कविताओं में है।
2. हरिप्रकाश टीका
3. लल्लूजी लाल की लालचद्रिंका
4. सरदार कवि की टीका
5. सुरति मिश्र की टीका

इनके अतिरिक्त '**बिहारी**' नामक ग्रंथ में **पंडित अम्बिकादत्त व्यास** ने बिहारी के दोहों का भाव पल्लवन रोलों छंद में किया है। पंडित परमानंद ने '**शृंगार सप्तशती**' नाम से बिहारी के दोहों का अनुवाद संस्कृत में किया है। मुंशी देवी प्रसाद ने बिहारी के दोहों का अनुवाद उर्दू के शेरों में किया है। '**बिहारी सतसई**' का पाठानुसंधान एवं संपादन ब्रजभाषा मर्मज्ञ बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर ने '**बिहारी रत्नाकर**' नाम से किया है।

मुक्तक कविता में जो गुण होने चाहिए, वे सभी बिहारी सतसई में उपलब्ध होते हैं। "मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती, अपितु इसमें तो रस के ऐसे छीटे पडते हैं कि हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठता है। यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना गुलदस्ता है।" आचार्य शुक्ल ने यह कहकर मुक्तक काव्य की कसौटी का निर्धारण कर दिया है तथा बिहारी सतसई इस कसौटी पर पूर्णत: खरी उतरती है। वे आगे पुन: कहते हैं—'जिस कवि में कल्पना की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समास शक्ति जितनी ही अधिक होगी उतना ही यह मुक्तक की रचना में सफल होगा। यह क्षमता बिहारी में पूर्णरूप से विद्यमान थी।'

बिहारी सतसई के दोहों की प्रशंसा करते हुए किसी ने कहा है—

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।

देखत से छोटे लगै बंधै सकल शरीर।।

बिहारी की रस व्यंजना का पूर्ण वैभव उनकी हाव-अनुभाव योजना में दिखाई पड़ता है। अनुभावों और हावों की ऐसी सुंदर योजना कोई अन्य शृंगारी कवि नहीं कर सका है। कुछ दोहे उल्लेखनीय हैं—

1. बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाई।

सौंह करै भौंहनु हंसै कहै नटि जाइ।।

2. त्रिबली नाभि दिखाइ कर सिर ढकि सकुचि समाहि।

गली अली की ओट के चली भली विधि चाहि।।

3. नासा मोरि नचाइ दृग करी कका की सौंह।

कांटे सी कसकै हिए गड़ी कंटीली भौंह।।

4. ललन चलन सुनि पलन में अंसुआ झलकै आई

भई लखाई न सखिन्ह हू झूठे ही जमुहाइ।।

बिहारी की कविता में भक्ति और नीति का भी सम्यक् समावेश हुआ है। उनके नीति संबंधी कुछ प्रसिद्ध दोहे इस प्रकार हैं—

1. नर की अरु नल नीर की गति एकै करि जोय।

जेतो नीचौ है चलै तेतो ऊँचो होय।।

2. तंत्रीनाद कवित्त रस सरस राग रति रंग।

अन बूड़े-बूड़े तिरें जे बूड़े सब अंग।।

3. आवत जात न जानियतु तेजहि तजि सियरानु।

घरह जंवाई लौं घट्यो खरौ पूस दिनमानु।।

बिहारी की भक्ति भावना में भी उक्ति वैचित्र्य एवं आलंकारिता का समावेश है। उन्होंने लगभग 70 दोहे भक्ति के लिखे हैं। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है—

1. मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय।

जा तन की झांई परै स्यामु हरित दुति होय।।

2. मोर मुकुट कटि काछनी कर मुरली उरमाल।

इहि वानक मो मन बसौ सदा बिहारीलाल।

3. करौ कुवत जगु कुटिलता तजौं न दीन दयाल।

दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगीलाल।

बिहारी की अलंकार योजना भी उच्चकोटि की है। असंगति और विरोधाभास अलंकारों की छटा निम्न दोहों में विद्यमान हैं—

1. दृग अरुझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति।

परति गाठि दुरजन हिए दई नई यह रीति।।

2. या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।

ज्यों-त्यों बूड़े स्याम रंग त्यों-त्यों उज्जलु होय।।

बिहारी के संबंध में यह कहा जाता है कि उन्होंने 'गागर में सागर भर दिया है।' कम शब्दों में अधिक भाव व्यक्त कर सकने की क्षमता को गागर में सागर भरना कहा जाता है। बिहारी के दोहों में व्यंजना सौंदर्य भी विद्यमान है यथा—

स्वारथु सुकृतु न श्रम वृथा देखि विहंग विचारि।

बाज पराए पानि परि तूं पच्छीनु न मारि।।

बिहारी के विरह वर्णन में शारीरिक कृशता एवं विरहताप का अतिशयोक्ति पूर्ण चित्रण हुआ है। आचार्य शुक्ल के अनुसार यह विरह-वर्णन कहीं-कहीं मजाक तक पहुँच गया है। ऐसे कुछ वर्णन निम्न दोहों में है——

1. औंधाई सीसी सुलखि विरह वरनि विललात।

   बिच ही सूखि गुलाबु गौ छींटौ छुई न गात।।

2. इस आवति चलि जात उत चली छ: सातक हाथ।

   चढ़ी हिंडौरै सी रहै लगी उपासन साथ।।

3. आड़े दै आले वसन जाड़े हू की राति।

   साहस कै कै नेह बस सखी सबै ढिंग जाति।।

बिहारी दूरारुढ़ कल्पना के कवि मानते जाते हैं। शुक्लजी के अनुसार बिहारी की कृति का जो मूल्य आंका गया है, उसका कारण उनका शिल्प विधान एवं शब्दों की कारीगिरी हैं, किंतु जो लोग भाव की स्वच्छ निर्मल धारा में कुछ देर मग्न होना चाहते हैं, उनका संतोष बिहारी से नहीं हो सकता। बिहारी का ब्रजभाषा प असाधारण अधिकार था। शब्द और वर्ग उनके दोहों में नगों की भाँति जड़े हैं।

12.5 रीतिमुक्त कवि और काव्य

रीतिमुक्त या स्वच्छन्द धारा के कवि अपने समकालीन रीतिबद्ध कवियों से वर्ण्य विषय और वर्णन प्रणाली में भी भिन्न थे। रीतिबद्ध काव्य में शास्त्रीयता ज्यादा थी। उन्होंने प्राचीन काव्य प्रणाली को अपना आदश माना, जबकि स्वच्छन्द काव्य कर्ता शास्त्रीय चौखटों को अस्वीकार करके आत्मानुभूति के आवेग में रचन करते थे। इनकी रचनाओं में वैयक्तिकता की प्रधानता थी जबकि दूसरे लोग निवैयक्तिक अथवा तटस्थतापूर्वक काव्यशास्त्रीय लक्षणों के उदाहरण प्रस्तुत किया करते थे। ये सामाजिक या दरबारी मर्यादा में बंधकर रचन करने वाले नहीं थे। इस धारा के सभी कवि प्रेममार्ग के पथिक थे। उनका प्रेम स्थूल जगत से उत्पन्न होने वाल था किन्तु अपनी गहनता और व्यापकता में अलौकिक ऊँचाइयों का स्पर्श करने लगता था। अत: उस पर सूफी 'प्रेम की पीर' का प्रभाव तो था ही साथ ही इश्क मजाजी की इश्क हकीकी में परिणति भी थी। इनका प्रेम एकोन्मुख और विषम था। इन कवियों पर इसी कारण फारसी प्रेम-पद्धति का भी प्रभाव पाया जाता है। रीतिबद्ध कवियों का संयोग मांसल और स्थूल था जबकि रीतिमुक्त का संयोग मानसिक। इन कवियों ने संयोग की अपेक्षा वियोग का वर्णन अधिक किया है। रीतिबद्ध कवियों ने प्राय राधाकृष्ण के शृंगार का वर्णन मुक्तकों में किया है जबकि इन कवियों ने मुक्तकों और प्रबंधों दोनों विधाओं को अपनाया है। डॉ० बच्चन सिंह ने माना है कि रीतिबबद्ध कवियों का प्रेम क्रीड़ापरक है जबकि इनका पीड़ा परक। प्रेम गाथाओं के लोक प्रचलित प्रेम में जो स्वाभाविकता और प्राकृतिक पृष्ठभूमि प्राप्त होती है। वह इनकी प्रेमाभिव्यक्ति को जीवंत और प्रामणिक बना देती है। रूप-सौंदर्य का वर्णन वहाँ आलंबन गत ज्यादा है जबकि ये कवि अपने मन (आश्रय) पर पड़े उसके प्रभाव का अंकन मनोयोगपूर्वक करते हैं।

इस धारा के प्रमुख कवि है—घनानंद, बोधा, आलम, ठाकुर और द्विजदेव, किन्तु इनमें आनंद घन या घनानंद का स्थान सर्वोपरि है। इनके काव्य में कवि परंपरा द्वारा स्वीकृत रूढ़ियों का पालन नहीं है। इसीलिए इनकी कविता 'जंग की कठिनाई' से सर्वथा भिन्न है। इनके प्रेम पंथ में 'बौद्धिक चातुरी नहीं है, न ये लुक छिपकर 'प्रेमचौगान' खेलने वाले ही थे। इनका प्रेममार्ग अत्यन्त सरल सीधा और समर्पणप्रधान था। घनानंद ने लिखा — 'अति सूधो स्नेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं। 'ये लोकलाज का साहसपूर्वक तिरस्कार करके अपनी एकनिष्ठता में लीन रहने वाले थे।

रीतिमुक्त कवियों के प्रेम की तुलना भारतीय या विदेशी प्रेमव्यंजना से नहीं की जा सकती क्योंकि इनका प्रेम विशिष्ट है, प्रिय भी विशिष्ट है। संयो और वियोग भी इसीलिए विशिष्ट रूप में ही अभिव्यक्त हुआ है।

आचार्य शुक्ल ने इन कवियों को लक्षणानुसारी रचना करने वाले कवियों से भिन्न माना है। वे लिखते हैं, "पिछले वर्ग के कवि (लक्षणबद्ध काव्य-रचना करने वाले) प्रतिनिधि कवियों से केवल इस बात में भिन्न हैं कि इन्होंने क्रम से रसों, भावों, नायिकाओं और अलंकारों के लक्षण कहकर उनके अंतर्गत अपने पद्यों को नहीं रखा। अधिकांश में ये भी शृंगारी कवि है।" यद्यपि ये रीतिमुक्त थे फिर भी इनके काव्यों पर रीति परपंरा का प्रभाव पाया जाता है। कुछ लोगों ने नायिका-भेद, संयोग-वियोग की विभिन्न स्थितियों का काव्यशास्त्रीय निरूपण इनके काव्यों में भी खोजने की चेष्टा की है।

एक दृष्टि से विचार किया जाए तो यह काव्य रीतिबद्ध काव्य के विरुद्ध स्वच्छन्द वृत्ति के कवियों का विद्रोह दिखाई पड़ता है क्योंकि ठाकुर कवि ने कवि शिक्षा से प्राप्त निर्जीव काव्य प्रणाली के विरोध में ही कहा है—

'डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच, लोगन कबित्त कीबो खेल करि मानो है।'

अर्थात् रीतिबबद्ध कवि ढेले की तरह नीरस शुष्क कविता रचकर संवदेनशील कवियों को चोट पहुँचाते थे। इसी के परिणाम स्वरूप स्वच्छेंदमार्गी कवियों ने सच्ची अनुभूतियों का प्रकाशन अपने काव्य में किया। डॉ. मनोहर लाल गौड़ ने लिखा है, "स्वच्छंदतावादी साहित्य में अभिनवत्व (ताजगी) रहता है क्योंकि उसकी प्रेरणा जीवन से मिलती है। जब साहित्य अपने समवर्ती जीवन से प्रेरणा न लेकर पूर्ववर्ती साहित्य से प्रेरणा लेने लगता है। तब वह क्लासिकल बन जाता है, उसकी अभिनवता क्षीण होने लगती है।" इन कवियों ने लोक-जीवन की मर्यादा का तिरस्कार करके सामान्या या वेश्या के प्रेम का वर्णन किया।

12.5.1 घनानन्द

घनानंद रीतिमुक्त धारा के शृंगारी कवि हैं इसका जनम 1689 ई० और मृत्यु नादिरशाह के आक्रमण के समय 1739 ई० में हुई। ये दिल्ली के बादशाह **मुहम्मदशाह** के यहाँ **मीर मुंशी** थे और जाति के कायस्थ थे। ये '**सुजान**' नामक वैश्या से प्रेम करते थे। एक दिन दरबार के कुचक्रियों ने बादशाह से कहा कि मीर मुंशी साहब गाते बहुत अच्छा है। जब बादशाह ने इन्हें गाना सुनाने को कहा तो ये टालमटोल करने लगे। तब लोगों ने कहा कि ये इस तरह न गाएँगे। यदि इनकी प्रेमिका 'सुजान' कहे तब गाएँगे। वेश्या बुलाई गई और तब घनानंद ने उसकी ओर मुँह करके और बादशाह की ओर पीठ करके गाना सुनाया। बादशाह इनके गाने पर तो प्रसन्न हुआ किंतु इनकी बेअदबी पर इतना नाराज हुआ कि उसने इन्हें शहर से बाहर निकल जाने का हुक्म दे दिया। जब इन्होंने सुजान से अपने साथ चलने को कहा तो उसने इनकार कर दिया। इस पर इन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया और ये वृंदावन आकर निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव हो गए। नादिरशाह के आक्रमण के समय हुए कत्लेआम में ये मारे गए। लोगों ने नादिरशाह के सैनिकों से कहा कि वृंदावन में बादशाह का मीर मुंशी रहता है उसके पास बहुत-सा माल होगा। सिपाहियों ने इन्हें जा घेरा और उनसे 'जर, जर, जर' (अर्थात् धन, धन, धन) कहा तो इन्होंने शब्द को उलटकर रज, रज, रज' कहकर तीन मुट्ठी धूल उन पर फेंकी। सैनिकों ने क्रोध में इनका हाथ काट डाला और इनकी मृत्यु हो गई।

घनानंद की कविता में 'सुजान' शब्द का बारंबार प्रयोग हुआ है जो कहीं तो **कृष्णवाची** है तो कहीं 'सुजान' नामक उस वेश्या के लिए है जो इनकी प्रेयसी थी। घनानंद के लिखे पाँच ग्रंथों का पता चलता है— **1. सुजान सागर, 2. विरहलीला, 3. लोकसार, 4. रसकेलिवल्ली**, और **5. कृपाकाडा**। आचार्य शुक्ल के अनुसार इसके अतिरिक्त इनके कवित्त और सवैयों के फुटकर संग्रह भी मिलते हैं जिनमें 150 से लेकर 400 तक छंद सकलित हैं। डॉ० नगेंद्र के अनुसार, घनानंद के कुछ उपलब्ध कवित्त-सवैयों की संख्या 752 है, पदों की संख्या 1,057 तथा दोहे-चौपाइयों की संख्या 2,354 है।

घनानंद के विषय में अन्य उल्लेखनीय तथ्य इस प्रकार है—

1. प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबांदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाष दूसरा कवि नहीं हुआ।

2. भाषा पर जैसा अचूक अधिकार घनानंद का था वैसा और किसी कवि का नहीं।

3. घनानंद उन विरले कवियों में है जो भाषा की लाक्षणिक पदावली की शक्ति से परिचित है। अ शुक्ल के अनुसार—"भाषा के लक्षण एवं व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं की

4. घनानंद ने यद्यपि संयोग और वियोग दोनों का चित्रण किया है तथापि इनका वियोग वर्णन प्रसिद्ध हैं। घनानंद के वियोग वर्णन अति प्रसिद्ध है। घनानंद के वियोग वर्णन में बिहारी की तरह बाहरी ता नाप-जोख नहीं है अपितु जो कुछ हलचल है, वह भीतर की है।

5. घनानंद अंतर्वृत्तियों के निरूपक कवि हैं। वियोग में हृदय अंतर्मुखी हो जाता है। विरह वेदना में की पीड़ा, छटपटाहट एवं कसक कितनी बढ़ जाती है। इसका पता घनानंद के कवित्त सवैयों मे प्रमुखत चलता है।

6. लाक्षणिक मूर्तिकला एवं प्रयोग वैचित्र्य की जो छटा घनानंद की भाषा में दिखाई पड़ती है, वह ब आधुनिक काल की छायावादी कविता में ही उपलब्ध होती है। अन्यत्र नहीं।

घनानंद की कविता के कुछ सरस उदाहरण प्रस्तुत हैं—

1. अति सुधो सनेह को मारग हैं,
जहं नेकु सयानप बांक नहीं।
तहां सोचे चले तजि, आनुनपौ,
झिझकें कपटी जो निसाँक नहीं।।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ,
इत एक तै दूसरों औंक नहीं।।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हौ लला,
मनु लेहु पै देहु छटाँक नहीं।।

2. परकारज देह को धारै फिरौ
परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ,
सबही विधि सुंदरता सरसौ।
घनआनंद जीवनदायक हौ,
कबौं मेरियौ पीर हिये परसौ।।
कबहूं वा विसासी सुजान के आंगन,
मो अंसुवान कौं लै बरसौ।।

3. एरे वीर पौन तेरो सबै ओर गौन वीरी
तो सो और कौन मनै ढरकौही बानि दै।

जगत के प्रान छोटे-बडे सौ समान, घन

आनंद विधान सुखदान दुखियानि दै।।

जान उजियारे गुनभारे अति मोहि प्यारे

अब ह्वै अमोहो बैठे पीठि पहिचानि दे।

विरह विधा की मूरि, आँखन में राखौ पूरि

धूरि तिन पोयन की हा-हा नैकु आनि दै।।

घनानंद की स्वच्छंदतावादी काव्यधारा का कवि इसलिए कहा जाता है, क्योंकि उन्होंने रीति की बंधी बधाई परिपाटी का अनुकरण न करके हृदय की स्वच्छंद वृत्तियों पर काव्य रचना की।

12.5.2 ठाकुर

हिन्दी के इतिहास में तीन कवि ठाकुर नामधारी हो चुके है जिनमें से दो असनी के ब्रह्मभट्ट थे और एक बुंदलेखंड के कायस्थ। ये तीसरे ठाकुर ही रीतिमुक्त धारा के प्रसिद्ध कवि है। इनकी कविता बड़ी ही सरस और सरल है। इनके स्फुट छंदों के दो संग्रह 'ठाकुर शतक' और 'ठाकुर ठसक' नाम से प्रसिद्ध हैं। ठाकुर द्वारा दी गई काव्य परिभाषा तत्कालीन काव्य पर सटीक लागू होती है। वे कहते हैं–

"मोतिन की सी मनोहर माल गुहै तुक अच्छर जोरि बनावै।

प्रेम को पंथ कथा हरिनाम की उक्ति अनूठी बनाइ सुनावै।

ठाकुर सो कवि भावत मोहि जो राजसभा में बड़प्पन पावै।

पंडित और प्रवीनन को जोइ चित्त हरै सो कबित्त कहावै।"

इनके काव्य में प्रेम के विविध प्रसंगों के साथ ही होली, वसंत आदि के स्वाभाविक वर्णन प्राप्त होते हैं। इन्हें लोकजीवन का अच्छा ज्ञान था इसीलिए इनके काव्य में लोकोक्तियों का व्यंजनामय प्रयोग पाया जाता है। इन्होंने भावों का यथातथ्य चित्रण बोलचाल की भाषा में किया है।

12.5.3 बोधा

बोधा बुंदलेखण्ड के रहने वाले थे। इनका कविता काल सन् 1773 से 1803 ई० तक माना जाता है। घनानंद की भांति इनका भी प्रेम पन्ना दरबार की नर्तकी सुभान से हो गया था। जिसे कारण इन्हें देश निकाला मिला। इस निर्वासन में इन्होंने **'माधवानक्कामकंदला चरित्र'** या **'विरहवारीश'** की रचना की। कवि ठाकुर की तरह ये भी आत्मसम्मानी और मनमौजी थे। फारसी प्रभाव के कारण इनकी रचना कही-कही हल्की हो गई है। 'माधवानलकामकंदला' (विरहवारीश) प्रसिद्ध प्रेमाख्यान पर आधारित है और आलम के इसी नाम के प्रबंध से प्रभावित है। **'इश्कनामा'** इनका दूसरा काव्यग्रंथ है जिसमें प्रेम के महत्व और उसके विविध पक्षों का वर्णन है। रीतिमुक्त कवियों में 'प्रेम की पीर' का चित्रण करने वाले बोधा बहुत ही मर्मस्पर्शी कवि है।

रीति-स्वच्छंद काव्य धारा के अन्तर्गत **आलम, रसखान** और **द्विजदेव** का भी उल्लेख किया जाता है। इन कवियों ने स्वानुभूति के आधार पर काव्य रचना की है। संयोग की अपेक्षा वियोग का वर्णन अधिक होने से स्थूल विलासपूर्ण चित्रण की अपेक्षा सूक्ष्म मानसिक दशाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन इन्हें रीतिबद्ध कवियों से पृथक् करता है। ये सभी 'प्रेम की पीर' से तथा फारसी प्रेम की विषमता से भी प्रभावित हैं। इनकी कल्पना में ताजगी और मौलिकता भी है। स्वच्छंद भाव और अनुभूति के कारण रीतिमुक्त कवि रीतिबद्धता को चुनौती देते हैं। रीति काव्य के जड़ बंधन से उनकी कविता मुक्त है। उनकी कविता चमत्कार प्रियता और रूढ़ उपमान से लदी हुई नहीं है। रीतिमुक्त कवियों के काव्य में नैराश्य का भावावेग है। यह नैराश्य उनके जीवन में संवेदना और आत्मीयता की कमी से उपजा है। संवेदना और आत्मीयता की स्वानुभूति काव्य भाषा को रूढ़ संस्कारों से

मुक्त करती है। वैयक्तिक विशिष्टता से रीतिमुक्त कवियों को सहज ही पहचाना जा सकता है। हर री कवि ने अपनी वेदना और अपने आत्मिक संघर्ष का अंकन काव्य में किया है। इसलिए रीतिबद्ध कवि कृत्रिमता से अलग रीतिमुक्त कविता में जैविक प्रक्रिया का बोध मिलता है।

12.6 शृंगारेत्तर काव्य

रीतिकाल में लक्षण–लक्ष्य परंपरा से मुक्त होकर बहुत से काव्यग्रंथ लिखे गए। आचार्य शु 'रीतिकाल के अन्य कवि' के अंतर्गत स्वच्छदधारा के कवियों के साथ ही उन कवियों का भी उल्लेख कि जिन्होंने आदिकाल–भक्तिकाल की प्रवृत्तियों का विस्तार रीतिकाल में किया है। डॉ० नगेन्द्र द्वारा स 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में संत काव्य, सूफी काव्य वीर'-प्रशस्ति काव्य और नीति वैराग्य आदि प्रवृत्तियों का विस्तार से विवेचन किया गया है। डॉ० भागीरथ मिश्र ने तो शृंरेतर रीतिकालीन काव्य में जी बीच वास्तविक बातों के अनुभव और ज्ञान संग्रह के रूप में राजनीति, कामशास्त्र, शालिहोत्र, ज्योतिष, सामुद्रिक, भोजन शास्त्र, मैत्री, संगीत शास्त्र आदि की रचनाओं की गणना भी की है।

रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्यों के अंतर्गत हमने भक्ति, प्रशस्ति, नीति वैराग्य आदि विषयों की च है। शृंगारेत्तर काव्य के अन्तर्गत उन कवियों/कृतियों का परिचय दिया जाएगा। जिन्होंने अनेक काव्य–विष स्वतंत्र ग्रंथों की रचना की। इनमें से कुछ प्रबंध, कुछ निबंध और कुछ मुक्तक काव्य है। पं० रामचंद्र शु इन काव्यों में सरसता की कमी भी लक्षित की है। किन्तु फिर भी रीतिकालीन साहित्य में इनका अप विशेष स्थान है।

प्रबंध काव्यों में **सबलसिंह** का **महाभारत, गुरू गोविंद सिंह का चंडी चरित्र, लाल कवि छत्रप्रकाश, जोधराज का हम्मीर रासो, गुमान मिश्र** का **नैषध चरित्र, सूदन** का **सुजान चरित्र, देवीदा बैताल पचीसी, चंद्रशेखर** का **हम्मीर उठ, श्रीधर** का **जगनामा, पद्माकर** का **रामरसायन, मधुसूदन का रामाश्वमेघ** आदि की गणना की जाती है। दूसरे प्रकार के प्रबंधों को शुक्ल जी **वर्णनात्मक प्रबंध** क जिनमें दानलीला, मानलीला, जलविहार, वनविहार मृगया, झूला होली, जन्मोत्सव, रामकलेवा आदि का किया गया है। इन्हें काव्य न कहकर शुक्लजी के शब्दों में पद्य कहा जा सकता हैं तीसरे प्रकार के रचि को वे **सूक्तिकार** कहते हैं। इनमें वाग्वैदग्ध्यपूर्ण तथ्य कथन रहता है। इस वर्ग में वृंद, गिरिधर, घाघ वैताल की परिगणना की गई है। चौथे प्रकार में ज्ञानोपदेश और वैराग्य परक पद्यों को रखा गया है। इनमें दृष्टांत आदि अलंकारों के द्वारा विषय को स्पष्ट करने की चेष्टा लक्षित होती है। अन्योक्तियों के भगवत्प्रेम संसार के प्रति विरक्ति और करुणा उत्पन्न की गई है। पाँचवा वर्ग भक्त कवियों का है जो परंपरा के अनुसार ईश्वर के प्रति प्रेम और विनय की रचना करने वाले थे। छठा वर्ग **प्रशस्तिकाव्य** रचन का है जिन्होंने आश्रयदाताओं की युद्धवीरता और दानवीरता का वर्णन किया है। जिन कवियों ने राष्ट्र की प्रशंसा में काव्य रचना की है उन प्रशस्ति काव्य के रचयिताओं को ही कवियश मिल पाया शेष कवि बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध न हो सकी।

12.7 वैराग्य तत्वज्ञानपरक काव्य

रीतिकाल में वैराग्य और तत्वज्ञान को भी महत्व दिया गया था क्योंकि यह अतिशय शृंगारिक मनोवैज्ञानिक परिणाम था। नीतिकाव्य लिखने वाले कवियों ने सांसारिक प्राणियों को प्रबोधने के लिए कथन के साथ ही अध्यात्मकथन भी किया है। ज्ञान-वैराग्य की उक्तियाँ प्राचीनकाल से ही प्राप्त होती है। की क्षणभंगुरता, संसार की असारता, मोह-माया के बंधन से मुक्ति आदि विषयों को अनेक कवियों ने शैली में प्रस्तुत किया है।

इस इकाई में हमने रीतिबद्ध और रीतिमुक्त के साथ-साथ रीतिइतर प्रवृत्तियों का भी संकेत किया इतर प्रवृत्तियों में काव्य परंपरा से प्राप्त भक्ति ज्ञान–वैराग्य नीति और वीर प्रशास्ति के काव्य की गणना क

न सभी काव्य प्रवृत्तियों में रीतिकालीन परिवेश का प्रभाव पाया जाता है। अत: सभी प्रकार के काव्यों में उदात्त नवों और मौलिकता के स्थान पर रुढ़िग्रस्तता और चमत्कार प्रदर्शन की प्रमुखता दिखाई पड़ती है। काव्यरूप की दृष्टि से रीतिकालीन कविताँ मुक्तक प्रधान है। मुक्तकों में जिस प्रकार भक्ति वीर रीति नीति वैराग्य आदि काव्यों की सुदीर्ध परंपरा प्राप्त होती है। उसी की अगली कड़ी रीतिकालीन मुक्तकों में भी मिलती है।

संदर्भित ग्रन्थ

हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य की भूमिका	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास	—	रामस्वरूप चतुर्वेदी
हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन	—	विद्यानिवास मिश्र
साहित्य सहचर	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी पुस्तक साहित्य	—	माताप्रसाद गुप्त
भारतीय वाङ्मय	—	लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	किशोरीलाल
हिन्दी साहित्य का रेखांकन	—	किशोरीलाल
हिन्दी साहित्य विमर्श	—	पं० लाल पु० लाल बक्शी
साहित्य दिशाएँ	—	मृत्युंजय उपाध्याय
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	रामचन्द्र शुक्ल

बोध प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. रीतिबद्ध काव्य के आचार्यों लेखकों का वर्णन कीजिए?
2. रीतिसिद्ध काव्य रीतिमुक्त काव्य और शृंगारोत्तर काव्य की चर्चा कीजिए?
3. रीतिकाल हिन्दी साहित्य के बहुविध विकास विस्तार का युग है, सिद्ध कीजिए?
4. रीतिकालीन कविता की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए?
5. रीतिकालीन कविता का स्वरूप बताते हुए उसके कवियों पर प्रकाश डालिए?
6. रीतिकालीन रीतिबद्ध काव्य की विशेषताओं की चर्चा कीजिए। यह रीतिमुक्त काव्य से किस प्रकार भिन्न थी?
7. रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्य की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
8. रीतिकालीन काव्य की किन-किन विशेषताओं का प्रतिफलन बिहारी की सतसई में प्राप्त होता है? विवेचन कीजिए।
9. रीतिकालीन भक्ति-भावना के स्वरूप का परिचय दीजिए।
10. रीतिकालीन नीतिकाव्य की विशेषताओं का परिचय दीजिए।
11. रीतिकालीन कवियों की भाषा-शैली की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
12. रीतिकालीन रीतिबद्ध काव्य धारा के प्रमुख कवियों का परिचय दीजिए।
13. रीतिकालीन रीतिसिद्ध काव्य धारा की विशेषताओं की चर्चा कीजिए।

14. रीतिकालीन शृंगारेतर काव्य प्रवृत्तियों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. 'रीतिबद्ध काव्य मुख्यत: शास्त्रीय स्वरूप पर आधारित है।' इस विषय पर अपने विचार प्रकट कीजि
2. केशवदास कौन थे? उनकी रचना के नाम तथा समय का विवरण दीजिए।
3. भूषण वीररस के कवि थे। सोदाहरण उत्तर दीजिए।
4. चिंतामणि त्रिपाठी का साहित्यिक परिचय दीजिए।
5. मतिराम की कविता में रस परिपाक का मूल्यांकन कीजिए।
6. बिहारीलाल का जीवन परिचय देते हुए साहित्यिक परिचय दीजिए।
7. 'घनानन्द की कविता में शृंगार रस की प्रधानता है।' इस कथन की पुष्टि कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. रीतिकाल में जो कविता प्राप्त होती है उनको किन वर्गों में विभक्त किए गए हैं?
2. निम्नलिखित रचनाओं के कवि का नाम लिखिए।
   (क) विज्ञानगीता (ख) शिवचौपाई
   (ग) चन्द्रलोक (घ) पद्माभरण
   (ङ) गंगलहरी (च) छंदमाला
3. 'फूलमंजरी' किसने और किस शासक के आश्रय में लिखी गई?

इकाई (Unit)

13

आधुनिक साहित्य की पृष्ठभूमि

संरचना

13.1 उद्देश्य
13.2 प्रस्तावना
13.3 आधुनिक काल की परिभाषा
13.4 आधुनिक काल से पूर्व गद्य की अवस्था
13.5 ब्रजभाषा गद्य
13.6 खड़ी बोली का गद्य
13.7 हिंदी साहित्य के संदर्भ में आधुनिक काल
13.8 प्रेस की स्थापना
13.9 आधुनिक काल की परिस्थितियाँ
13.10 नए उद्योगों की स्थापना
13.11 आधुनिक शिक्षा और बौद्धिक वर्ग
13.12 हिंदी भाषा और गद्य का उदय
13.13 समाज सुधार और स्त्री-स्वातत्र्य
13.14 स्त्री शिक्षा का अभियान
बोध प्रश्न

13.1 उद्देश्य

आधुनिक हिन्दी साहित्य का आंरभ उन्नीसवी सदी के मध्य से माना जाता है। यह काल भारतीय इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण है। 1857 की असफल क्रान्ति के बाद भारत में अंग्रेजी सत्ता पूरी तरह स्थापित हो चुकी थी। अंग्रेजी सत्ता की स्थापना और विस्तार के साथ एक नये तरह का भारत भी बन रहा था। सामंती भारत समाप्त हो रहा था तो औपनिवेशिक दासतो साथ पूंजीवाद समाज का भी निर्माण हो रहा था। अंग्रेजों ने जिस आधुनिक शिक्षा की शुरुआत की उसने भारत के नये बुद्धि जीवी वर्ग को अपने अतीत वर्तमान और भविष्य के बारे में सोचने को प्रेरित किया। आधुनिक साहित्य का सम्बन्ध इन्हीं परिवर्तनों से है। आप इस इकाई में इस बारे में अध्ययन करेंगे।

- हिंदी साहित्य के संदर्भ में आधुनिक काल का परिचय प्राप्त करना।
- हिंदी भाषा और गद्य के उदय से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक काल की कौन-सी कारक प्रवृत्तियाँ थी जिसने गद्य लेखन का आरम्भ किया।
- आधुनिक काल के विविध सुधारको की चर्चा कर सकेंगे।
- हिंदी भाषा और साहित्य की दृष्टि से यह काल संक्रमण का है।
- स्त्री स्वातन्त्र्य के अन्तर्गत चल रहे अभियानों को समझ सकेंगे।
- बांग्ला, मराठी के लेखन का प्रभाव कैसे हिंदी पर पड़ा है।

13.2 प्रस्तावना

आधुनिकता एक नवीन प्रवृत्ति है। जो निरंतरता का बोध कराती है। जो नया है वह आधुनिक हो जाता है, नयी पीढ़ी के लिए। आधुनिक काल वस्तुत: आधुनिक इसलिए है की भारत में ब्रिटिशों की नयी शासन पद्धति आयी और ब्रिटिशों के द्वारा नये साधनो, संस्थाओं का विकास हुआ। इन नये साधनों में डाक, रेल आदि है तो संस्थाओं में स्कूल, कॉलेज आदि। परिणामत: देश में जागरण का दौर आया। साहित्य में भी। कविता राजदरबार की कामिनी से निकलकर जनता के सुख-दुख से जुड़ी। और साहित्य के केंद्र में आम-आदमी आया। आम-आदमी की ठेठ सामान्य भाषा खड़ीबोली भी आयी। कविता की प्रकृति और भाषा दोनों ने नया रूपाकार ग्रहण किया। काव्य के स्थान पर गद्य का अविर्भाव बड़ा क्रांतिकारी रहा क्योंकि बाद में काव्य की भाषा गद्य का रूप धारण करती गई। आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल में हिन्दी की बोली भाषाओं का साहित्य, हिन्दी का साहित्य कहा गया परंतु आधुनिक काल में विशुद्ध खड़ीबोली साहित्य की भाषा बनी। अमीर खुसरों तथा कबीर की कविता से निकलकर खड़ीबोली अंग्रेज अधिकारी, ईसाई धर्मप्रचारक तथा आधुनिक प्रेस में पहुँची। सन् 1800 ई० में कलकत्ता के फोर्ट विलयम कॉलेज की स्थापना के बाद उर्दू और हिन्दी को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। डॉ० जॉन गिलक्राईस्ट ने भारत में प्रशासन चलाने के लिए आने वाले ब्रिटिश अधिकारियों को हिन्दी पढ़ाना प्रारंभ किया, इसी कॉलेज में उन्होंने यह कार्य करने हेतु दो हिन्दी अध्यापकों को नियुक्त किया। लल्लूलाल और सदल मिश्र। इनके अतिरिक्त खड़ीबोली गद्य को विकसित करने में मुंशी सदासुखलाल नियाज तथा इंशाअल्ला खां का योगदान उल्लेखनीय है। इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी कहानी' प्रथम हिन्दी कहानी हैं जो मौलिक एवं आदर्श कहानी है। ईसाई प्रचारकों ने अपने धर्म प्रचार हेतू बाईबल का अनुवाद हिन्दी में किया। इनके द्वारा प्रेस की स्थापना हो चुकी थी इसी का लाभ लेते हुए राजाराम मोहन राय ने 'बंगदूत', पं. जुगल किशोर शुक्ल ने 'उदंत मार्तण्ड' जो हिन्दी का प्रथम समाचार पत्र भी है, को चलाया। अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध इनका उपयोग करते हुए, प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन भी चलाया गया। अंग्रेजों की स्वार्थी, शोषण परक नीतियों को उघाड़कर बुद्धिजीवियों ने सामान्य जनता को जगाया। लोगो में असंतोष, विद्रोह का भाव पनपने लगा और लोग एवं बुद्धिजीवी, प्राचीन भारत का गौरव गान करते हुए देश की वर्तमान शासन व्यवस्था को समझकर स्वतंत्रता, अधिकार और स्वशासन की माँग करने लगे।

पश्चिम के सम्पर्क में आने के बाद सामाजिक मूल्य, रुढ़ियाँ, जड़ परंपरा, अंधश्रृद्धा, अंधविश्वास आदि में परिवर्तन की दृष्टि विकसित होने लगी। स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह का समर्थन होने लगा तो बालविवाह, सती प्रथा, जातियता का विरोध कर स्वातंत्र्य, बंधुता, समता व भाईचारे के मूल्यों को समाज में विकसित किया जाने लगा। परिणामस्वरूप अनेक सामाजिक आंदोलन उभरकर आये। पूंजीवादी, सामंतवादी तथा विषमतामूलक व्यवस्था को निकालकर लोकतांत्रिक एवं समतामूलक व्यवस्था को लाने के लिए सुधारकों द्वारा प्रयास किये गये। आर्य समाज का एकेश्वरवाद और छुआछुत विरोध, हिन्दू धर्म पुनर्उत्थान, सुधार की भावना से ही उपजे है। यह स्पष्ट है की भारत एक नई अंगड़ाई ले रहा था, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतक दृष्टि से। शोषण एवं वर्चस्व की व्यवस्था को उखाड़कर गतिशील, एवं जनहितकारी व्यवस्था को लाना श्रेयस्कर ही रहा है। इस दृष्टि से आधुनिकता ने भारत देश के अंग-अंग को झकझोरा और उसका नवनिर्माण किया।

13.3 आधुनिक काल की परिभाषा

प्रत्यक्ष, परोक्ष रूप में ब्रिटिश शासन व्यवस्था, ईसाई, धर्म प्रचार इसके कारक बने हैं। आधुनिक काल क्यों कहा जाता है? इसके संबंध में विद्वानों ने अपने मत रखे हैं—

डॉ. नगेन्द्र ने आधुनिक काल को दो अर्थों में वैशिष्टपूर्ण मानते है, 'एक मध्य काल से भिन्नता और दूसरा नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण के कारण इस काल को आधुनिक काल माना जाता है।'

1. पुनर्जागरण काल (भारतेंदु काल) 1857-1900
2. जागरण या सुधार काल (द्विवेदी काल) 1900-1918

3. छायावाद काल 1918-1938

4. छायावादोत्तर काल

(क) प्रगति-प्रयोग काल 1938-1953

(ख) नवलेखन काल 1953

शुक्लजी ने आधुनिक काल की समय सीमा (1900 सं०) 1813 मानी है।

हुकुमचंद राजपाल : 'यह काल किसी प्रवृत्ति विशेष अथवा काव्यधारा का सूचक न होकर विविध धाराओं एवं काव्यरूपों के विकास का युग है।'

मध्यकालीन जड़ता को तोड़ते हुए आधुनिक काल का साहित्य मनुष्य के बृहत्तर सुख-दुख के साथ पहली बार जुड़ गया और उनकी नयी संवेदना की अभिव्यक्ति नये छंद-बन्ध में करने लगा। घोर श्रृंगारिकता एवं छंदबद्धता से कविता मुक्त हुई। ब्रजभाषा का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया। चिन्तन धार में परिवर्तन आया। बौद्धिकता के साथ तर्क प्रधानता एवं वैज्ञानिकता ने कला, धर्म, दर्शन साहित्य, चित्र के प्रति नये दृष्टिकोण का विकास किया। पारलौकिकता का स्थान इहलौकिकता ने ले लिया। और साहित्य के केंद्र में सामान्य मनुष्य की भाव-भावना, संवेदना, सुख-दुख, आचार-विचार, मूल्य आदि आये। राजा केंद्रित आदिकाल से ईश्वर केंद्रित भक्तिकाल की यात्रा करते हुए फिर दरबारी संस्कृति चित्रण से भरा रीतिकाल समाप्त होकर मानवीय चिंताओं, चिन्तन को साहित्य में लाने का श्रेय आधुनिक कालीन साधनों, जैसे, रेल, टपाल, सड़कें आदि के साथ यंत्रयुग की शुरुआत को जाता है। अर्थात् वैज्ञानिक दृष्टिकोण को जाता है।

जिसमें सामाजिक पुर्नरचना के लिए योगदान देने वाले राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस के योग्यतम शिष्य विवेकानंद, केशवचंद्र सेन, ॲनी बेझंट, महात्मा फुले, डॉ० बाबासाहेब आबेडकर जैसे समाज सुधारकों एवं देश निर्माताओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उनके आंदोलनों ने कला, साहित्य एवं संस्कृति को प्रभावित किया है। इस अर्थ में हिंदू धर्म में पुनर्जागरण का सुधार लाने की भावना हिन्दी ने साहित्य को भी नयी दिशा दी यह स्वीकार्य होगा।

"सामंतवादी एवं पूंजीवादी टकराहट के बाद सामंतवादी ताकतें प्राय: समाप्त हुई" और देश के नये वर्ग एवं नये अंग्रेजी शासकों' ने "इस देश की परम्परा को समझकर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का नवीनीकरण किया" इसी कारण सामान्य मनुष्य एवं उसकी सामान्य भाषा द्वारा नये गद्य-पद्य का अविर्भाव इस काल में संभव हो पाया। शायद यही कारण है कि आधुनिक साहित्य वैविध्यपूर्ण, बहुमुखी एवं प्रतिभामुखी साहित्य है। हिन्दी साहित्य नये प्रश्नों, विचारों, मुल्यों, दिशाओं, भाषा को स्थापित करता हुआ अब तक विकसित होता आ रहा है या बदलाव कोई युं ही नहीं आया है इसके पीछे भारतवर्ष में बदलने वाली सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, श्रमिक एवं शैक्षिक पृष्ठभूमी कारगर रही है। यह बदलाव लाने का कार्यदायित्व जितना अंग्रेजों का उतना ही पश्चिम के संपर्क में आये भारतीय सुधारकों का भी रहा है। वस्तुत: इस बात को स्वीकारा जाना चाहिए कि आधुनिक भारत का निर्माण एवं विकास अंग्रेजों की बदोलत हुआ हैं वह भारत में नहीं आते तो नयी शिक्षा पद्धति भारत में न होती, न ही नयी सोच पैदा होती। यही कारण है कि आधुनिक काल के पुरोधा साहित्यकार भारतेन्दु अपने साहित्य में यथा अवकाश अंग्रेजों की कुछ नीतियों की प्रशंसा करते दिखाई देते है, तो उनके द्वारा होने वाले शोषण का विरोध।

आधुनिक काल के साहित्यिक विवेचन से पहले उक्त समय कि परिस्थितियों को जानना जरूरी होगा।

13.4 आधुनिक काल से पूर्व गद्य की अवस्था

आधुनिक काल के पूर्व हिन्दी का अस्तित्व किस परिमाण और किस रूप में था, संक्षेप में इसका विचार कर लेना चाहिए। अब तक साहित्य की भाषा ब्रजभाषा ही रही है, इसे सूचित करने की आवश्यकता नहीं। अत:

गद्य की पुरानी रचना जो थोड़ी सी मिलती है। वह ब्रजभाषा ही में। हिन्दी पुस्तकों की खोज में हठयोग, ब्रह्मज्ञा आदि से सम्बन्ध रखने वाले कई गौरखपंथी मिले है, जिसका निर्माणकाल संवत् 1407 के आसपास है। एक पुस्तक गद्य में भी है, जिसका लिखने वाला 'पूछिवा', 'कहिबा' आदि प्रयोगों के कारण राजपूताने का निवासी जान पड़ता है। इसके गद्य को हम संवत् 1400 के आसपास के ब्रजभाषा गद्य का नमूना मान सकते हैं।

श्री गुरू परमानन्द जिनको दंडवत है। कैसे परमानंद, आनन्दस्वरूप हैं सरीर जिन्हि को, जिन्हि के नित्य तें शरीर चेतन्नि अरु आनन्दमय होतु है। मैं जु हाँ गौरिष सो मछंदरनाथ को दंडवत करत हौ। हैं केस ते मंछदरनाथ। आत्मज्योति निश्चत है अंत: करन जिनके अरू मलद्वार तैं छह चक्र जिनि नीकी तरह जानैं।

इसे हम निश्चयपूर्वक गद्य का पुराना रूप मान सकते हैं। साथ ही यह भी ध्यान होता है कि यह किसी संस्कृत लेख का 'कधंभूती' अनुवाद न हो। चाहे जो हो, है यह संवत् 1400 के ब्रजभाषा गद्य का नमूना।

13.5 ब्रजभाषा गद्य

बिट्ठलनाथ—इसके उपरान्त फिर हमें भक्तिकाल में कृष्णभक्ति शाखा के भीतर गद्य ग्रन्थ मिलते हैं। श्री बल्लभाचार्य के पुत्र गोसाई बिट्ठलनाथ जी ने 'शृंगाररस मंडन' नामक एक ग्रंथ ब्रजभाषा में लिखा। उनकी भाषा का स्वरूप इस प्रकार है—

प्रथम की सखी कहतु है। जो गोपीजन के चरण विषै सेवक की दासरी कारे जो इनको प्रेमामश्त में डूबे के इनके मंद हास्य न जीते हैं। अमृत समूह ता करि निकुंज विषै शृंगाररस श्रेष्ठ रसना कीनो सो पूर्ण होत भई।।

यह पद्य अपरिमार्जित और अव्यवस्थित है। पर इसके पीछे दो और सांप्रदायिक ग्रन्थ लिखे गये जो बड़े भी हैं और जिनकी भाषा भी व्यवस्थित और चलती है। बल्लभ संप्रदाय में इनका अच्छा प्रसार है। इनके नाम हैं—'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णों की वार्ता'। इसका रचनाकाल विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है। 'दौ सो बावन वैष्णवों की वार्ता' तो और भी पीछे औरंगजेब के समय के लगभग लिखी प्रतीत होती है। इन वार्ताओं की कथाएँ बोलचाल की ब्रजभाषा में लिखी गयी है, जिसमें कहीं-कहीं बहुत प्रचलित अरबी और फारसी शब्द भी निसंकोच रखे गये हैं।

13.6 खड़ी बोली का गद्य

देश के भिन्न-भिन्न भागों में मुसलमानों के फैलने तथा दिल्ली की दरबारी शिष्टता के प्रचार के साथ ही दिल्ली की खड़ी बोली समुदाय के परस्पर व्यवहार की भाषा हो चली थी। खुसरों ने विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में ही ब्रजभाषा के साथ-साथ खालिस खड़ी बोली में कुछ पद्य और पहेलियाँ बनायी थीं। औरंगजेब के समय से फारसी मिश्रित खड़ी बोली या रेखता में शायरी भी शुरू हो गयी और उसका प्रचार फारसी पढ़े लिखे लोगों में बराबर बढ़ता गया। इस प्रकार खड़ी बोली को लेकर उर्दू साहित्य खड़ा हुआ, जिसमें आगे चलकर विदेशी भाषा के शब्दों का मेल भी बराबर बढ़ता गया और जिसका आदर्श भी विदेशी होता गया।

भोज के समय से लेकर हम्मीरदेव के समय तक अपभ्रंश काव्यों की जो परंपरा चलती रही उसके भीतर खड़ी बोली के प्राचीन रूप की भी झलक अनेक पद्यों में मिलती है, जैसे—

भल्ला हुआ जु मारिया, बहिणि! म्हारा कुंत।

अड़बिहि पत्ती, नइहि जलु तो बिन बूहा हत्थ।

सोउ जूहिद्विर संकट पाआ। देवक लेखिअ कोण मिढ़ाआ?

उसके उपरान्त भक्तिकाल के आरी में निर्गुण धारा के संत कवि जिस प्रकार खडी बोली का व्यवहार अपनी सधुक्कड़ी भाषा में किया करते थे, उसका उल्लेख भक्तिकाल के भीतर हो चुका है। कबीरदास के ये वचन—

कबरी मन निर्मल भया जैसा गंगा नीर।
कबीर कहता जात हूँ, सुनता है सब कोई।
राम कहे भला होयगा, नहितर भला न होइ।।
आऊँगा न जाऊँगा, मरुँगा न जीऊँगा।।
गुरु के सबद रम रम रहूँगा।

13.7 हिन्दी साहित्य के संदर्भ में आधुनिक काल

आधुनिक काल में साहित्य में जो परिवर्तन हुए उसके कारण उस समय के समाज में निहित है यह हम कह चुके है। "आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास नामक अपनी पुस्तक में डॉ० श्रीकृष्ण लाल ने इस परितर्वन के तीन मुख्य कारण माने है। ये है: 1. भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना, 2. पश्चिमीय विचारों तथा भवो का आयात, और 3. अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव (तृतीय संस्करण, 1952) सन् 1757 ई० में प्लासी की लड़ाई में अंग्रेजों की जीत ने भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना की नींव डाली। दिल्ली में मुगल सत्ता कमजोर पड़ चुकी थी। देश के विभिन्न भागों में स्वतंत्र सत्ताएँ स्थापित हो गई थी। ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए इनको पराजित करना मुश्किल नहीं था। उनकी रणनीति यह रही कि वे एक प्रांत के शासक के विरुद्ध दूसरे प्रांत की मदद करते थे और बाद में उसे भी अपने अधीन कर लेते थे। इस प्रकार 1857 ई० तक उन्होंने भारत के काफी बड़े हिस्से पर अपना अधिकार कर लिया। 1857 ई० में हुए प्रसिद्ध विद्रोह में सामंती शासकों के अंतिम विरोध को भी कुचल दिया गया। लेकिन इसके साथ ही ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ से निकल कर भारत का शासन सीधे इंग्लैंड की राजसत्ता के हाथ में आ गया।

13.8 प्रेस की स्थापना

विद्वानों ने इस संदर्भ में दो बातों की तरफ खास तौर पर ध्यान दिया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस परिवर्तन को रेखांकित करते हुए लिखा है "वस्तुत: साहित्य में आधुनिकता का वाहक प्रेस है और उसके प्रसार-प्रचार के सहायक है, यातायात के समुन्नत साधन पुराने साहित्य नये साहित्य का प्रधान अंतर यह है कि पुराने साहित्यकार कि पुस्तकें प्रचारित होने के अवसर कम पाती थी। राजाओं की कृपा, विद्वानों कि गुणग्रहिता, विद्यार्थियों के अध्ययन में उपयोगिता, इत्यादि अनेक बातें उनके प्रचार कि सफलता का निर्धारण करती थी प्रेस हो जाने के बाद पुस्तकों के प्रचारित होने का कार्य सहज हो गया और फिर प्रेस के पहले पद्य कि बहुत उपयोगिता नहीं थी। प्रेस होने से उसकी उपयोगिता बढ़ गई और विविध विषयों की जानकारी देने वाली पुस्तकें प्रकाशित होने लगी। वस्तुत: प्रेस ने साहित्य को प्रजातांत्रिक रूप दिया। समाचार पत्र, उपन्यास, आधुनिक ढंग के निबंध और कहानियाँ सब प्रेस के प्रचार के बाद ही लिखी जाने लगी। अब साहित्य के केन्द्र में कोई राजा या रईस नहीं रहा बल्कि अपने घरों में बैठी हुई असंख्य अज्ञात जनता आ गई। इस प्रकार प्रेस ने साहित्य के प्रचार में उसकी अभिवृद्धि में और उसकी नई-नई शाखाओं के उत्पन्न करने में भी योग दिया"। द्विवेदी जी ने अपने इस ग्रंथ में इस बात को रेखांकित किया है कि पहले के राजा, नवाब और रईस लोगों की तरह अंग्रेजो ने साहित्य और कला के प्रोत्साहन के लिए कुछ नहीं किया। लेकिन दूसरे ढ़ंग से उन्होंने "हिन्दी सभ्यता और संस्कृति के उद्धार और स्वयं उनके शब्दों में, "इतिहास और पुरातत्व के शोध में, प्राचीन भारतीय साहित्य और धर्म के वैज्ञानिक अध्ययन में और नई-पुरानी भारतीय भाषाओं के वैज्ञानिक विवेचन में यूरोपियन पंडितों ने बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया"। उनका मानना है कि आगे के हिन्दी साहित्य के लेखन पर भी इसका बड़ा गहरा असर हुआ।

13.9 आधुनिक काल की परिस्थितियाँ

साहित्य युग विशेष से प्रभावित होता है इस मत को विद्वान स्वीकृत करते हैं और उसी कारण साहित्य में नयी प्रवृत्तियों का विकास होता है। इसके मूल में देशकाल की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वह परिवर्तन का

साक्षी होता है और उसका प्रभाव ग्रहण करता है साहित्य एवं साहित्यकार। उक्त कालखंड बदलने वाली परिस्थितियों को जानना-समझना जरूरी है।

13.9.1 राजनीति परिस्थिति

कई विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के आधुनिककाल का प्रारंभ 1900 ई० वि. स्वीकारा है। किन्तु यह तब (सन् 1757) से ही आरंभ हो चुका था। जब बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को अंग्रेजों के कंपनी सरकार ने प्लासी के युद्ध में पराजित कराया था और संपूर्ण बंगाल पर एकाधिपत्य स्थापित किया था। कंपनी की सत्ता प्रस्थापित होने के बाद अंग्रेज अधिकारियों के अनगिनत अत्याचार भारतीयों पर बढ़े। परिणामस्वरूप भारतीय जनता में असंतोष फैलने लगा? 1854 में झाँसी को खालसा करने के बाद अंग्रेजों की कुटिलता का परिचय दृढ़विश्वास के रूप में भारतीय जनता के मन में बढ़ा। चरबी वाले करतुसों ने भारतीय सैनिकों के मन को ठेस पहुँचाई। अत: 1857 में भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम शुरू हुआ। लगभग एक वर्ष के भीतर-भीतर इस ब्रिदोह को दबा दिया गया और ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन खत्म करके सीधा ब्रिटिश सरकार का शासन भारत पर शुरू हुआ।

महारानी विक्टोरिया के डलहौजी के अन्यायपूर्ण नीति का विरोध भारतीयों के लिए नये युग जीवन की शुरूआत रही। यह उनके मन की सुखद भावना थी। इसलिए उसके मृत्युपरांत भारतीयों ने दुख प्रकट किया। 19वीं शती के अंत में अंग्रेजी राज्य के प्रति भक्ति एवं समर्पण का भाव भारतीयों में रहा। उनमें सुधार लाने के लिए प्रयास किये गये। परंतु अंग्रेजी सत्ता का दुर्दैव की वे अपनी अन्यायपूर्ण नीति को छोड़ नहीं पाये। उनके द्वारा होने वाला आर्थिक शोषण और टैक्स लगाने के परिणाम स्वरूप भारतीयों में विद्रोह का भाव बढ़ता गया। प्रार्थनाओं, नेमस्त मार्गों से अंग्रेज सरकार पर कुछ भी परिणाम नहीं हुआ और राजनैतिक राज्यप्राप्ति की आकांक्षा भारतीयों में बलवती हुई।

इसी दरम्ययान 1884 में भारतीय राष्ट्रीय काँगेस की स्थापना हुई और स्वाधीनता आंदोलन के लिए एक मंच और संगठनात्मक कार्यक्रम प्राप्त हुआ। जनता बड़े उत्साह में आयी। लोकमान्य तिलक का अविर्भाव हुआ और अंग्रेजी सत्ता को हटाने का भाव बल पकड़ने लगा। इसी समय अंतराष्ट्रीय राजनीतिक में कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई। जैसे इटली के स्वतंत्रता युद्ध, आयरलैंड के होमरूल आंदोलन तथा फ्रांस की राज्यक्रान्ति जिसका प्रभाव भारतीयों के मन पर पड़ा। क्रान्तिकारी संस्था एवं संगठनों का विकास होने लगा। स्वाधीनता की भावना तीव्रतर होने लगी। जिसका प्रभाव भारतेन्दु के साहित्य में प्रतिबिंबित है।

सन् 1905 में नरम निती छोड़ गरम निति ने स्वराज हमारा जन्मसिद्ध हक है का नारा दिया। बंगाल का विभाजन भारतीयों के संदेहास्पद लगा और ब्रिटिश नीति की प्रतिक्रिया स्वरूप राष्ट्रीय भावना एवं ब्रिटिशों की भारत विरोधी नीति को जनता ने जाना। जनता इसी समय प्राचीन भारतीय संस्कृति की और आकृष्ट होने लगी। वर्तमान स्थितियों के प्रति वे क्षोभ व्यक्त करने लगे (पृ० 306 खन्डेलवाल) नव नेतृत्व, कवियों ने दासता की बेडियों में जकड़ी जनता को अतीत का स्मरण दिलाकर स्वतंत्र व्यवस्था स्थापित करने के लिए उन्हें प्रेरित किया। एक ऐसे वर्ग में जागृति की लहर पैदा कर दी गयी जो शोषित-पीड़ित, दलित, किसान, मजदूर था। कवियों नें भी उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की। युग विशेषता के रूप में राष्ट्रीयता और मानवतावाद की लहरें सामान्यों में फूट पड़ी। ब्रिटिशों को समय-समय पर सुधारणा कानून लागू करने पड़े 1901 का मार्ले मिन्टो कानून इसी का परिणाम था परंतु इसी कानून ने 1857 के समय एकता का प्रदर्शन करने वाले हिन्दु-मुस्लिमों का अलग प्रतिनिधित्व का मामला उठाकर विरोध डाला। अनेक प्रयासों के चलते फिर 1916 में एकता का समझौता पारित हुआ। ठीक इसी समय प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया। युद्ध में पूरी प्रतिबद्धता के साथ भारतीयों ने अंग्रेजों की मदद की। किन्तु 1916 के रोलेक्ट एक्ट ने भारतीय जनता के अधिकार छिन कर उनके साथ पक्षपात किया। यही कालखन्ड आधुनिक हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है।

रोलेक्ट एक्ट में एक ओर सुधार का भाव था तो दूसरी ओर दमन नीति। जिसका भारतीय जनता ने विरोध किया। सन् 1920 में तिलक युग का अन्त हो गया, गांधीयुग का आर्विभाव हुआ। और राजनीतिक नेतृत्व पटल पर गाँधी अवतरित हुए। गांधीजी शायद 1857 के विद्रोह का सूक्ष्म अध्ययन कर के इस निष्कर्ष पर आये थे की सामन्य जनता को राजनीतिक स्वाधीनता आंदोलन में उतरना जरूरी लगा। ग्राम उद्धार का कार्यक्रम देश भर में छेड़ कर मध्यवर्ग को आंदोलन में उतारने में वे सफल हो गये। गांधीजी की यह सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि रही है। असहयोग, सविनय कायदेभंग, अहिंसा, जैसे हथियारों से आजादी का लक्ष्य तय किया। भारतीय कांग्रेस के बुद्धिजीवियों ने संपूर्ण स्वराज्य की माँग कर औपनिवेशिकता राज्य की नींव हिला दी। जनता ने राष्ट्रीयता में भावना का पूरा विकास हो चुका था। असहयोग दो स्तरों पर था। एक विदेशी शासन का विरोध दूसरा स्वदेशी वस्तु का अंगीकरण। खादी राष्ट्रीय भावना का प्रतीक बनी और गांधी ने मानववादी मूल्य जैसे अहिंसा, सत्याग्रह, अछुतोद्धार, हिन्दु-मुस्लिम एकता, ग्रामोद्धार, जमींदारी उन्मूलन आदि का बीजारोपण भारतीय मन में किया। निसंदेह रूप से गांधी ने आजादी के हिंसक आंदोलन को रचनात्मक आधार प्रदान किया। जो देशव्यापी चेतना को मुखारित कर राष्ट्रीय एकता एवं स्वतंत्रता आंदोलन को निखारा गया है।

इसी युग में बंगाल के कवि कुलगुरु रविन्द्रनाथ ठाकुर साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिशीलता एवं विश्वमानववाद की संकल्पनाओं को लेकर आए। जिन्होंने भारतीय संस्कृति एवं आध्यात्मिकता का प्रचार किया। कवि रविन्द्र और गांधीजी इस युग के दो सूर्य थे। जिन्होंने युग को प्रभावित ही नहीं किया विप्लावित भी किया।

स्वतंत्रता संग्राम बड़े जोर-शोर से चल पड़ा। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद स्वतंत्रता का सपना अधिक मुखर हुआ। सन् 1942 में भारत छोड़ों का नारा गुंज उठा। गांधी ने 'करो या मरो' का नारा जनता में फैलाकर उन्हें आजादी पाने के लिए प्रेरित किया। इसी समय ब्रिटेन में भी सत्ता परिवर्तन हुआ और वहाँ के उदार दल की सरकार ने भारतीय स्वतंत्रता के प्रति सहानुभूति पूर्ण रवैया व्यक्त किया। इसी युग में समाजवादी विचारधारा का विकास हुआ। पुंजीवाद के बढ़ने से वर्ग-संघर्ष बढ़ रहा था। रविन्द्र आदि के कारण मार्क्सवाद की विचारधारा भारत वर्ष में फैलने लगी थी। जेलभरो आंदोलन बढ़नें लगे थे इन सारे घटनाक्रम के चलते 15 अगस्त 1947 में देश को आजादी प्राप्त हुई।

स्वतंत्रता के बाद मजदूरों-कृषकों में नव चैतन्य आया। एकता के साथ अन्याय को दूर करने के लिए आंदोलन होने लगे। इस समय मात्र विद्रोह का भाव किसी विदेशी सत्ता से नहीं था बल्कि स्वतंत्र स्वदेशी सरकार से था। पंडित नेहरू के पंचशील तत्वों ने देश को नई ऊँचाई प्रदान की। भारत तीसरे विश्व का निर्माण कर्ता साबित हुआ। वह गुट निरपेक्ष होकर अपनी सभ्यता, संस्कृति और शांतिप्रिय बुद्ध के परचम फहराने लगा। 'वसुधैव कुटुंबकम्' की परिकल्पना को साकार करने में प्रतिबद्ध हुआ। यही कारण है की आज के समय भी भारत को जवाबदेही राष्ट्र मानकर विश्व उसकी ओर देखता है। बिना किसी प्रकार के निर्बध या बंधन डालते हुए उसके साथ अणुकरार तक कर चुका है। यह भारत की श्रेष्ठतम उपलब्धि है।

13.9.2 धार्मिक परिस्थिति

ब्रिटिशों के भारत आगमन के बाद हमारे देश में धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव लक्षित होते हैं। विचार स्वातंत्र्य ने श्रम के नाम पर होने वाले अनाचार, दुराचार, अनिष्ठ प्रथाओं परम्पराओं पर बड़े हमलें किये। लगभग धार्मिक स्थान अनाचार के अड्डे बने थे। अनेक धर्म यहाँ प्रचलित थे। वे कई सम्प्रदायों में विभाजित हो चुके थे। हिन्दू धर्म ने चातुवर्ण्य व्यवस्था के तहत पिछड़ी जातियों का भारी शोषण किया। ब्राह्मणी वर्चस्ववाली व्यवस्था ने कई प्रकार के कर्मकान्डों के बल पर सामान्यों को ठगा। चंडो, मंहतों का सामाजिक वर्चस्व, सद्भाव को कहीं पर भी रखता नहीं था। सहयोग की अपेक्षा शत्रुत्व को ही एक प्रकार से बढ़ावा मिलता रहा। लोग केवल श्रद्धालु नहीं बल्की अंधश्रद्धालु बने थे। ऐसे में ब्राह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्यसमाज, थिओसोफिकल सोसायटी ने पुराने हिन्दू धर्म को नये साँचे में ढालने का कार्य किया। ऐसा करते समय कर्मकान्ड, रुढ़ियों, जातिप्रथा आदि पर कुठाराघात किया।

आर्य समाज आदि में इसके सम्बन्ध में अंर्तविरोध स्पष्ट है। डॉ० नगेन्द्र ने कहा हैं, "आर्य समाज वैदिक धर्म के मुल स्वरूप को बनाए रखना चाहता था।" इस लिए वेदों की ओर चलो का स्वामी दयानंद सरस्वती का नारा खुब गुंजा। बावजूद आर्य समाज ने जातिप्रथा को तोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। हिन्दू धर्म का य नया संस्करण मात्र एकेश्वर वाद, विधवा विवाह, प्रचलन, बालविवाह विरोध, सती प्रथा विरोध, स्त्री शिक्षा ए समानाधिकार का समर्थन करते हुए भारतवर्ष में नवजागरण फैलाने का कार्य करते हुए स्थापित हो रहा थ यही कारण है कि नवजागरण को कुछ विद्वानों ने हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान के रूप में देखा हैं।

वस्तुत: आर्य समाज की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण हैं। दयानंद सरस्वती ने भले ही इसाई धर्म प्रचार व प्रतिक्रिया के रूप में आर्य समाज की स्थापना की। उन्हीं में से आगे चलकर धर्म शुद्धि आंदोलन पैदा हुआ साम्प्रदायिकता की नींव रेनेंसा में ही दिखाई देती हैं। बंगाल एवं महाराष्ट्र ने रूढ़िवादी परंपरा में जकड़े भार को आधुनिक बनाने का कार्य किया। जिससे नयी समस्यायें भी भारत में पैंदा हुई हिन्दू-मुस्लिम संघ साम्प्रदायिकता, हिन्दी-उर्दू विवाद आदि। फिर भी सामाजिक एकता, सद्भाव, सौहार्द्र तथा धार्मिक क्षेत्र क्रान्तिकारी बदलाव की ओर भारत बढ़ता गया। स्वामी दयानंद सरस्वती के दो महत्वपूर्ण कार्य एक राष्ट्रीय का संचार एवं दूसरा राष्ट्रभाषा का प्रचार। विज्ञान की अति बौद्धिकता का विरोध कर भारतीय अध्यात्मवाद व उत्थान इसी युग में दिखाई देता हैं।

आगे चलकर गांधीजी का समन्ववादी दृष्टिकोण जो बना यह उसकी पूर्वपीठिका ही हैं। कई धार्मिक रुढ़िया बदलने लगी, जैसे समुद्र को न लांघना, दहेज प्रथा का विरोध, पुंजीवादी या जमींदारी प्रथा का विरोध घोर अंधविश्वासों का विरोध होने लगा। स्त्री शिक्षा का प्रबल समर्थन एवं दलितों प्रति सहानुभूति की भावना नये मानवीय दृष्टिकोण को विकसित किया। महादेव गोविंद रानडे के संबंध में डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है—— मनुष्य की समानता चाहते थे। वे जाति-पाति की प्रथा के विरुद्ध थे और अन्तरजातीय विवाह के पक्षधर थे। स्त्री शिक्षा पर उन्होने बार-बार बल दिया हैं। उनके वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण तर्क-पद्धति सामाजिक परिष्कार के प्रति अभिरुची आदि से स्पष्ट हैं कि वे पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित थे किन्तु पाश्चात्य मत को भी उन्होंने बिना तर्क के स्वीकार नहीं किया। दूसरे शब्दों में, वे भारतीय संस्कृति को नवीन वैज्ञानिक विचार-प्रणाली के अनुरूप ढालने का यत्न कर रहे थे। यही बात, विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती, राजाराम मोहन राय, एनी बेझंट के कार्य-विचारों में मुखर हुई हैं। प्राचीन भारतीय अतीत के प्रतीक गौरव की भावना इनमें रही किन्तु विदेश वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठ दृष्टि, तर्क पद्धति को स्वीकार भी किया।

भारत को प्राचीन एवं मध्यकालीन संकीर्णता से बाहर निकलकर उसे आधुनिकता की ओर बढ़ाया। ध के प्रति नया नैतिक विश्वास बढ़ाया। धर्म के भीतर गतिशीलता का संचार कर उसे पुन: सक्रिय किया।

पश्चिमी रीति-नीति का स्वीकार करते समय मात्र इनमें अंतर्विरोध दिखाई देते है। डॉ० नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है, "इनके आदर्शों और व्यवहारों में सर्वत्र एकरुपता नहीं मिलती। उदाहरणार्थ, टैगोर परिवार ब्राह्म था ब्राह्म समाज में मूर्तिपूजा के लिए कोई स्थान नहीं है, पर टैगोर परिवार खूब धूमधाम के साथ दुर्गोत्सव मनाता था। आर्यसमाज में वर्णव्यवस्था जन्मना नहीं, कर्मणा मानी जाती हैं, पर आर्य समाजियों में बहुत कम लो मिलेंगे जो जाति के बाहर विवाह संबंध स्थापित करने में संकोच का अनुभव न करते रहे हो। दूसरा अन्तर्विरो यह था कि राजा राममोहन राय, रानडे आदि बहुत से लोग ब्रिटिश राज्य को देश के लिए वरदान समझते थे लेकिन प्रजा के दोहन, शोषण आदि का विरोध करते थे। समाज में एक ओर संस्कृतिकरण बढ़ रहा था, न दूसरी ओर लौकिकीकरण। सभी सुधारकों को एक ओर विदेशियों के सामने अपने धर्म और संस्कृति व वकालत करनी पडती थी तो दुसरी ओर देशवासियों के सामने धर्म का नया अर्थापण करना पड़ता था।" जो हो भारतीय धर्म में हिन्दू धर्म एक प्रकार की संक्रति काल से गुजर रहा था। धर्म का नया दृष्टिकोण अविष्कृत हो रहा था। यह सब कुछ ब्रिटिशों के कारण संभव हुआ इसे स्वीकारने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। भार के आधुनिकीकरण की यह प्रारंभिक स्थितियाँ थी। जिसमें धर्म को नये साँचे में ढालना जरुरी था। परिवर्तन व

प्रक्रिया का यह आगाज ईसाईयों की देन रही हैं। गणतंत्र के अविर्भाव के साथ ही असाम्प्रदायिक जनवादी शासन की नींव पड़ी। समता, स्वतंत्रता, भाईचारे के साथ सामाजिक न्याय हक ने धर्म के स्वरूप को ही बदल दिया, वह तर्क के बल पर सड़ी-गली रुढ़ियों के वर्चस्व के विरुद्ध आवाज देने लगा है। फिर भी धर्म के नाम पर मनुष्य भावनाओं को भुलने का कार्य सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों की ओर से बदस्तुर जारी हैं। यही कारण हैं कि प्रगतिशील कहे जाने वाले महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री के हाथ गणेशजी दुग्धपान कर रहे हैं। राजस्थान विधान भवन परिसर में मनु-मुर्ती की प्रतिष्ठापना हो चुकी हैं। धर्मसंसद की घोषणा ने मानवता को पछाड़कर रखा है। अब संविधान नहीं, संहिताएँ होगी का नाद गूँज रहा हैं। सन् 1990 के बाद का साहित्य इसी का प्रतिफलन हैं।

13.9.3 सामाजिक परिस्थिति

अंग्रेजों ने शिक्षा, यातायात, यंत्र उपयोग से आधुनिक भारत की नींव डाली। कई भारतीय विद्वान पाश्चात्य समाज एवं शिक्षा ग्रहण कर उससे प्रभावित हो चुके थे। कईयों ने हिन्दुधर्म की कट्टर रुढ़ियों का विरोध कर जातियता को दूर करने का प्रयास किया। 18वीं शती के अन्त में ही भारत पाश्चात्य-ज्ञान-विज्ञान के सपंर्क में आया। डॉ० नगेन्द्र ने कहा है—भारतीय ज्ञान गतानुतिक और परम्परा मुक्त हो चला था जबकि पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान नये जीवन संदर्भो की ताजगी लिये था। भारतीय ज्ञान-विज्ञान का लक्ष्य आध्यात्मिक और पारलौकिक था, तो पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का भौतिक और इहलौकिक। इस देश की विद्या वर्ग या जाति विशेष तक सीमित थी, पर पाश्चात्य विद्या सर्वसुलभ थी। "नयी उद्‌भावनाओं का मार्ग अवरुद्ध हो चला था, कुछ लोग वेदादि की अप्तता, वर्णाश्रम-धर्म की श्रेष्ठता, इहलौकिकता के प्रति अनासक्ति आदि को यथापूर्ण बनाए रखने के पक्षधर थे। ..... अब पहली बार रुढ़ियों की उपयोगिता के आगे प्रश्नचिन्ह लग या था।" जिसके चलते भारत आधुनिकता की ओर निकल पड़ा।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिन्दूधर्म की जड़ता और कट्टरपन को दूर करने के लिए आर्य-समाज-संगठन बनाया। समुचे हिन्दुओं में जागृति की चेतना फैलायी। फिर एक बार हिन्दू धर्म को नये युगानुरूप बनाया और उसके उपयोगी होने को सिद्ध किया। यही धार्मिक सुधार (हिन्दू धर्म सुधार) था। जयकिशन प्रसाद खन्डेलवाल इस पर टिप्पणी करते हैं, "सचमुच यदि आर्य समाज के द्वारा क्रान्ति उपस्थित न की गई होती तो हिन्दू समाज बहुत पिछड़ जाता और निश्चय ही दुर्बल हो जाता।" इसी में हिन्दू समाज की उदारता और आर्य समाज की उपादेयता सिद्ध हो जाती है। रुढ़ियों का विरोध, कर्मकान्ड से मुक्ति, अंग्रेजी शिक्षा का प्रयोग, के साथ वेदादि की प्रेरणा स्वामी दयानंद ने भारत को दी। हिन्दी साहित्य के भारतेन्दु युग में सामाजिक रुढ़ियों प्रति द्वंद्व भाव इसी कारण उपस्थित हो चुका है। जो प्रगतिवाद तक निरंतर बना रहा है। बाद में अज्ञेय ने फिर एक बार सामाजिक स्थिती को यथास्थितीवादी बनाये रखने में योग दिया है।

आर्य समाज की भाँति ब्राह्म समाज, रामकृष्ण मिशन, प्रार्थना समाज, थिओसोफिकल सोसायटी ने तत्कालीन सामाजिक कुप्रथाओं का विरोध किया जैसे, सती प्रथा का विरोध, विधवा विवाह का प्रचलन, पुर्नविवाह को मान्यता, जातिभेद को दूर करना, अंधविश्वास, समुद्रयात्रा, निषेध स्त्री शिक्षा का समर्थन, जाति-बहिष्कार का विरोध सुधारकों ने दर्ज किया है। हिन्दू धर्म में इस समय दोनों प्रकार के सुधारक, लेखक हुए है। एक जो इन सभी सुधारों को लाना चाहते थे तो दूसरा वर्ग इसका विरोध करता रहा। वस्तुत: हिन्दुओं का पुरोहित वर्ग, बाह्याचारों, बाह्यडम्बरों, बाह्य उपकरणों को पराश्रय देकर सड़ी गली रुढ़ियों, परम्पराओं, अंधविश्वासों, कुप्रथाओं, कुरितियों को कायम रखना चाहता था। जिसके चलते सामाजिक सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत हो सके। और समाज के एक बहुत बड़े वर्ग का शोषण किया जाता।

सुधारकों के कारण परम्परावाद बनाम आधुनिकता का दृष्टिकोण प्रखरता के साथ मुखर हुआ। यही कारण है कि 19वीं शती के पूर्व और बाद वाले युग प्रवृत्तियों को लेकर परम्परावादियों एवं सुधारकों में वाद-विवाद, आलोचना ही आलोचना दिखाई देती हैं। सुधारकों ने सामाजिक कुरितियों को दूर करने की प्रेरणा सामाजिको दी। यही कारण है की सती और बंदी स्त्री शिक्षा ग्रहण कर रही थी। बालविवाह का विरोध होने

लगा, अछुतों के प्रति सद्व्यवहार, दहेज जैसी कुप्रथा का विरोध, पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण मानवतावा वृत्ति का विकास आदि के दर्शन सर्वसुलभ होते गये।

पूँजीवाद का विरोध करते हुए मार्क्सवादी विचारों का विकास भारत में इसी समय हुआ। जमीन्दारी प्र के अभिशाप को दूर करते हुए वर्ग संघर्ष उभरकर आया। जिसमें किसान मजदूर वर्ग राजनीति से सुधार ओर आकृष्ट हुआ। तत्कालीन समय के सुधारक नेता ने नारी के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त की, निर्धन शोषित समाज विकास में सहायता की। शायद यही कारण हैं कि 'आँचल में दूध और आँखों में पानी वाली' छबी उभारना और से न्यायपूर्ण हक दिलाने के लिए सहानुभूति देना परमावश्यक लगता रहा है।

गाँधीजी की कई योजनाएँ देश की समस्याओं को सुलझाने का आधार बनी, जैसे, ग्रामोद्धार, भू आंदोलन, हिन्दू-मुस्लिम एकता, जमींदारी का विरोध, सत्याग्रह, अहिंसा भाव का विकास, धार्मिक समन्व अछुतोद्धार, सांस्कृतिक एकता आदि। ग्रामोद्धार कार्यक्रम द्वारा गांधीजी ने यंत्र का विरोध किया क्योंकि वह को मनुष्य श्रम का शोषक मानते थे और कृषकों को इस अभिशाप से दूर रखना चाहते थे। स्वदेश भावना भी उन्होंने विकसित किया। पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति का विरोध करने के लिए खादी को देशीयता स्वरूप में उन्होंने भारतीय जनभावनाओं में प्रतिष्ठापित किया।

आर्य समाज ने भी वैदिक युग का पुनरुत्थान लाया। यही कारण हैं कि इस काल में सामाजि सेवावृत्तियों की संख्या अधिक रही। योगी अरविन्द ने साधना और दृढ़ इच्छा शक्ति से मानवतावाद क अध्यात्मवाद से मनुष्य को मनुष्य के रूप में विकसित किया।

ब्रह्म समाज के कारण बंगाल में जिस प्रकार नवयुगारंभ हुआ वह भारत के लिए प्रेरणापद बना। रुढ़िग्र मानस को दूर कर निर्मल भावनाओं का जनविकास उन्होंने साध्य किया।

रवीन्द्रनाथ टैगोर की विश्व मानवतावादी दृष्टि, दुखनिवारण के प्रयास, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत संस्कृति को उच्च स्थानारुढ़ किया। उनका आदर्श व्यापक और प्रभावशाली था। वे केवल मानव और मानव का विकास चाहते थे।

विवेकानंद ने रामकृष्ण के विचारों को तथा हिन्दू धर्म को शिकागों विश्वधर्म सम्मेलन द्वारा विश्वभर पहुँचाया और भारतीय सभ्यता, संस्कृति की श्रेष्ठता को विश्व के सामने लाया।

महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिबा फूले ने किसानों और स्त्री गुलामगिरी के सवालों को उठाया। हंटर कमि के सामने शिक्षा के क्षेत्र में ब्राम्हणी वर्चस्व का विरोध जतलाकर बहुजनों के लिए शिक्षा प्रारंभ की। देश पहली स्त्री अध्यापिका, शिक्षिका सावित्रीबाई फूले जो उनकी पत्नी रही, द्वारा स्त्री शिक्षा की देश में प्रथम न रखी। शुद्रातिशुद्र के लिए शिक्षा के महत्व को स्पष्ट किया। प्राथमिक शिक्षा अनिवार्यता के संबंध में वे कहते "मै समझता हूँ कि जनसाधारण के लिए प्राथमिक शिक्षा एक निश्चित उम्र जैसे कम से कम 12 वर्ष त अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए।" उस समय प्राथमिक एवं सर्वसुलभ, सर्वजन के लिए शिक्षा के महत्व महात्मा फुले ने जाना था। 1882 में तिलक और आगरकर की जेल से रिहाई पर उनका एक साथ अभिनं कर के साम्राज्यवाद का विरोध और जातिवाद विरोध के बीच नवजागरण के सबसे बड़े स्तंभ वे रहे इसलिए उन्हें क्रान्तिसर्य भी कहा गया।

महादेव गोविन्द रानडे ने प्रार्थना समाज के जरिए बालविवाह, पर्दाप्रथा का विरोध किया। विधवा विव का समर्थन और स्त्री की स्वतंत्रता के लिए बड़ा मौलिक कार्य किया है।

इस कालखण्ड में सामाजिक व्यवस्था में बड़े ठोस परिवर्तन लक्षित होते हैं। जिसके प्रभाव से सम और साहित्य अछूता नहीं रह पाया। भारतेन्दू तथा द्विवेदी युग में यह स्पष्ट दिखाई देता है। इन दोनों सामाजिक व्यवस्था के अंतर को स्पष्ट करते हुए खन्डेलवाल ने कहा है, "भारतेन्दू युग में नवयुग की चेत का विकास हुआ और सामाजिक अवस्था में परिवर्तन की पुकार से बड़ी अशान्ति फैल गई, द्विवेदी युग में

शान्ति शान्त हो गई और समाज सुधारक सामाजिक कुरितियों और रुढ़ियों का खण्डन करने के साथ ही मामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए ठोस विचार और सुझाव प्रस्तुत करने लगे।'' भारत यथाशीघ्र मामाजिक विकास की ओर अग्रसर हुआ। पाश्चात्य शिक्षा, यंत्रविकास और सुधारकों ने देश को आधुनिक नाया। साहित्य में इन्हीं का चित्रण हुआ है।

3.9.4 आर्थिक परिस्थिति

साहित्य का इतिहास बदलती हुई अभिरुचियों और संवेदनाओं का इतिहास होता है, जिसका सीधा संबंध ार्थिक और चिन्तनात्मक परिवर्तन से हैं। अर्थात् यह स्पष्ट है की आर्थिक स्थितियाँ मानव की सोच में रेवर्तन--निर्धारण करती हैं। इस बात को विद्वानों ने स्वीकारा हैं कि भारत में 1857 के बाद अंग्रेजी नीति का ार्थिक ढाँचा विकसित हो रहा था। एक तरफ कच्चा माल इंग्लैंड भेजकर पक्के माल में परिवर्तन के साथ धिक दाम में वह भारतीय बाजार में उतारा जाता था। इसी में भारतीय जनता को दोहरा शोषण स्पष्ट होता है! सके कारण मँहगाई, टैक्स, दरिद्रता और ऊपर से अकाल जैसी समस्याओं ने ब्रिटिशों के विरुद्ध भारतीय नता में असंतोष पैदा किया। स्वदेशी को स्वीकार और विदेशी का बहिष्कार जैसे आंदोलन उभरकर आये। ष्ट्रीय काँग्रेस के दादाभाई नौरोजी ने इस पर प्रकाश डालकर राष्ट्रहित की भावना को जगाया।

साम्राज्यवादी शासन ने औद्योगिक विकास तो किया परंतु पूंजीवादी व्यवस्था को भी मजबूत बनाया। पने शासनानुकूल पूंजीपतियों को उन्होंने बढ़ावा दिया। उद्योगों के कारण पारम्पारिक भारतीय उद्योग धंधे ाय: नष्ट हो रहे थे और गाँव का कारीगर बेकार। किसानों पर माल गुजारी का बोझ लादा गया। परिणामत: मीण कारीगर एवं किसान शोषण की चक्की में पिसता गया। धीरे-धीरे मजदूर संगठन बने। वर्गसंघर्ष ने जोर कड़ा। देशव्यापी दरिद्रता ने श्रमिक वर्ग को संघर्ष की प्रेरणा दी। श्रमिक वर्ग ने इसका विरोध किया। भारतेन्दु से साहित्यकारों में धन विदेश चली जाती ख्वारी का भाव पैदा हुआ। राष्ट्रहित के लिए स्वातंत्रता संघर्ष निवार्य है कि स्थिति पैदा हुई। कालांतरण में पंचवार्षिक योजनाओं ने देश की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने योगदान दिया हैं। अब शोषण जैसी स्थितियाँ नहीं रही हैं। सुधार हुआ हैं। आजादी के बाद यह मानचित्र दलने लगा फिर भी समुचित उन्नति नहीं हो पाई। आजादी से सामान्यजन, कवियों का मोहभंग हो गया धूमिल सकी फलश्रुति है।। सरकार ने रोजगार गारंटी दी परंतु योजना के तहत मिलने वाले एक रुपये का पंद्रह पैसे स्सा गरीब जनता के पास पहुँचता है इसे राजीव गांधी ने ही इसे व्यक्त किया है। वर्तमान में तो यह असमानता धिक बढ़ी है। खाता-पीता किसान होरी के जमाने में चला गया हैं। फर्क कुछ इस तरह का है पहले महाजन, जीपति किसानों के अनाज को लुटते थे, घर पर जप्ती लाते थे, आज यही काम आधुनिक बैंक और नौकरशाह र रहें हैं। होरी के जमाने में शायद किसान आत्महत्या करता होगा किन्तु यहाँ हजारों के आँकड़े पार हो रहें हैं। जीपाती व्यवस्था ने एक होरी पैदा किया था औद्योगीकरण, उदारीकरण, ने कई होरी को जन्म दिया हैं। र्तमान साहित्य इसकी अभिव्यक्ति हैं। हमने आर्थिक प्रगति की हैं पर बड़े उद्योगपति के रूप में, समृद्ध कसान, मजदूर के रूप में नहीं। महाजनी, पूंजीवादी सभ्यता का जाल आज भी फैला हुआ हैं।

3.9.5 साहित्यिक परिस्थिति

शुक्लजी के अनुसार साहित्य जनता की संचित चित्तवृत्तियां का प्रतिबिंब है का अर्थ हैं सामाजिक, जनैतिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों का एवं मानवीय क्रिया-प्रक्रियाओं के साथ संवेदनाओं का प्रभाव ाहित्यकारों के मन-मस्तिष्क पर होता हैं। इसी क्रोड में सृजन संभव हैं। गद्य युग की यही विशेषता रही हैं। रिणामत: साहित्य के विषय एवं उनके प्रतिपादन की शैली नितांत अलग हैं।

रीतिकालीन शृंगारिकता पूर्ण भक्ति साहित्य की विशेषता हैं। अलंकरण की प्रवृत्ति कभी-कभी अनलंकृत बदली, नारी का रूप बदला, प्रकृति ने स्थान पाया, वीर, शृंगार रस की जगह विद्रोह, करुण ले ले ली। ओज ष्ट्रीयता का पोषक हुआ। प्रेम की पुकार जन पुकार में बदली। ब्रजभाषा की जगह खड़ी बोली ने ले ली। क्तक, प्रबंध की जगह कहानी, उपन्यास का अर्विभाव क्रांतिकारी साबित हुआ। देश के जीवन में साहित्य का

नया रूप और तेवर परिवर्तनकारी साबित हुआ। ईश्वर, राजा, प्रकृति की जगह मनुष्य और उसकी सुख की संवेदनाओं ने ले ली। प्रजा की चिन्ता साहित्य की मानवीय चिन्ता में मुखर हुई। यह नवयुगीन स साहित्य की कई विधाओं का जन्मदाता हुआ। कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, जीवनी, रेखाचित्र, सं आत्मकथन, रिपोर्ताज, डायरी, पत्र इन विधाओं में मूर्त हुआ। पाश्चात्य साहित्य एवं साहित्य प्रवृत्तियों के आलोचना पद्धितियों का विकास साहित्य को बृहत्तर बना दिया। अनुवाद का क्षेत्रविस्तार हुआ। बांगला, गुजराती ही नहीं अंग्रेजी, रूसी का प्राबल्य बढ़ा। विश्वदृष्टि की व्यापकता ने साहित्य के विषयगत एवं व मूल्यों में परिवर्तन लाकर नये साहित्यिक आंदोलनों को जन्म दिया। प्रगति-प्रयोग के बाद, अब समकालीन कविता, कहानी-संमातर, अ-कहानी के दौर महत्वपूर्ण रहें हैं।

साहित्य लेखन की इतिहास दृष्टियाँ विकसित हुई। इसका लेखन, पुर्नलेखन, होने लगा। 'आधे' द करने के लिए दलित, महिला लेखन अपनी अस्मिता-अस्तित्व को लेकर केंद्र में आ चुका हैं। जीवन-दर्शन साहित्य क्षेत्र को विशाल बना चुका है।

भारतेन्दू की राष्ट्रीयता, द्विवेदी युग की समाज सुधार, भाषा सुधार भावना, छायावादी जीवन-दृ बाद प्रगतिशील आंदोलन में उपजा जनवादी साहित्यिक संस्कार, नये प्रयोग में बदला। वह नई संकल्पन सामने आया। संमातर हुआ। आज यह साहित्य कई मोड़ों से गुजरते हुए नितांत नये प्रश्नों को विभिन्न दे उठा रहा हैं। दलित, स्त्री, साम्प्रदायिकता, संबंधी साहित्य ने राष्ट्र की चेतना को सामने लाया हैं। र शक्तिशाली चेतना ने उसे व्यापक एवं उचित रूप में प्रस्तुत किया हैं। संपूर्ण काल का मुल्यांकन थोड़े से में संभव नहीं हैं परंतु नवीन संघर्ष की बुद्धिजीवी, मानवतावादी दृष्टि ने सामाजिक, राजनीतिक, ध आर्थिक क्षेत्रों की उथल-पुथल की अभिव्यंजना सार्थक ढ़ंग से की हैं। नवचेतना का यह लेखन बहुमुख युगानुरूप हैं। क्योकि लेखन के क्षेत्र में पद्य के साथ-साथ गद्य का विकास, खड़ी बोली का सर्वाधिक राष्ट्रीय भावना का विकास, सामाजिक क्षेत्र में मानवतावाद, नया जागरण, साहित्य का विविध मुखी प्रयो विकास, शृंगार से मुक्ति, प्रकृति का सुमधुर चित्रण, नये वादों का साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश, अंग्रेजी विद्व हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, जैसे प्रतीकवाद, अभिव्यंजनावाद, प्रयोग की शुरुआत के साथ-साथ ईश्वर प्रकृति के लम्बे समय तक केंद्र में रहने के बाद सामान्य किसान, मजदूर, मोची, कुकुरमुत्ता जैसे विष प्रभावी जनजीवन से जुड़े विषयों पर लेखन इसी युग की देन हैं।

13.10 नए उद्योगों की स्थापना

अंगेज और दूसरी कई यूरोपीय जातियाँ भारत से व्यापार करने के इरादे से यहाँ आई थी। औ क्रांति से पहले तक भारत से व्यापार से पहले भारत कई मामलों में यूरोप से ज्यादा उन्नत था। और अ सदी के मध्य तक भारत में बने हुए मालों का निर्यात ज्यादा होता था। लेकिन उन्नीसवी सदी में सि बदलाव आया। यूरोप में जो परिवर्तन हुए उसके कारण भारत में बना माल बेचने का बड़ा बाजार ह इसके लिए उन्होंने योजनुसार इस ढ़ंग से भारत के परंपरागत उद्योगों को नष्ट किया। उसे कच्च माल पैद वाले एक पिछड़े देश में बदल दिया। ऐसा करने में उन्हें कामयाबी इसलिए मिल सकी कि वे देश के बड़े पर अपना शासन स्थापित करने में सफल रहे थे।। इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति की कामयाबी के पीछे पर उनके शासन का गहरा योगदान था। 1857 के असफल विद्रोह से पहले ही भारत में आधुनिक उद्यो स्थापना होने लगी थी। ब्रिटेन के लिए रुई जैसे कच्चे मालों की अबाध आपूर्ति को पूरा करने के निर्मित भ उन्नीसवी सदी के मध्य में रेलवे की स्थापना की गई जिसके बारे में कार्ल मार्क्स ने कहा था कि "रेल प्रादुर्भाव भारत में आधुनिक उद्योगों के आगमन का पूर्वसूचक है" उन्नीसवी सदी के मध्य में नली, चाय के क्षेत्र में कई उद्योग स्थापित हुए। सन् 1850 और 1855 के दौरान सूती कपड़ों के कारखाने, जूट वा और कोयला खानों की स्थापना हुई सन् 1879 में भारत में 56 सूती कपड़ा मिल स्थापित हो चुकी थ 1882 में जूट की बीस मिले लग चुकी थी और 1880 में 56 कोयला खदाने काम कर रही थी। सन्

से 1895 ई० के बीच हालांकि नये उद्योग कम लगे लेकिन इन उद्योगों का तीव्र गति से विकास हुआ। इस पूरी प्रक्रिया पर टिप्पणी करते हुए ए.आर. देसाई लिखते हैं, "भारत और अंग्रेजों के निरंतर वर्धनशील प्रभुत्व का इतिहास प्राक् ब्रिटिश भारत की सांमती अर्थव्यवस्था के पूँजी रूपांतरण का भी इतिहास है, चाहे यह रूपांतरण अधूरा और विकृत ही क्यों न रहा हों। पुराने भूमि संबंधों एवं हस्तशिल्प उद्योग के ह्रास और उनकी जगह नये भूमि संबंधों और आधुनिक उद्योगों उद्‌भव से ही उसका बड़ा घनिष्ठ सच हैं अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुत्व के विकास के साथ-साथ पुराने उद्योगों पर और भूमि व्यवस्था पर आधारित पुराने वर्गों का विनाश हुआ और नये भूमि संबंधों और नये उद्योगों पर आधारित नये वर्गों का उदय हुआ है। गाँवों के समुदाय तंत्र (कम्यून) जमीन पर निजि मिल्कियत कायम हुई।

13.11 आधुनिक शिक्षा और बौद्धिक वर्ग

इसी दौर में उस आधुनिक शिक्षा का प्रसार हुआ जिसने राष्ट्रव्यापी और सुधारवादी आंदोलनों पर गहरा असर डाला। भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रसार विदेशी इसाई मिशनरियों ब्रिटिश सरकार और प्रगतिशील भारतीयों के प्रयत्न से हुआ। ब्रिटिश सरकार ने अपनी राजनीतिक, आर्थिक और प्रशासनिक जरूरतों के चलते आधुनिक शिक्षा प्रसार किया। मैकाले जैसे अंग्रेज शासकों का विचार था कि अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा भारतीय को पूर्णत: पश्चिमी सभ्यता में रंगा जा सकेगा और उन्हें सदा के लिए राजभक्त बनाया जा सकेगा अस्तु अंग्रेज शासकों की यह इच्छा एक हद तक ही पूरी हुई। इस शिक्षा ने एक सीमा तक ही भारतीयों को पश्चिमी सभ्यता के विकृत रूपों में रंगा उन्हें अंग्रेजों जैसा बनने की प्रेरणा भी दी। लेकिन यह शिक्षा धर्म निरपेक्ष, उदारवादी और ब्रिटिश शासन से पहले की शिक्षा पद्धति के विपरीत जाति और धर्म का ख्याल किए बिना सर्वसुलभ थी। इस शिक्षा के प्रभाव को रेखांकि ा करते हुए ए.आर. देसाई लिखते हैं, "भारतीय राष्ट्रवाद ने उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध में एक राष्ट्रीय आंदोलन का रूप लिया। उस वक्त तक देश में एक शिक्षित वर्ग तैयार हो गया था और भारतीय उद्योगों के उदय के साथ ही भारतीय औद्योगिक बुर्जुआजी का भी जन्म हो चुका था। इन्हीं वर्गों ने राष्ट्रीय आंदोलन का भी संगठन किया और अपनी विरोधी पताका में निम्नांकित नारे लिखे, सरकार नौकरियों का भारतीयकरण, भारतीय उद्योगो के लिए सुरक्षा, वित्तीय स्वायत्तता आदि। आर्थिक एवं अन्य क्षेत्रों में ब्रिटिश और भारतीय हितों के संघर्ष के कारण यह आंदोलन शुरू हुआ"। इस आधुनिक शिक्षा ने उस बुद्धिजीवी वर्ग को पैदा किया जिसने राष्ट्रीय और समाजसुधार आंदोलन में न सिर्फ महत्वपूर्ण भूमिका निभाई बल्कि उसका नेतृत्व भी किया। उन्होंने 'राष्ट्रीय और जनतंत्र की भावनाओं से ओतप्रोत संपन्न प्रादेशिक साहित्य और संस्कृति की सशष्टि की। इसके बीच से महान वैज्ञानिक, कवि, इतिहासज्ञ, सामाजशास्त्री, साहित्यिक, दर्शनिक और अर्थशास्त्री उत्पन्न हुए। प्रगतिशील बुद्धिजीवी वर्ग ने आधुनिक पाश्चात्य जनतांत्रिक संस्कृति का स्वागीकरण किया और नवाज भारतीय राष्ट्र की जटिल समस्याओं को समझा"।

13.12 हिंदी भाषा और गद्य का उदय

हिन्दी साहित्य का इतिहास नामक अपनी पुस्तक में रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल की शुरुआत गद्य के विकास का परिचय देने से करते है। वे प्रकरण—1. का शीर्षक को देते है 'सामान्य परिचय : गद्य का विकास'। आधुनिक काल से पूर्व गद्य की अवस्था की उल्लेख करने के बाद वे 'खड़ी बोली का गद्य' परिचय देते है। खड़ी बोली का गद्य उस समय उर्दू के रूप में भी मौजूद था और हिन्दी के रूप में भी। उर्दू के रूप में खड़ी बोली फारसी लिपि के संशोधित रूप में लिखी जाकर और फारसी-अरबी के शब्दों के बाहुल्य के साथ मौजूद थी और उसमें काव्य और गद्य दोनों लिखे जा रहे थे। जबकि यही खड़ी बोली नागरी लिपि में जाकर और संस्कृत के तत्सम रूपों में बाहुल्य के साथ हिन्दी के रूप में प्रचलित होने लगी। इस तरह एक ही भाषा दो अलग लिपियों में लिखी जाकर दो भिन्न साहित्य परंपराओं की वाहक बनी। सवाल यह था कि इस खड़ी बोली गद्य को आधुनिक हिन्दी के रूप में स्वीकार्य कैसे बनाया जाए जबकि इसी का एक अन्य रूप उर्दू भी मौजूद

हो? यह ऐसी समस्या थी जिसका किसी भी अन्य भारतीय भाषा को सामना नहीं करना पड़ रहा था। हिन्दी व
खड़ी बोली का स्वाभाविक विकास मानकर ही हिन्दी के विद्वान को उर्दू की जगह स्थापित कर सकते थे। ऐ
करने के लिए यह जरूरी था कि वे साबित करते कि उर्दू खड़ी बोली पर आधारित होते हुए भी उससे अलग
इसके लिए उन्होंने उर्दू के शब्द स्रोतों को विदेशी हमलावरों से जोड़कर अभारतीय भी साबित किया। जाहिर
ऐसा करते हुए वे उर्दू-हिन्दी के सवालों को भाषा के दायरे से बाहर राजनीतिक दायरे में ले जाते है। यहाँ हम
लिये स्वयं रामचंद्र शुक्ल के विचारों को जान लेना उचित होगा। वे कहते है, "खड़ी बोली का रूप रंग ज
मुसलमानों ने बहुत कुछ बदल दिया और वे उसमें विदेशी भावों को भंडार भरने लगे तब हिन्दी के कवियों
दृष्टि में वह मुसलमानों की खास भाषा-सी जचने लगी। इससे भूषण सूउन आदि कवियों ने मुसलमान दरब
के प्रसंग में या मुसलमान पात्रों के भाषण में ही इस बोली का व्यवार किया है। पर जैसा कि दिखाया गया
मुसलमानों के दिए हुए कृत्रिम रूप से स्वतंत्र खड़ी बोली का स्वभाविक देशी रूप भी देश के भिन्न-भिन्न भा
में पश्चिम के व्यापारियों आदि के साथ फैल रहा था। उसके प्रकार और उर्दू साहित्य के प्रचार से कोई संब
नहीं। धीरे-धीरे यही खड़ी बोली व्यवहार की सामान्य शिष्ट भाषा हो गई। रामचंद्र शुक्ल का यह कथ
आधुनिक हिन्दी साहित्य की उस मुख्य समस्या पर प्रकाश डालता है जिससे यह मालूम पड़ता है कि आधुनि
हिन्दी साहित्य के निर्माताओं के सामने हिन्दी का सवाल किस रूप में मौजूद था। यह संयोग नहीं है कि उर्दू
मुसलमानों की भाषा और हिन्दी को हिन्दुओं की भाषा मानने का यह आग्रह सिर्फ भाषा तक ही सीमित नहीं थ
यह उस दौर के दूसरे सवालों में भी प्रतिबिंव हो रहा था। यह विचारणीय मुद्दा हो सकता है कि भाषा के संब
में जो नजरिया व्यक्त हो रहा था। वह उस दौर के प्रति उनके नजरिया का ही प्रकटीकरण था या नहीं। इ
सवाल पर हम इकाई में आगे विचार करेंगे।

13.13 समाज सुधार और स्त्री-स्वातत्र्य

उन्नीसवी सदी में समाजोन्नति के सवाल को हम स्त्री और दलित के संदर्भ में लेखकों और सम
सुधारकों की भूमिका से समझ सकते हैं। यहाँ भारतेन्दु युग के एक महत्वपूर्ण लेखक राधाचरण गो स्वामी
कथन को उद्धत करना उपयुक्त होगा। राधाचरण गोस्वामी ने 'यमलोक की यात्रा' नाम का व्यंग्य लेख लिख
अपनी ही आकस्मिक मौत पर शोक व्यक्त करते हुए वे लिखते है, 'हा। न सारे हिन्दुस्तान ने नगरी का दफ
और हिन्दी भाषा का प्रसार देखा। न विधवा विवाह प्रचलित हुआ। न विलायत जाने की रोक उठी।
जाति-पाति का झगड़ा मिटा। न सिविल सर्विस में भर्ती होकर हिन्दुस्तानियों को उच्च पद मिले। न हमारे ज
प्रेस ऐक्ट उठा। न लाइसेंस टेक्स का काला मूँह हुआ। न लिबरलों की दया दृष्टि देखी। और हाय! न काबु
की लड़ाई का शुभाशुभ परिणाम मालूम हुआ"। 1880 में लिखें गये इस निबंध में गोस्वामी जी ने अपनी
सारी आकांक्षाओं को सूत्रबद्ध कर लिया है जो वे पूरी देखना चाहते है। ये आकाक्षाएँ तीन तरह की है। पह
समाज सुधार संबंधी, दूसरी राजनीतिक और तीसरी हिन्दी संबंधी। समाज सुधार के संबंध में उनकी त
इच्छाएँ व्यक्त हुई है: 1. विधवा विवाह का प्रचलन हो, 2. विदेश यात्रा पर रोक हटे, और 3. जाति-पाति
झगड़ा मिटे। इन तीनों का संबंध सिर्फ समाज सुधार से ही नहीं था, देश की उन्नति से भी था।

ध्यान देने की बात यह है कि न सिर्फ गोस्वामी जी बल्कि उस दौर के प्राय: सभी लेखक सामाजि
बुराइयों को मिटाने की बात कर रहे थे उसका कारण यह था कि वे इसी में देश की उन्नति देख रहे थे वे र
की दशा को देश की दशा से जोड़कर देखते है। यही देश की उन्नति का सवाल तब सामनें आता है जब
चाहते है कि जाति-पांति का झगड़ा मिटे। इसका कारण क्या था इसे हम तब अच्छी तरह समझ पाते है जब
विलायत जाने पर रोक को हटाने के लिए तर्क देते है। इन लेखकों ने विलायत जाने का समर्थन इसलिए कि
क्योंकि उन्हें यकीन था कि इससे भारतीयों को ज्यादा रोजगार मिलेगा व्यापार में वृद्धि होगी। यूरोप के मर्श

ज्ञान को सीखकर उनको भारत में बनाना और भारत को भी इंग्लैण्ड की तरह का औद्योगिक देश बनाना संभव होगा, अंग्रेजों की तरह उच्च शिक्षा प्राप्त कर उच्च पदों को प्राप्त करने की योग्यता हासिल कर वे उच्च पद हासिल कर सकें।

13.14 स्त्री शिक्षा का अभियान

राजा राम मोहन राय से लेकर सर सैयद अहमद खां और भारतेन्दु तक उस दौरे के तमाम भारतीय बुद्धिजीवियों ने शिक्षा के प्रसार पर अत्यधिक बल दिया। भारतेन्दु ने शिक्षा आयोग को दिए वक्तव्य में विस्तार से बताया है कि भारत को किस तरह की शिक्षा की जरूरत है और उसके लिए किस तरह के कदम उठाए जाने चाहिए। भारतेन्दु अपने वक्तव्य का आरंभ ही इस बात से करते है कि "अपने देश-वासियों के शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाना, इस प्रांत की भाषा में सुधार करना, तथा इस भाषा में साहित्य-वृद्धि करना सदैव से मेरा ध्येय रहा है" भारतेन्दु विस्तार से बताते है कि क्यों शिक्षा के परपरागत संस्थान वर्तमान में अप्रासंगिक हो गये है। शिक्षा के जिस मकसद को वे सर्वोपरि बताते है वह स्वाधीनता के भाव जगाना है। वे इस बात पर बल देते है कि इंग्लैंड और यूरोप के लोग 'सभ्यता से सबंधित सभी बातों में हमसे बहुत आगे है" क्योंकि वहाँ प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य है और शिक्षा के मामले सरकार के अपने हाथों में है। वे अगले पचास सालों तक शिक्षा को सरकारी मदद के साथ चलाने को सुझाव देते है। भारतेन्दु स्त्री शिक्षा के समर्थक थे और चाहते थे कि उनके लिए अलग से स्कूल खोले जाएँ। वे गाँव और शहर के लिए अलग-अलग किस्म की शिक्षा का सुझाव देते है। शिक्षा के प्रसार के लिए उन्नीसवी सदी के समाज के सुधारकों का बल कितना ज्यादा था इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि उस दौर के आरम्भिक गद्य साहित्य का मुख्य मुद्दा यही था। हिन्दी के पहले पत्र 'उदंत मार्तड' (1826) के चार साल पहले बंगाल में स्त्री में शिक्षा के समर्थन और प्रचार हेतू श्री गौर मोहन विद्यांलकार ने एक पुस्तक 'स्त्री शिक्षा विधायक (1822) के नाम से लिखी थी। बंगला में प्रकाशन के अगले साल सन् 1823 में इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो गया। यह इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी भाषी बुद्धिजीवी कितनी तीव्रता से स्त्री शिक्षा के प्रसार की जरूरत महसूस कर रहे थे। पं. गौरीशंकर की रचना 'देवरानी जेठानी की कहानी' में ऐसी दो बहुओं की कहानी है जिसमें से एक शिक्षित है और दूसरी अनपढ़ । यह हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है और इसकी रचना सन् 1870 में हुई थी। पं. श्रद्दाराम फिल्लौरी की रचना 'भाग्यवती' जिसका प्रकाशन सन् 1877 में हुआ और जिसे शुक्ल जी ने "सामाजिक उपन्यास" की संज्ञा दी है, हिन्दी का एक महत्वपूर्ण उपन्यास माना जा सकता है। जिसकी नायिका भाग्यवती भी एक शिक्षित स्त्री है और जो शिक्षित होने के कारण ही बिना किसी सहारे के जीवन का संकट के समय नेतृत्व भी करती है। इस उपन्यास की रचना का मकसद ही यह है कि इससे लोगों तक यह संदेश पहुँचाया जा सके कि स्त्री के शिक्षित होने से घर-घर को कितना लाभ पहुँचता है? खास बात जो यहाँ कहने की है वह यह है कि उस दौर के लेखकों ने लेखों और निबंधों के द्वारा ही नहीं बल्कि कहानियों और उपन्यासों के द्वारा यह बताने का प्रयास किया है कि स्त्री शिक्षा देश और समाज की उन्नति के लिए क्यों जरूरी है।

संदर्भित ग्रन्थ

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	—	राम कुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य की भूमिका	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
साहित्येतिहास: संरचना और स्वरूप	—	सुमन राजे
साहित्येतिहास आदिकाल	—	सुमन राजे
हिन्दी साहित्य का आदिकाल	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी

हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	डॉ० नगेन्द्र
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	—	गणेश बिहारी मिश्र
हिन्दी साहित्य परिचय	—	दयाशंकर शर्मा
हिन्दी साहित्य विमर्श	—	पं० लाल पु० लाल बक्शी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	—	रामकुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	—	रामरतन भटनागर
हिन्दी साहित्य परिचय	—	रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

बोध प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. आधुनिक शिक्षा और बौद्धिक वर्ग पर प्रकाश डालिए।
2. आधुनिक काल पर प्रकाश डालिए।
3. आधुनिक काल की परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।
4. आधुनिक काल में स्त्री-स्वातंत्र्य को लेकर उठाए कदम पर चर्चा कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. आधुनिक काल से आप क्या समझते हैं? विभिन्न विद्वानों के मत द्वारा स्पष्ट कीजिए।
2. हिन्दी साहित्य के संदर्भ में आधुनिक काल का क्या स्वरूप है?
3. आधुनिक काल के साहित्य में क्या-क्या परिस्थितियाँ आई हैं? धार्मिक परिस्थिति पर प्रकाश डालिए
4. सामाजिक परिस्थितियों के परिपेक्ष्य में आधुनिक काल की विवेचना कीजिए।
5. आधुनिक काल में गद्य के उदय पर प्रकाश डालिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. हुकुमचन्द राजपाल के अनुसार आधुनिक काल क्या है?
2. प्रेस की स्थापना के संदर्भ में हजारीप्रसाद द्विवेदी का क्या वक्तव्य है?
3. 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।' इस नारे को किस दल ने और कब दिया?
4. महादेव गोविन्द रानडे में पर्दाप्रथा और बालविवाह का किस प्रकार विरोध किया?

इकाई (Unit)

14

भारतेन्दु युग

संरचना

14.1 उद्देश्य
14.2 प्रस्तावना
14.3 नवजागरण तथा आधुनिक बोध
14.4 साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली के उपयोग का आरम्भ एवं विकास
14.5 खड़ी बोली और साहित्यिक भाषा के रूप में उसका विकास
14.6 भारतेन्दु युग
14.7 भारतेन्दु युग के साहित्यकार
14.7.1 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
14.8 भारतेन्दु युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ
14.8.1 राष्ट्रीयता की भावना
14.8.2 सामाजिक दुर्दशा का चित्रण
14.8.3 नई सामाजिक चेतना
14.8.4 आर्थिक चिन्ताओं का प्रकटीकरण
14.8.5 जनजीवन का चित्रण
14.8.6 शृंगार की कविता
14.8.7 भक्ति भावना
14.8.8 प्रकृति चित्रण
14.8.9 हास्य-व्यंग्य की प्रधानता
14.8.10 रीति-निरूपण में परम्पराबद्ध ग्रंथों की रचना
14.8.11 समस्यापूर्ति परक काव्य रचना
14.8.12 काव्यानुवाद का आरम्भ
14.8.13 काव्य रूपों की विशेषता
14.8.14 ब्रजभाषा का प्रयोग
14.8.15 छन्द अलंकार
14.9 काव्य कृतियाँ-नाटक, उपन्यास, इतिहास और पुरातत्व सम्बन्धी, यात्रा वृतान्त, जीवनी
14.10 भारतेन्दु युगीन पत्राकारिता और साहित्य
14.11 भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य
14.12 नाटक, निबन्ध साहित्य, उपन्यास साहित्य
14.13 अन्य गद्य विधाएँ।
14.14 भारतेन्दु युगीन कविता
बोध प्रश्न

14.1 उद्देश्य

इस इकाई में भारतेन्दु युगीन साहित्य का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है तथा साथ ही इस साहित्य की विशिष्ट प्रवृत्तियों की जानकारी दी गई है—

- नवजागरण तथा आधुनिक बोध की संकल्पना से परिचित हो सकेंगे।
- साहित्यक भाषा के रूप में खड़ी बोली के उपयोग के प्रारम्भ और विकास की चर्चा कर सके
- खड़ी बोली गद्य के विकास की जानकारी दे सकेंगे।
- भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता, गद्य साहित्य, निबन्ध उपन्यास तथा अन्य गद्य विधाओं से परिचित हो
- भारतेन्दु युगीन कविता को विशेषताओं की जानकारी दे सकेंगे।

14.2 प्रस्तावना

भारतेन्दु युगीन कविता में भारतेन्दु ही प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उनकी कविता में सामाजिकता का आश मात्रा में मुखर हुआ हैं। सामंती परिवेश से कविता निकलकर आयी थी। इसलिए स्त्री के प्रति विलास भावना खत्म होकर उसकी दशा सुधारने हेतु शिक्षा आदि पर बल दिया जाने लगा। विधवा विवाह, बाल अंधविश्वास आदि की कठोर आलोचना होने लगी, वर्णव्यवस्था का कुछ कवियों ने विरोध किया तो दृष्टि यथास्थिती वादी ही रही। वस्तुत: भारतेन्दु युग में अन्तविरोध साफ झलकते हैं। राष्ट्रीयता, ब्रिटिश वर्णव्यवस्था, विधवा विवाह, जैसे मुख्य विषयों के संदर्भ में वे उभरकर आये हैं। जो भी हो परन्तु नये कविता संक्रमणावस्था से गुजर रही थी इसलिए कुछ कुरितियों का खण्डन, सामाजिक दुरावस्था प्र आर्थिक शोषण प्रति विरोध, खेद, धन विदेश जाने का विरोध जैसी कुछ प्रमुख घटनाओं का चित्रण व आया हैं।

भारतेन्दु का युग साधारणत: डॉ० नगेन्द्र के अनुसार भारतेन्दु संपादित मासिक पत्रिका 'कविवच का प्रकाशन वर्ष 1868 ई० से, सरस्वती के प्रकाशन वर्ष 1900 ई० तक हैं। अधिकांश विद्वानों ने उ युग का प्रारंभ ही 1843 से माना हैं। भारतेन्दु का जन्म 1850 में हुआ और मृत्यु 1885। डॉ० नगेन्द्र कहा हैं की, 'कोई काव्यप्रवृत्ति ठीक किसी निश्चित वर्ष प्रारंभ होकर किसी निश्चित वर्ष में समाप्त नहीं डॉ० रामचन्द्र शुक्ल भी 1868 से 1883 तक के 25 वर्ष को काल की नयी धारा-प्रथम उत्थान के स्वीकृत करते हैं। मिश्र बंधुओं ने भी 1868-1888 इन 19 वर्षों को भारतेन्दु युग कहा हैं। डॉ. केसरी शुक्ल ने 1865 से 1900 तक के 35 वर्षों को भारतेन्दु काल माना है। मार्क्सवादी ऋषि डॉ. रामविल भी 1868 से 1900 तक के काल को भारतेन्दु युग ही मानते हैं किन्तु अधिकांश विद्वानों ने डॉ० न कालखण्ड को (भारतेन्दु युग) योग्य एवं तर्कशुद्ध रूप में स्वीकार किया हैं।

रीतिकाल का अंत हमने 1843 माना हैं तो 1843 से 1967 के बीच किस प्रकार का काव्य लि रहा होगा ऐसा प्रश्न पाठकों के मन से उभर सकता हैं। डॉ० नगेन्द्र ने उसका भी उत्तर दिया हैं, 1 1967 तक का कृतित्व न तो पूर्णत: रीकिाल के प्रभाव-क्षेत्र के अन्तर्गत आता हैं और न इसमें भारते की पुनजागरणमूलक प्रवृतियाँ विद्यमान हैं। अत: इसका अनुशीलन भारतेन्दु युग की पृष्ठभूमि के रूप जा सकता है। क्योंकी इस कालखण्ड में भक्ति, श्रृंगार, नीति, हास्य, वीर भावनाओं की साहित्य सृजना थी। काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का सृजन भी हो रहा था किन्तु आधुनिकता से उसका जुड़ाव पूर्णत: नहीं था। का लेखन मात्र भारतेन्दु से ही प्रारंभ हो जाता हैं। भारतेन्दु युग की कविता का लक्ष्य किसी सामंत र रिझाना, प्रसन्न करना नहीं था, लोक जागरण फैलाना था। इसलिए उन्होंने काव्य रूप भी बदले और प्रवृत्तियाँ भी। परिवेश तो बदल ही रहा था।

14.3 नवजागरण तथा आधुनिक बोध

वैसे साहित्य में काल खण्डों की प्रारम्भिक और अंतिम तिथियों विशेष सार्थक नहीं होती। साहित्य, भाषा विशेष के बोलने वालों की चेतना में आने वाले परिवर्तन का प्रतिबिम्ब होता है। चेतना में यह परिवर्तन एकाएक किसी तिथि-विशेष को नहीं होता, वह धीरे-धीरे होता है। हिन्दी भाषियों ने नवजागरण और आधुनिक बोध क्रमश: विकसित हुआ। इस बात पर बराबर बहस होती है कि उन्नीसवीं सदी में भारतीय जनमानस में जो परिवर्तन हुआ, यह अंग्रेजों की देन है अथवा नहीं। यह मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि यदि अंग्रेजों के आगमन और उनके यहाँ शासक बनने ने भारतीय जनमानस को अत्यधिक प्रभावित किया। हमारे जीवन का हर पक्ष कही-न-कहीं अंग्रेजों के इस देश में आगमन से प्रभावित है।

अंग्रेजों के भारत में आगमन से भारतीय-मानस प्रभावित हुआ इसका सीधा-सा प्रमाण यह है कि इस देश के जिस भाग से उनका प्रभुत्व स्थापित हुआ उसी भाग से भारतीयों में नवजागरण और आधुनिकता की चेतना प्रारम्भ हुआ। सबसे पहले अंग्रेजों ने सन् 1757 ई० में प्लासी की लड़ाई जीतकर बंगाल पर अपना प्रभुत्व जमाया। ए.सी. सरकार ने इस वर्ष से बंगाल में मध्यकाल का अन्त और आधुनिक काल का प्रारम्भ माना है। 1818 ई० में महाराष्ट्र अधीन हुआ। महाराष्ट्र में आधुनिकता का प्रारम्भ इसी वर्ष से माना जाता है। सन् 1856 में अवध अंग्रेजों के अधीन हुआ। अवध के अंग्रेजों के अधीन होते ही लगभग सारा भारतवर्ष उनके अधीन हो गया। लेकिन अगले ही वर्ष 1857 ई० में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का सूत्रपातं भी यही से हुआ। जिस क्रम से और जिन स्थानों से भारत पर अंग्रेजों का शासन स्थापित होना शुरू हुआ, उसी क्रम से और उन्हीं स्थानों से अंग्रेजों प्रशासन, शिक्षा-संस्थाएँ, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन, समाज सुधार के आंदोलन आदि का प्रारम्भ हुआ। कलकत्ता में 1800 ई० में 'ओरियण्टल सैमिनरी' की स्थापना की गयी, जो बाद में फोर्टविलियम कालेज कहलाया। इससे पहले 1780 ई० में कलकत्ता, मद्रास और बम्बई विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में विश्वविद्यालयों की स्थापना बहुत बाद में हुई। सबसे पहले राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' (1828 ई०) की स्थापना और मूर्तिपूजा, जातिप्रथा, सतीप्रथा आदि का विरोध किया तथा विधवा-विवाह, स्त्रीशिक्षा, स्त्री-पुरुष की समानता अंग्रेजी शिक्षा आदि का समर्थन किया।

14.4 साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली के उपयोग का आरम्भ एवं विकास

उन्नीसवी शताब्दी से पूर्व खड़ी बोली का साहित्यिक भाषा के रूप में प्रयोग नगण्य है। नाथों, महानुभाव, पंथियों, वारकरियों और कबीर पंथियों आदि ने अपनी रचनाओं में खड़ी बोली का जो उपयोग किया है, उसके पीछे प्रेरणा धर्म की है, न कि साहित्य। यह अलग बात है कि इसमें से कुछ की रचनाएँ साहित्यिक महत्व पा सकी। लेकिन खड़ी बोली को साहित्य के माध्यम के रूप में विकसित करने से इनका योगदान अवश्य स्वीकार करना होगा। सचेत रूप से साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली का उपयोग अमीर खुसरों ने किया। उन्होंने अपनी पहेलियाँ मुकरिया और कविताएँ खड़ी बोली में लिखी, लेकिन उनकी रचनाओं में खड़ी बोली का जो रूप आज मिलता है यह वही जिसका उपयोग खुसरों ने किया था, इस पर स्नेह प्रकार किया जाता है। संत कवियों की सखियों के अतिरिक्त, मीरा, माधोदास, रहीम, नरहरि, गंग, सूदन कुलपति, आलम शेख, भूषण, नागरीदास, ग्वाल, धनानंद, बेनी इत्यादि कवियों की रचनाओं में यंत्र-तंत्र खड़ी बोली के साहित्यिक भाषा के रूप में उदाहरण मिलते है। दरअसल भारतेन्दु से पहले खड़ी बोली का साहित्यिक भाषा के रूप में उपयोग दक्खिन के कवियों और गद्यकारों ने किया। कवियों में गेसूदरीज, मुहम्मद कुलीकुतुबशाह, इब्नशिती, शेखसाड़ी आदि ने जिस भाषा में अपनी कविताएँ लिखी है। वह मूलत: खडी बोली है जिस पर अरबी-फारसी, मराठी तथा दक्षिण भारतीय भाषाओं का कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा है। सन् 1700 के बाद इस दक्खिनी हिन्दी का अरबी-फारसीकरण किया जाने लगा और बाद में इसे उर्दू घोषित किया गया। दक्खिनी हिन्दी गद्य के लेखकों ख्वाजा बन्देनवाज गेसूदराज शाह मीराजी, शाह बुरहानदीन, अब्दुस्समद, मुहम्मद वली उल्ला कादरी,

अबिदशाह अलहसन-उल-हुसैनी इत्यादि की गद्य रचनाओं की भाषा खडी बोली हिन्दी ही है। उसमें लेखक के मुसलमान होने और गद्य रचनाओं में सूफी मत के निरूपण आदि के कारण अरबी-फारसी का पुट अवश्य है।

14.5 खड़ी बोली और साहित्यिक भाषा के रूप में उसका विकास

हिन्दी भाषा और गद्य के उदय के संबंध में हमने पहले भी विचार किया है। वहाँ हमने हिन्दी उर्दु के मसले पर भी विस्तार से चर्चा की है। यहाँ हम खड़ी बोली और साहित्य की भाषा के रूप में उसके विकास पर दृष्टि डालेंगे। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य से आधुनिक काल को अलग करने वाला एक क्षेत्र यदि नवजागरण और आधुनिकता बोध का विकास है तो दूसरा, महत्वपूर्ण क्षेत्र है साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में खड़ी बोली की स्वीकृति और विकास। विभिन्न कारणों से आधुनिक काल से पहले राजस्थानी, मैथिली, अवधी और ब्रजभाषा हिन्दी की साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। खड़ी बोली को तो आधुनिक काल में ही पहले गद्य की भाषा के रूप में और बाद में पद्य या काव्य की भाषा के रूप में स्वीकृति मिली। इसका अर्थ यह नहीं है कि खड़ी बोली आधुनिक काल में ही जन्मी। बोली या जनभाषा के रूप में वह भी उतनी ही पुरानी है जितनी हिन्दी क्षेत्र की अन्य बोलियाँ।

खड़ी बोली मूलत: दिल्ली और मेरठ के आसपास बोली जाने वाली है। इसका जन्म ग्यारहवीं शताब्दी में अपभ्रंश से वैसे ही हुआ जैसे अन्य हिन्दी बोलियों का हुआ। खड़ी बोली पुकारी जाने से पहले यह हिन्दी हिन्दी या दक्खिनी हिन्दी के नाम से पुकारी जाती थी। सबसे पहले 1803 ई. में लल्लू जी लाल और सदल मिश्र ने इसे 'खड़ी बोली' कहा। 'प्रेम सागर' में उन्होंने लिख—"एक समै व्यासदेव कृत श्रीमत भागवत के दसम स्कन्ध की कथा को चतुर्भुज मिश्र ने दोहा चौपाई में ब्रजभाषा में किया। सो पाठशाला के लिए महाराजाधिराज सकल गुण निधान, पुण्यवान, महाजान मारकुइस वालिजलि गवर्नर जनरल प्रतापी के राज में श्री युतगुनगाहक गुनियन सुखदायक जान मिलकिरिक्त की आज्ञा से सवंत् 1860 में लल्लूजी लाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्त्र अवदीच आगरे वाले ने जिसका सार ले यामिनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की 'खड़ी बोली' में बहू नाम प्रेमसागर धरा।" उसी वर्ष सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' के संबंध में लिखा'—अब संवत् 1860 में 'नासिकेतोपाख्यान' को जिसमें चंद्रवती की कथा कही है, देववाणी से कोई कोई समझ नहीं सकता, इसलिए खड़ी बोली में किया।" इसका नाम खड़ी बोली क्यों रखा गया और उसका अर्थ क्या है, इस पर बहुत विवाद रहा है इसकी चर्चा करना यहाँ अप्रासंगिक होगा।

14.6 भारतेन्दु युग

आधुनिक काल को कई उप-कालों में विभक्त किया गया है। डॉ० नगेंद्र के अनुसार ये उप-काल निम्नवत् है—

1. पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु युग)	—	1857 ई० — 1900 ई०
2. जागरण सुधार काल (द्विवेदी युग)	—	1900 ई० — 1918 ई०
3. छायावादी युग	—	1918 ई०-1938 ई०
4. छायावादोत्तर काल		
(अ) प्रगति-प्रयोग काल	—	(1938 ई०-1953 ई०)
(ब) नवलेखन काल	—	(1953 ई० ..... ई०)

उक्त वर्गीकरण काव्य की दृष्टि से है। गद्य में हुए विकास को अलग ढंग से समझा जा सकता है आधुनिक काल के प्रथम चरण को भारतेन्दु काल कहना इसलिए उपयुक्त है क्योंकि यह नामकरण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के महिमामंडित व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर किया गया। भारतेन्दु जी का रचनाकाल सन

1850 ई० से 1885 ई० तक रहा है। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका का सम्पादन 1903 ई० में संभाला था। सरस्वती का प्रकाशन सन् 1900 ई० से प्रारंभ हुआ था अत: 1850 ई० से 1900 ई० तक को अवधि को 'भारतेन्दु युग' कहना समीचीन है। भारतेन्दु जी सही अर्थों में हिंदी गद्य के जनक कहे जा सकते हैं। उनकी भाषा में न तो मुंशी सदासुखलाल की भाषा का पंडिताऊपन है, न लल्लूलाल का ब्रजभाषापन और न सदल मिश्र का पूरबीपन। राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन शब्दों तक ही सीमित न था, वाक्य-विन्यास में भी व्याप्त था तो दूसरी ओर राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा विशुद्ध एवं मधुर होते हुए भी आगरा की बोली का पुट लिए हुए थी। भारतेन्दु जी ने भाषा संस्कार करते हुए इन सभी दोषों से यथासंभव अपनी भाषा को मुक्त रखा। उन्होंने न केवल गद्य की भाषा का संस्कार किया। अपितु पद्य की ब्रजभाषा को भी सुसंस्कृत किया।

भारतेन्दु जी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने हिंदी साहित्य को नवीन मार्ग दिखलाया। देशहित एवं समाजहित की भावना का समावेश सर्वप्रथम भारतेन्दु जी की साहित्यक रचनाओं में हुआ है। बंगाल में लिखे गए नाटकों एवं उपन्यासों में इसका सूत्रपात पहले ही बंगाली लेखक कर चुके थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतेंदु के इस योगदान पर टिप्पणी करते हुए लिखा है—"हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद बढ़ रहा था, उसे उन्होंने दूर किया। हमारे साहित्य को नए नए विषयों की ओर प्रवृत्त करने वाले हरिश्चंद्र ही हुए।"

भारतेन्दु युग की मझी हुई परिष्कृत भाषा को सामने लाएँ तो हिंदी भाषा जनता की बोली थी। अत: भाषा का जो विवाद उनसे पहले चल रहा था, वह बहुत कुछ सुलझ गया।

14.7 भारतेन्दु युग के साहित्यकार

भारतेन्दु जी ने यद्यपि 35 वर्ष की अल्पायु ही प्राप्त की किंतु इस अल्पकाल में ही उनके बीच लेखकों का एक अच्छा-खासा मंडल तैयार हो गया था जिसमें **पं० प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', 'ठाकुर जमोहन सिंह और पं. बालकृष्ण भट्ट** के नाम लिए जा सकते हैं।

भारतेन्दु जी की शैली के दो रूप हैं—1. भावावेश शैली, 2. तथ्य निरूपण शैली। इनमें से प्रथम शैली में लिखे गए वाक्य छोटे-छोटे हैं। भाषा एवं बोलचाल की है। तथ्य निरूपण शैली के अंतर्गत संस्कृत शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है।

पं० प्रतापनारायण मिश्र विनोदी प्रकृति के थे, अत: उनकी भाषा में स्वच्छंदता एवं बोलचाल की चपलता और भावभंगिमा दिखाई पड़ती है।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' के लेखों में गद्य काव्य के पुराने ढंग की झलक दिखाई पड़ती है।

पं० बालकृष्ण भट्ट की भाषा वैसी है जैसी खरी-खरी कहने वालों की होती है।

ठाकुर जगमोहन सिंह की भाषा-शैली शब्द-शोधन और आनुप्रसिकता से युक्त है।

भारतेन्दु युग में गद्य का प्रारंभ भी नाटकों से हुआ। **भारतेन्दु जी** ने बंगला के नाटक, **'विद्यासुंदर'** का हिंदी में अनुवाद किया। नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने का उपयोग भी पहले पहल भारतेन्दु मंडल के लेखकों ने किया। यहीं नहीं ये लोग स्वयं भी नाटकों में अभिनय करते थे। **पं. शीतला प्रसाद त्रिपाठी** कृत **'जानकी मंगल नाटक'** में भारतेंदु जी ने स्वयं अभिनय किया था और इसे देखने स्वयं काशीनरेश महाराज ईश्वरी नारायण सिंह पधारे थे। प्रतापानायण मिश्र ने एक नाटक में अभिनय करने के लिए मूँछ मुड़वा लेने की आज्ञा अपने पिता से माँगी थी।

इस काल में अनेक अच्छे निबंधकार भी हुए जिन्होंने विविध विषयों पर निबंध लिखे। राजनीति, समाज, देश, ऋतु, पर्व, त्योहार, जीवन चरित्र तथा अन्य अनेक विषयों पर इस काल में निबंध लिखे गए।

बंगभाषा के अनुकरण पर हिंदी में उपन्यासों की ओर झुकाव बढ़ रहा था। हिंदी का पहला उपन्यास **'लाला श्री निवास दास'** द्वारा लिखा गया। जिसका नाम है—**'परीक्षा गुरु'**। इसके उपरांत **राधाकृष्ण दास** **'निस्सहाय हिंदू'** और **पं० बालकृष्ण भट्ट** और पं० बालकृष्ण भट्ट ने **'नूतन ब्रह्मचारी'** तथा **'सौ अजान एक सुजान'** नामक उपन्यासों की रचना की।

इस काल में उपन्यासों के अनुवाद की परंपरा भी चल रही थी। प्रतापनारायण मिश्र एवं ठाकुर जगमोहन सिंह ने भी बाँग्ला उपन्यासों के अनुवाद हिंदी में किए। यद्यपि इन अनुदित उपन्यासों की भाषा उन्नत नहीं तथापि हिंदी पाठकों को नए ढंग के सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों का परिचय प्राप्त हो रहा था।

14.7.1 भारतेन्दु हरिश्चन्द

भारतेंदु जी का जन्म 1850 ई० में तथा मृत्यु 35 वर्ष की अल्पायु में सन् 1885 ई० में हुई। अल्पकाल में ही इस महान साधक ने माँ भारती के भंडार में अभूतपूर्व वृद्धि की। वे बहुमुखी प्रतिभा स साहित्यकार थे। उनके संपूर्ण कृतित्व का विवरण निम्नवत् है—

मौलिक नाटक

1. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति	2. चंद्रावली नाटिका	3. विषस्य विषमौषधम्
4. भारत दुर्दशा	5. नीलदेवी	6. अंधेर नगरी
7. प्रेम जोगिनी	8. सती प्रताप (अधूरा)।	

अनूदित नाटक

1. विद्यासुंदर	2. पाखंड विडंबन	3. धनंजय विजय
4. कर्पूर मंजरी	5. मुद्राराक्षस	6. सत्य हरिश्चंद्र
7. भारत जननी	8. दुर्लभ बंधु	9. रत्नावली।

काव्य कृतियाँ

1. प्रेमाश्रुवर्णन	2. प्रेम माधुरी	3. प्रेम तरंग
4. उत्तरार्द्ध भक्त माल	5. प्रेम प्रलाप	6. गीत गोविंदानंद
7. सतसई सिंगार	8. होली	9. मधुमुकुल
10. रागसग्रंह	11. वर्षा विनोद	12. विनय प्रेम पचासा
13. फूलों का गुच्छा	14. प्रेम फुलवारी	15. कृष्ण चरित्र
16. तन्मय लीला	17. दान लीला	18. प्रबोधिनी
19. प्रातसमीरन	20. बकरी विलाप	21. रामलीला।

उपन्यास

1. हमरी हठ	2. रामलीला	3. सूलोचना
4. शीलवती	5. सावित्री चरित्र।	

निबंध

1. सबै जाति गोपाल की	2. मित्रता	3. सूर्योदय
4. कुछ आप बीती कुछ जग बीती	5. जयदेव	
6. बंग भाषा की कविता।		

इतिहास ग्रंथ

1. कश्मीर कुसुम 2. बादशाह दर्पण।

भारतेंदु जी के पिता **गोपालचंद्र** भी अच्छे कवि थे और '**गिरधरदास**' नाम से कविता करते थे। भारतेन्दु जी के काव्यगुरु पं. लोकनाथ थे।

भारतेन्दु जी के नाटकों, निबन्धों में विषय वैबिध्य था। चद्रावली नाटिका में प्रेम के आदर्श का निरूपण है, तो नीलदेवी ऐतिहासिक नाटक है। भारत-दुर्दशा में देश की दशा का चित्रण है तो विषस्य विषमौषधम् में देशों रजवाड़ों के षड्यत्रों का पर्दाफाश किया गया है। प्रेम जोगिनी में धार्मिक पाखंड का चित्रण हैं उनकी कविता में भक्ति भावना, श्रृंगारिकता के साथ-साथ स्त्री शिक्षा, समाज सुधार, राष्ट्रीयता आदि का बेजोड़ संगम हैं भारतेदु युग के अन्य लेखकों ने भी अपने समाचार पत्रों-पत्रिकाओं एवं रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों, मिथ्याचारों, अधंविश्वासों पर कुठाराघात किया।

भारतेंदु युग के प्रमुख कवियों में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के अतिरिक्त प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', 'अम्बिकादत्त व्यास, ठाकुर जगमोहन सिंह, राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वमी आदि है। भारतेंदु जी के नाटकों में जो गीत हैं उनमें एक और तो भारत के अतीत गौरव का अंकन किया गया है, तो दूसरी ओर वर्तमान अधोगति का चित्रण हैं प्रतापनारायण मिश्र की 'हरगंगा' 'हिंदी की हिमायत', 'बुढ़ापा' आदि कविताएँ बहुत प्रसिद्ध हुई। बदरीनारायण चौधरी की कविताओं में भी समकालीन विषयों का उद्घाटन किया गया है। उनकी कविताओं में देश की तत्कालीन दशा का भी यथार्थ चित्र अंकित किया गया है।

14.8 भारतेन्दु युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ

भारतेन्दु बाबु को आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रवर्तक माना जाता है। भाषा, काव्य रूपों की विविधता, नया जागरण संदेश उन्हीं की कविता द्वारा हिन्दी साहित्य में आया। इसलिए हिन्दी नवजागरण के साहित्यिक अग्रदूत भी उन्हें कहा जाता हैं। श्रृंगार और विलासिता के केंचूल को उन्होंने दूर किया था और कविता को जनसाधारण के निकट लाया। नायिका का नखशिख वर्णन, और विरह की व्याकुल का स्थान, देश की जनता की दुर्दशा का वर्णन, देश स्वाभिमान की भावना ने ले लिया। यही कारण है की श्रृंगार, अलंकार, रीति निरुपण, प्रकृति का उद्दीपन चित्रण प्राय: कम होता गया। भक्ति, नीति भी पिछड़ती गयी। जातीय, राष्ट्रीय प्रबोधन को पराश्रय मिला। राष्ट्रीय भावनाओं का देश भक्ति का चित्रण इस कालखंड में अधिक देखा जा सकता है। शिक्षा का महत्व, विधवा विवाह का समर्थन, बालविवाह का विरोध, अंग्रेजी राजनीति की आलोचना, राजभक्ति, गो-रक्षा जैसे विषय कविता के केन्द्र में आए। ब्रिटिशों ने भौतिक साधनों तर्क पद्धतियों शासन प्रबंधन से नया युग पहले ही लाया था। मुद्रण तंत्र का आविष्कार, समाचारपत्रों का विकास आदि ने जन-जागरण को फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। समाजसुधार एवं देश सुधार की भावना पल्लवति-पुष्पित होती गई।

भारतेन्दु काल के प्रमुख अन्य साहित्यकारों ने भी भारतेन्दु की प्रवृत्तियों को स्वीकारा और साहित्य सृजन किया। जिनमें महत्वपूर्ण है, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र जगमोहन सिंह, राधाकृष्ण दास, जगन्नाथदास रत्नाकर, नवनीत चतुर्वेदी आदि। डॉ० नगेन्द्र ने राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना, भक्तिभावना, श्रृंगारिकता, प्रकृति चित्रण, हास्य-व्यंग, रीति-निरुपण, समस्यापूर्ति काव्यानुवाद, कलापक्ष के अन्तर्गत आनेवाली प्रवृत्तियों का विश्लेषण अपने इतिहास में किया हैं।

14.8.1 राष्ट्रीयता की भावना

भारतेन्दु युग में देशभक्ति के साथ राजभक्ति की प्रसार भावना का आविष्कार हुआ हैं। देशभक्ति के अंतर्गत ही राष्ट्रीयता का विस्तार मात्र उनकी उपलब्धि रही हैं। वीर प्रताप, छत्रसाल, राजा शिवाजी ने क्षेत्र विशेष वीरता, राष्ट्रीयता का प्रतिपादन किया। भूषण जैसे कवियों ने उसी प्रकार का चित्रण किया परन्तु स्वयं

बाबू भारतेन्दु ने क्षेत्रियता से ऊपर संपूर्ण राष्ट्र की नब्ज को टटोलने का प्रयास किया। इस काल के कवियों देशभक्ति एवं राजभक्ति की भावना का कविता द्वारा अभिव्यक्त किया हैं। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार देश भक्ति यह भावना बाद में मैथलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' में लक्षित हुई स्वयं भारतेन्दु की 'विजयिनी' वि 'वैजयन्ती', प्रेमधन की 'आनंद अरुणोदय', प्रतापनारायण मिश्र की 'महापर्व', 'राधाकृष्णदास की 'भा बारहमासा' और विनय शीर्षक कविताएँ देशभक्ति से पुरित एवं प्रेरित हैं—

"भीतर भीतर सब रस चूसै,
हंसि हंसि के तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि सज्जन! नहीं अंगरेज।"

जैसी कविता लिखकर अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले शोषण का चित्र वे खींचते हैं। देशवासियों को जा करते दिखते हैं।

तो दूसरी ओर अंग्रेजों द्वारा देश की संपत्ती का होने वाला दोहन देखकर मन भारी हो जाता हैं—

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी,
पै धन विदेश चल जात यह आति स्वारी।

का भाव उनकी कविता में व्यक्त हुआ है। भारतेन्दु युग की कविता राष्ट्रीय भावना की कविता हैं। विदे वस्तुओं के प्रयोग का बहिष्कार भी उन्होंने किया है। देश की जागृति के लिए बार-बार ईश्वर वंदना भी वे क हैं। देश सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक पतन को देखकर वे अतीत का गौरव गान भी करते जिससे साम्प्रदायिक भावनाओं के विकास में आगे चलकर सहयोग मिलें। उनका हिन्दी-हिन्दू-हिन्दूस्तान वा गुणगान इसी कोटि का हैं।

अंग्रेजी राज के करण भारत मुगलों के कठोर शासन से मुक्त हुआ, इस प्रकार का एक दृष्टिके भारतेन्दु की कविता में आया हैं। अत्याचार पूर्ण शासन की समाप्ति प्रति वे संतोष जाहिर करते हुए अंग्रेजों प्रति राजभक्ति/निष्ठा को भी इस समय की कविता व्यक्त करते हैं। इस देश मे सुधार लाने की गुहार भी ब्रिटिशों प्रति लगाते हैं। एक ओर यह कविता देशभक्ति का परिचय देती हैं तो एक ओर राजभक्ति का। स्व भारतेन्दु बाबू को ब्रिटिश राज परम मोक्ष का फल लगता हैं—

"परम-मोक्ष फल राजपद परसन जीवन माँही।
बृटन देवता राजसुत पर परसहु चित चाहि।"

विद्वानों को राजभक्ति प्रदर्शन के कारण रूप में कंपनी के अत्याचारपूर्ण शासन समाप्ति और नयी शास एवं नयी व्यवस्था की स्थापना का स्वीकार भी लगती हैं—

"लेकर राज कंपनी के कर सौ निज हाथन,
किए सनाथ भोली भारत की प्रजा अनाथन।"

में व्यक्त होती हैं। जिसमें राजभक्ति साफ झलकती हैं, महाराणी विक्टोरिया की घोषणा का स्वागत, विक्टोरि की मृत्यु पर शोक, लार्ड रिपन के प्रति श्रद्धाजंली आदि विषयों पर इस काल के कवियों ने कविता लिखी फिर भी 'प्रेमधन' जैसे कवि अंग्रेजों को भारत हित के लिए राज करने के लिए कहते हैं।

"करहु आज सों राज आप केवल भारत हित,
केवल भारत के हित साधन में दीने चित।"

विद्वानों का कहना हैं राजभक्ति के अंतर्गत आने वाली कविता को देखकर कवियों पर राजद्रोह या साम्प्रदायिकता का दोष नहीं लगाना चाहिए। सही भी हैं परन्तु इस काल के साहित्य ने साम्प्रदायिकता की प्रवृत्ति का बीजारोपन किया इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। नगेन्द्र के अनुसार भले ही 'यह नयी राजनीतिक चेतना की कविता हो' फिर भी यह कहना होगा कि स्वतंत्रता के बाद भारत उत्तर नयी राजहनीति से रूढ़ होकर सन् 1990 के साहित्य, राजनीतिक में यहीं उभरकर आयी। इसी कारण नवजागरण को ही हिन्दु धर्म पुनरुत्थान के रूप में शंभुनाथ, वीर भारत तलवार जैसे विद्वनों ने देखा जो सही प्रतीत होती हैं।

14.8.2 सामाजिक दुर्दशा का चित्रण

रीतिकाल के कवियों ने समाज की ओर से अपनी आँखों बंद कर ली थी, किंतु भारतेंदु युगीन कवियों ने सामाजिक जीवन का यथातथ्य निरूपण करने में रुचि दिखाई है। आर्यसमाज एवं ब्रह्मसमाज जैसे सामाजिक आदोलन के प्रभाव से इस काल में नवीन सामाजिक चेतना का उदय हुआ ओर विधवा विवाह, नारी शिक्षा, अस्पृश्यता निवारण की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करने वाली कविताएँ लिखी गई। सामाजिक रूढ़ियों को नकारते हुए बाल विवाह, विधवा विवाह, सती प्रथा, छुआछूत को काव्य विषय बनाया गया और सामाजिक कुरीतियों, छल-कपट एवं पाखंड का खंडन करने में इन कवियों ने बढ़-चढ़कर योगदान किया। भारतेंदु जी ने भारत दुर्दशा का चित्रण इन पंक्तियों में किया—

रोबहु सब मिलि आबहु भारत भाइ।
हा हा भारत दुर्दशा देखी न जाई।।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करने वाले साहबों पर व्यंग्य करते हुए लिखा—

चूसहु चुरुट लाख पर लागत पान बिना मुँह सून।
अच्छर चारि पढ़े अंगरेजी बन गए अफलातून।।

बाल विधवाओं की दुर्दशा पर प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा—

'कौन करेजो नहिं कसकत सुनि विपति बाल विधवन की।'

राधाचरण गोस्वामी ने भी भारत की दुर्दशा का चित्रण करते हुए लिखा है—

मैं हाय-हाय दै धाय पुकारौं रोई।
भारत की डूबी नाव उबारौ कोई।।

वस्तुत: वे अपनी पीढ़ी को सचेत करते हुए भारत की डूबी नैया को उबारने की बात कह रहे हैं।

14.8.3 नई सामाजिक चेतना

युगीन कविता ने नयी सामाजिक समस्याओं पर कविता लिखी। जिसमें सामाजिक समस्याओं को दूर करते हुए, ब्राह्म समाज, आर्य समाज के आंदोलनों का प्रभाव उक्त काल की कविता पर पड़े। विधवा विवाह का समर्थन, बालविवाह का विरोध, सती प्रथा का विरोध, छुआछूत के प्रति उदारता का दृष्टिकोण, सड़ी-गली रुढ़ियों का विरोध , करने के लिए मध्यवर्ग के सामाजिक जीवन का चित्रण कविता में आया। एक तरह से यह कविता जनवाद की ओर दृष्टिपात करती हैं। भारतेन्दु युग के कवियों को समाजसुधार के कवि माना जाता हैं। जिस पर प्रश्न भी उठते हैं। कुछ कवि उदारता का परिचय नहीं देते। 'भारत धर्म' कविता में अंबिका दत्त व्यास द्वारा वर्णाश्रम धर्म का दृढ़तापूर्वक अनुमोदन और राधाचरण गोस्वामी द्वारा विभिन्न कविताओं में प्राचीन शास्त्र-नीतियों का समर्थन एवं विधवा-विवाह का विरोध ऐसे ही उदाहरण हैं। अर्थात् यह स्पष्ट हैं कि कुछ कवि समाजसुधार के आग्रही थे तो कुछ यथास्थितिवाद को बनाये रखने में धन्यता मानते थे।

स्वयं भारतेन्दु ने मात्र सुधारणावादी दृष्टिकोण अपनाया हैं। 'भारत दुर्दशा' जैसे नाटकों में वर्णव्यवस्था की संकीर्णता का विरोध उन्होंने किया हैं—बहुत हमने फैलाये धर्म, बढ़ाया छुआछूत का कर्म इनके समकालीन कवि बालमुकुन्द गुप्त ने भी समाजसुधार की दृष्टि अपनायी हैं। धनिकों को संबोधित करते हुए वे कहते हैं——

"हे धनिकों, क्या दीन जनों की, नहीं सुनते हो हाहाकार,
जिसका मरे पड़ोसी भूखा, उसके भोजन को धिक्कार।
भूखें की सुधि उसके जीं में, कहिए किस पथ से जावे,
जिसका पेट मिष्ट भोजन से, ठीक नाक तक भर जावें।।"

वस्तुत: आर्य समाज की सामाजिक एवं धार्मिक सुधार वृत्ती का प्रभाव कुछ लेखकों पर स्पष्ट है। कुछ सहर्ष स्वीकारते हैं, कुछ नहीं। ऐसे ही वेद मार्ग छोड़कर मुस्लिम धर्म संस्कृति को स्वीकारने वालों की कटु आलोचना राधाचरण गोस्वामी करते हैं।

"यज्ञ याग, सब मेट पेट भरन में चातुर
पितर पिन्ड नहीं देते यवन-सेवा में आतुर।
पढ़े जनम तैं फारसी छोड़, वेद मारग दियो।
हा हा हा विधि वाम ने सर्वनाश भारत कियो।"

'हा हा हा' से स्पष्ट है कि गोस्वामी की व्यथा कौन-सी और किस प्रकार की रही हैं।

प्रतापनारायण मिश्र भी स्त्री शिक्षा के प्रति सकारात्मक रवैया अपनाते हैं, बालविवाह का विरोध भी करते हैं और विधवाओं के दुख से विलाप भी करते हैं—

"निज धर्म भली विधि जानै, निज गौरव पहिचानै,
स्त्रीगण को विद्या देवै, करि पतिव्रता यश लावै।
झूठी यह गुलाब की लाली धोवत ही मिटी जाय,
बाल-ब्याह की रीति मिटाओ रहे लाली मुँह छाय।
विधवा विलपै नित धेनु कटैं कोऊ लागत हाय गोहार नहीं।"

पुराणपंथी दृष्टि के बावजूद भी कविता में बड़ी मात्रा में सुधारणावादी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। एक तरह से मानवतावादी विचारों-भावनाओं का सृजन कर्म इस दौर में शुरू हो चुका था, ऐसा कहा जा सकता है।

14.8.4 आर्थिक चिन्ताओं का प्रकटीकरण

ब्रिटिशों द्वारा की जाने वाली आर्थिक लूट को देखकर भारतेन्दु का मन भी बड़ा व्यथित हो चुका था। इसलिए कवियों ने स्वदेशी उद्योगों एवं वस्तुओं का प्रयोग करने का आव्हान किया था। भारतेन्दु ने 'प्रबोधिनी', 'कविता में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को प्रत्यक्ष प्रेरणा दी हैं। भारतीय परिपत्रक पर सवाल उठाते हुए भी ब्रिटिशो की आर्थिक शोषण नीति का विरोध प्रतापनारायण मिश्र जैसे कवियों ने किया हैं—

"अभी देखिए क्या दशा देश की हो,
बदलता हैं रंग आसमां कैसे कैसे!"

सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों की ओर से भी, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार भाव भारतेन्दु में आया हैं। जिसमें वे मलमल और मारकीन का प्रयोग करने वालो की आलोचना कटु शब्दों में करते हैं—

"मारकीन मलमल बिना चलत कछु नाहिं काम,
परदेसी जुलहान के मानहुँ भये गुलाम।"

तो ब्रिटिशों की साम्राज्यवादी नीति के प्रति गहरा क्षोभ भी कवियों ने व्यक्त करते हुए स्वतंत्रता की माँग की है–

"सब तजि गहौ स्वतंत्रता, नहिं चुप लाते खाब।
राजा करै सो न्याव हैं, पाँसा परे सो दाँव।"

या तत्कालीन भारतीय समाज की आर्थिक दुरावस्था देखकर कवि करुणार्द हो जाते हैं—

"रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।।"

भारत की आर्थिक दुर्गति को ब्रिटिश शासन कारणीभूत रहा हैं, इस बात को कवि भूलते नहीं और वे देशप्रेम भाव को भी व्यक्त करने से चुकते नहीं।

14.8.5 जन-जीवन का चित्रण

डॉ० रामविलास शर्मा के अनुसार भारतेन्दु युग की जनवादी भावना उसके समाज सुधार में निहित हैं। आगे वे कहते हैं कि, वह केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समता और भाईचारे का भी साहित्य हैं। भारतेन्दु स्वदेशी आन्दोलन के भी अग्रदूत न थे, वे समाज सुधारकों में से भी प्रमुख थे। स्त्री-शिक्षा, विधवा विवाह, विदेश-यात्रा आदि के समर्थक थे। ..... भारतीय महाजनों के पुराने पेशे सूदखोरी की उन्होंने कड़ी आलोचना की थी, सर्वदा से अच्छे लोग ब्याज खाना और चुड़ी पहनना एक-सा समझते हैं पर अब आलसियों को इसी का अवलंब हैं, न हाथ हिलाना पड़े न पैर, बैठे बैठे भुगतान कर लिया। (कविवचन सुधा, 22 दिसम्बर 1873)

कवियों ने मानवहित के लिए सामाजिक सुधार को अपनाते हुए कुप्रथाओं, धार्मिक मिथ्याचार, छल-कपट, स्वार्थपरायणता, आदि विषयों पर कविता द्वारा प्रहार किया हैं। अंग्रेजों के शोषण विरुद्ध जागरण फैलाया हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया हैं। शासन सुधार की आकांक्षा भी जन-जीवन को व्यक्त करती हैं। अपनी कविता में यथार्थ चित्रण समाज जीवन का ही चित्रण हैं। जन-जीवन को उभारने हेतू उन्होंने लावणी, गजल, ठुमरी, मलार, दादरा जैसे लोकगीतों, संगीत का प्रयोग कविता में भारतेन्दु ने किया हैं। जनता में जागरण हेतू ग्रामगीतों द्वारा उन्नति का मार्ग इन्होंने स्वीकारा हैं।

14.8.6 शृंगार की कविता

भारतेन्दु युग के कवियों ने शृंगार की म ..दित अभिव्यक्ति की है। रीतिकालीन पद्धति पर नख-शिख वर्णन एवं नायिका भेद का चित्रण तो इन कवियों ने किया ही है, साथ ही कृष्ण को नायक मानकर तथा राधा को नायिका मानकर उनकी प्रेमलीलाओं का चित्रण भी किया है। भारतेन्दु जी की रचनाओं-प्रेम सरोवर, प्रेम तरंग, प्रेम माधुरी, प्रेम फुलवारी में शृंगार भावना की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। वयसंधि को प्राप्त नायिका का सुंदर चित्र दृष्टव्य है–

सिसुताई अजौं न गई तन तें,
तऊ जीवन जोति बटौरैं लगीं।
सूनि कै चरचा हरिचंद की कानन,
कूक दै भौंह मरोरैं लगीं।।
बचि सासु जेठानिन सौं पियतैं,
दुरि घूँघट मैं दृग जोरैं लगीं।

दुलही उलही सब अंगन तै,

दिन द्वै ते पीयूष निचौरें लगीं।।

इन कवियों ने वियोग शृंगार का भी सुन्दर चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। **ठाकुर जगमोहन** अपनी रचना 'प्रेम संपत्ति ललिता' में नायिका के विरह का निरूपण इन पंक्तियों में किया है—

अब यौं उर आवत है सजनी,

मिलि जाऊँ रे लगि कैं छतियाँ।

मन की करि भाँति अनेकन औ,

मिलि कीजिए री रस की बतियाँ।।

हम हारि अरी करि कोटि उपाय,

लिखी बहु नेह भरी पतियां।

जगमोहन मोहनी मूरित के बिना,

कैसें कटैं दूख की रतियाँ।।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र एवं **राधाकृष्णदास** जैसे कवियों ने शृंगार को अपना काव्य विषय बनाया।

14.8.7 भाक्ति भावना

भारतेंदु जी को भक्ति भावना पैतृक विरासत मं मिली थी। उनकी भक्तिपरक रचनाओं में है—भक्ति सर्वस्व, वैशाख महात्म्य एवं कार्तिक स्नान। इसीलिए वे इस प्रकार की पंक्तियाँ लिख सकने में हो सके—

"मेरे तो साधन एक ही हैं जग नंदलला वृषभानु दुलारी।।" —भारतेंदु

राधाकृष्ण की मधुर छवि का अंकन उनके अनेक पदों में उपलब्ध होता है। यथा—

नैन भरि देखि लेहु यह जोरी।

मनमोहन सुंदर नर नागर श्री वृषभानु किसोरी।

कहा कहूँ छवि कहि नहिं आवै वह सांवर यह गोरी।। —भारतेंदु

पंडित प्रतापनारायण मिश्र एवं राधाकृष्णदास के काव्य में भक्तिभावना का वह स्वरूप दिखाई पड़ता जो निर्गुण भक्त कवियों के काव्य में विद्यमान था। उन्होंने संसार की नश्वरता, माया-मोह के बंधन, और वासना की निस्सारता, आदि का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है, यथा—

जो विषया संतन तजी ताहि मूढ़ लपटात।

जो नर डारत वमन करि स्वान सौं खात।। —राधाकृष्णदास

ईश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास व्यक्त करते हुए भारतेन्दु जी ने अपनी दीनता का उल्लेख किया है उनसे अपने उद्धार की प्रार्थना की है—

उधारौ दीनबंधु महराज।

जैसे हैं तैसे तुमरे ही नहीं और सौं काज।। —भारतेन्दु

इस काल की कुछ अन्य भक्तिपरक रचनाएँ इस प्रकार हैं

1. अलौकिक लीला — बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'
2. कंसवध — आंबिकादत्त व्यास
3. सूर्य स्तोत्र — बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'
4. नवभाक्तमाल — राधाचरण गोस्वामी
5. भक्ति सर्वस्व — भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र
6. वैशाख माहात्म्य — भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र
7. कार्तिक स्नान — भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र

14.8.8 प्रकृति चित्रण

रीतिकाल की तरह प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण का अभाव भारतेन्दु युगीन कविता में रहा है और वह स्वाभाविक है सौन्दर्य बोध में सहायक स्वतंत्र प्रकृति चित्रण का श्रेय किसी सीमा तक ठाकुर जगमोहनसिंह को ही दिया जा सकता हैं। भारतेन्दु समवेत अन्य कवियों ने परम्परा का निर्वाह किया गया हैं। "अम्बिकादत्त व्यास की 'पावस पचासा', 'गोविन्द गिल्लाभाई की 'षडऋतु', और 'पावस पयोनिधी' आदि कृतियों में वसंत और वर्षा ऋतु का आलंबनात्मक चित्र मौजूद है।।" भारतेन्दु की 'प्रात समीरन', 'प्रेमधन की 'मयंक महिमा' और प्रतापनारायण मिश्र की 'प्रेम पुष्पांजली' में स्वतंत्र प्रकृति चित्रण हैं किन्तु सफलतापूर्वक नहीं ऐसा मत नगेन्द्र व्यक्त कर चुके हैं क्योंकि "प्रकृति को शृंगारिक मनोदशाओं, सामाजिक उद्‌बोधन, नीति कथन आदि से संबद्ध करने की अनिवार्यता ने" प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन इस काल में रूप ग्राहक नहीं कर पाया परन्तु रीतिकाल के उद्‌दीपक वर्णन को न स्वीकारते हुए संस्कृत काव्य में उपलब्ध नैसर्गिक सौन्दर्य वर्णन से प्रकृति का सजीव चित्रण उनके काव्य में आया है। पर्वत श्रृंखला का सौन्दर्य चित्रण इसी प्रकार का हैं—

"पहार अपार कैलास से कोटिन ऊँची शिखा लगि अम्बर चूम।
निहारत दीठि भ्रमै पगिया गिरि जाक उत्तंगता ऊपर झूम।
प्रकाश पतंग सो चोटिन के बिकसें अरविन्द मलिन्द सुझूम।
लसै कटि मेखला के जगमोहन कारी घटा घन घोरत धूम।"

14.8.9 हास्य-व्यंग्य की प्रधानता

इस काल के कवियों ने हास्य-व्यंग्परक रचनाओं के महत्त्व को समझते हुए इनके माध्यम से अंगेजी शासन पाश्चात्य सभ्यता, सामाजिक अंधविश्वास एवं रूढ़ियों पर करारी चोट की। भारतेंदु जी ने अपने नाटकों एवं एकांकियों में व्यंग्योक्तियों के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों का सुंदर चित्रण किया है। 'अंधेर नगरी' में चूरनवाला कहता है—

चूरन साहब लोग जो खाता।
सारा 'हिंद' हजम कर जाता।।

नए जमाने की मुकरी में कवि ने सामयिक बुराइयों पर व्यंग्य किए हैं। मद्यपान के संबंध में उनकी व्यंग्योक्ति देखिए—

मुँह जब लागे तब नहिं छूटै,
जाति मान धन सब कुछ लूटै।
पागल करि मोहि करै खराब,
क्यों सखि साजन नहीं सराब।।

प्रतापनाराण मिश्र की कविताएँ हर गंगा, बुढ़ापा, उर्दू का स्यापा, हास्य-व्यंग की दृष्टि से बहुत प्रौ हुई।

14.8.10 रीति-निरूपण में परम्पराबद्ध ग्रंथों की रचना

रीति-निरूपण संबंधी परम्परा से संबंध ग्रंथों का लेखन भी इस कालखण्ड में हुआ हैं। भारतेन्दु युग लछिराम, बह्मभट्ट, कविराजा मुरारिदान और बालगोविन्द मिश्र आदि रीति-निरूपण पद्धति ग्रंथ लिख रहे जिसमें प्रमुख हैं लछिराम की महेश्वर विलास जिसमें नायिकाभेद एवं नवरस का विश्लेषण हैं, 'रामचन्द्रभूष अलंकार शास्त्र का ग्रन्थ है, 'रावणेश्वर कल्पतरु' सर्व-काव्यांग निरूपण कृती हैं। मुरारिदान का 'जसव जसोभूषण' बृहत काव्य शास्त्रीय ग्रंथ हैं। "यही मूलत: अलंकार ग्रंथ हैं जिसमें काव्य-स्वरूप, शब्दशक्ति, और रीति का सार मौजुद है। बालगोविन्द मिश्र का 'भाषा छन्द प्रकाश' में अड़तालीस मात्रिक-वार्णिक छ का स्वरचित काव्य-लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत है। अन्य दो उल्लेखनीय रचनाकार हैं प्रतापनारायणसिंह 'रसकुसुमाकर' (1894) और कन्हैयालाल पोद्दार की 'अलंकार प्रकाश' (1896)।

महत्वपूर्ण बात यह भी है की रीति-निरूपण की वृत्ती पिछड़ती जा रही थी और काव्य नये साँचे में रहा था। भारतेन्दु के बाद तो यह प्रवृत्ति रहीं ही नहीं।

14.8.11 समस्यापूर्ति परक काव्य रचना

भारतेंदु काल के कवि समस्या पूर्ति के रूप में ही काव्य रचना करते थे। कोई एक पंक्ति या पद 'समस्या' के रूप में दिया जाता था और कविजन विलक्षण कल्पनाएँ करते हुए उस समस्या पूर्ति का प्र नियम यह था कि दी गई पंक्ति छंद या कविता के अंत में ही आनी चाहिए। समस्या पूर्ति की यह परंपरा कवि की प्रतिभा को परखने एवं उनके रचना-कौशल की थाह पाने को कसौटी समझी जाती थी। कवि गोष्ठियें समस्या पूर्ति की प्रतियोगिता होती थीं और रसिक समाज इन्हें बड़े चाव से सुनता था। समस्या पूर्ति के लिए विषय दिए जाते थे वे प्राय: श्रृंगार से संबंधित होते थे। कानपुर की एक संस्था 'रसिक समाज' में एक समस्या पूर्ति के लिए एक पंक्ति दी गई—"पपीहा जब पूछि है पीव कहाँ" इस समस्या की पूर्ति पंडित प्र नारायण मिश्र ने इस प्रकार की—

वन बैठि है मान की मूरित सी,
मुख खोलत बोलै न नाहीं न हों।
तुम ही मनुहारि कै हारि परे,
सखियान की कौन चलाई तहा।।
वरषा है प्रतापजू धीर धरौ,
अबलौ मन कौं समझायौ जहाँ।
वह ब्यारि तबै बदलैगी कछू,
पपीहा जब पूछि है पीव कहाँ।।

समस्या पूर्ति के माध्यम से उक्ति वैचित्र्य, अलंकरण एंव कल्पना का मनोहारी प्रयोग करने रीतिकालीन प्रवृत्ति को काव्य में पर्याप्त प्रश्न मिला। समस्यापूर्ति से संबंधित इस काल के कुछ प्रमुख का संग्रह है—**अबिंकादत्त व्यास कृत 'समस्या पूर्ति सर्वस्व'** द्विजगंग कृत 'समस्या प्रकाश' और गोविंद गिल भाई कृत 'समस्यापूर्ति प्रदीप'।

14.8.12 काव्यानुवाद का आरम्भ

काव्यानुवाद की परम्परा भी इसी युग से शुरू हो चुकी है। संस्कृत और अंग्रेजी के काव्यानुवाद ब मात्रा में हुए हैं। सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं, राजा लक्ष्मणसिंह का 'रघुवंश' और 'मेघदूत'। भारतेन्दु

'नारद-भक्ति-सूत्र' और शांडिल्य के 'भक्तिसूत्र' को 'तदीय सर्वस्व' और 'भक्तिसूत्र वैजयन्ती' नाम से अनुवाद किया हैं। बाबू तोताराम ने वाल्मिकी रामायण का 'राम-रामायण', 'ठाकुर जगमोहनसिंह ने 'ऋतुसंहार' एवं 'मेघदूत', लाला सीताराम भूप ने 'मेघदूत', 'कुमार संभव', रघुवंश और ऋतुसंहार।

अंग्रेजी से श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ का 'हरमिट' ओर 'डेंजर्टेड विलेज' को 'एकांतवासी योग' तथा 'उजड़ ग्राम' नाम से अनुवाद किया हैं। भाषा, लालित्य, शब्दानुभाव, सरलता को गुणों से ये सम्पन्न हैं। ऐसा डॉ० नगेन्द्र ने कहा है।

14.8.13 काव्यरूपों की विशेषता

भारतेन्दु युग में काव्य रूपों के विविध प्रयोग रुढ़ हो गये कुछ परम्परागत, लोकगीत, संगीतात्मक थे तो व्यंग नये रूप में विकसित हुए किन्तु प्रधानता मुक्तक काव्य की ही रही है। उसके साथ प्रबंध गीति में भारतेन्दु के रानी छद्मलीला, देवी छद्मलीला, और 'तन्यमलीली' का उल्लेख किया जाता हैं। निबंध काव्य रूपों में 'विजयिनी विजय वैजयन्ती' तथा हिन्दी भाषा महत्वपूर्ण हैं। कुछ सतसई परम्परा के उदाहरण भी देखे जा सकते हैं। हरी औध का कृष्णशतक (1882) अम्बिकादत्त व्यास का 'सुकवि सतसई' आदि।

प्राचीन पद शैली के आधार पर ठुमरी, मलार, दादरा, ईमन, आदि राग-रागनियों में काव्य रचनाएँ की गई हैं। लोकसंगीत की शैली काफी लोकप्रिय थी उदाहरणार्थ "प्रेमघन और प्रतापनारायण मिश्र की कजलियाँ तथा भारतेन्दु (वर्ष विनोद) प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी और जगमोहनसिंह की लाषनिया महत्वपूर्ण हैं।" व्यंग में बंदर सभा, उर्दू का स्यापा एक नए शैली में आयी हैं। भारतेन्दु ने मुकरियों का लेखन भी किया हैं। गजल का नवप्रयास 'रसा' उपनाम से भारतेन्दु द्वारा तथा 'अब्रु' उपनाम से प्रेमधन द्वारा किया गया हैं। इससे यह कहा जा सकता है कि काव्य के परम्परागत रूपों में इस काल के कवियों ने बंधे न रहकर नये प्रयोग भी किये हैं।

14.8.14 ब्रजभाषा का प्रयोग

भारतेंदु युग के अधिकांश कवियों ने ब्रजभाषा में ही काव्य रचना की। यद्यपि खड़ी बोली का प्रयोग इस काल में प्रारंभ हो गया था। इन कवियों की भाषा पद्माकर एवं घनानंद जैसी परिष्कृत भाषा तो नहीं है, किंतु उसमें प्रवाह एवं स्वाभाविकता है। पंडित प्रतापनारायण की ब्रजभाषा में कन्नौजी का प्रभाव तथा उर्दू शब्दों को प्रयोग साफ झलकता हैं। भारतेंदु जी ने यद्यपि साफ-सुथरी ब्रजभाषा का प्रयोग किया तथापि उनकी रचना 'फूलों का गुच्छा' में उर्दू के पर्याप्त शब्द है। इस काल के कुछ कवियों ने खड़ी बोली में भी रचनाएँ लिखी पर वे कला एवं भाव की दृष्टि से उतनी प्रभावपूर्ण नहीं हैं।

अधिकांश कवियों ने मुक्तक शैली में लिखा तथापि कुछ प्रबंध काव्य भी लिखे गए। इन कवियों ने दोहा, चौपाई, कुंडलिया, रोला, सवैया, हरिगीतिका कवित्त जैसे परंपरित छदों में काव्य रचना की। छंदों की दृष्टि से इनके काव्य में विविधता है।

भारतेन्दु युग के कविया ने कविता को रीतिकालीन परिवेश से निकालकर सामयिक समस्याओं में जोड़ दिया। विदेशी शासकों के अत्याचारों का वर्णन भी उन्होंने किया, भले ही वह दबी जबान से किया गया हैं। भारतेन्दु के रूप में एक सबल साहित्यकार हिंदी को प्राप्त हुआ। **वे सच्चे अर्थों में आधुनिक काल के जनक कहे जा सकते है।** राष्ट्र और समाज को उद्‌बोधन देते हुए उन्होंने 'कवि कर्त्तव्य' का बखूबी पालन किया, जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

14.8.15 छन्द अलंकार

भारतेन्दु युगीन कवियों ने परम्परागत छंद-अलंकारों का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। जिसमें उल्लेखनीय हैं, आर्या, कुण्डलियाँ, दोहा, चौपाई, सोरठा, रोला, हरिगीतिका जैसे मात्रिक छंदों तथा कविता,

सवैया, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, वंशस्थ, वसन्ततिलका जैसे वर्णिक छंदों का विविधमुखी प्रयोग "लोकसं
का गाँवों में प्रचार-प्रसार करने के लिए

14.9 काव्यकृतियाँ

प्रेम माधुरी, प्रेम तरंग, प्रेमाश्रु वर्णन, प्रेम सरोवर, प्रेम मालिका, प्रेम, फुलवारी, प्रेम प्रताप आदि भ
तथा दिव्य प्रेम पर आधारित रचनाएँ हैं। केवल प्रेम को ही लेकर इनकी रचनाओं के उपर्युक्त सात स
प्रकाशित हुए। अपने आराध्यदेव श्री कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का चित्रण इन्होंने प्रेमपूर्वक-देवी छद्मली
तन्मय, लीला, कृष्णचरित; दान-लीला आदि रचनाओं में किया है। भारत वीरत्व, विजय वल्लरी, विजयिनी
विजय पताका में देश प्रेम की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती है। उर्दू का स्याया, बन्दर सभा, नये जमाने की मु
आदि रचनाओं में इनकी हास्य व्यंग्य प्रकृति के दर्शन होते हैं।

14.9.1 नाटक

भारतेन्दु जी ने मौलिक और अनुदित दोनों प्रकार के नाटकों की रचना की है। इनकी कुल संख्या 17
इनमें वैदिक हिंसा, हिंसा न भवति, सत्य हरीशचन्द्र, श्री चन्द्रावली, भारतदुर्दशा, नीलदेवी, अँधेर न
पाखण्ड विडम्बनम आदि प्रमुख हैं। इनके हास्य व्यंग्य की प्रवृत्ति का पूर्ण विकास इनके कुछ नाटकों मे
हुआ है।

14.9.2 उपन्यास

पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा इनके द्वारा रचित उपन्यास हैं।

14.9.3 इतिहास और पुरतत्व सम्बन्धी

कश्मीर कुसुम, महाराष्ट्र देश का इतिहास, रामायण का समय, अग्रवालों की उत्पत्ति, बूंदी का राज
तथा चरितावली।

14.9.4 यात्रा वृतान्त

सरयू की यात्रा, लखनऊ की यात्रा आदि।

14.9.5 जीवनी

सूरदास, जयदेव, महात्मा, मुहम्मद आदि।

भारतेन्दु जी के सभी काव्य-ग्रन्थ इसके काव्य विषयों की व्यापकता की ओर संकेत करते हैं। इ
कविताओं में प्रमुख रूप से देश-प्रेम, भक्ति भावना, सौन्दर्य और प्रेम निरूपण, हास्य-व्यंग्य, सामा
जागरण, प्रकृति-चित्रण, हिन्दी प्रेम आदि प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं।

भारतेन्दु जी की शैली इनके भावों के अनुकूल है। इन्होंने मुख्य रूप से मुक्तक शैली को अपनाया है
शैली में नवीन प्रयोग करके इन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। लोकगीतों की गीति-शैल
इन्होंने राष्ट्रीयता से परिपूर्ण काव्यों की रचना की है। भारतेन्दु जी ने ब्रजभाषा में अधिकतर शृंगारिक रचनाएं
हैं। अपनी रचनाओं में इन्होंने शृंगार के दोनों पक्षों, संयोग और वियोग का बहुत ही सुन्दर चित्रण किए
इन्होंने अपनी रचनाओं में कवित्त, सवैया, लावनी, चौपाई, दोहा, छप्पय, गजल, कुण्डलिया आदि विविध प्र
के छन्दों का प्रयोग किया हैं। विभिन्न अलंकारों के सुन्दर प्रयोग भी आपकी कविता में अनायास देखने को
जाते हैं। इन्होंने अलंकारों के चमत्कारपूर्ण प्रयोग को नहीं वरन् सरसता को प्रधानता दी है।

निःसन्देह भारतेन्दु हरिशचन्द्र आधुनिक काल के प्रवर्तक थे। इनके पश्चात् इनके, जैसी बहुमुखी प्र
से सम्पन्न कोई रचनाकार हिन्दी साहित्य को पुनः न मिल सका। युग-परिवर्तन, युग प्रवर्तन एवं युग का नें
करने के लिए केवल नये युग का ज्ञान या बोध ही पर्याप्त नहीं होता वरन् उस ज्ञान या बोध को सच्ची अन्

एवं सहज अभिव्यक्ति के माध्यम से जन-साधारण के हृदय तक पहुँचा देने की क्षमता भी अपेक्षित होती है। निस्सन्देह भारतेन्दु हरिशचन्द्र में यह प्रतिभा थी, जिसके बल पर वे अपने युग को सच्चा और सफल नेतृत्व प्रदान कर सके।

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त जी ने इनके सम्बन्ध में उचित ही लिखा है—

भारतेन्दु कर गये भारती की वीणा-निर्माण।

किया अमर स्पर्शों ने जिसका बहुविधि स्वर-संधान।

14.10 भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता और साहित्य

खड़ी बोली हिन्दी गद्य और भारतेन्दु युगीन साहित्य के विकास में उस काल के पत्र-पत्रिकाओं का बड़ा योगदान है। इस काल की सारी जागृति सारी सुधारवादी चेतना और सारा साहित्य पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही सामने आया और जनसाधारण तक पहुँचा। हिन्दी के पहले साप्ताहिक 'उदंत मार्तड' का प्रकाशन कलकत्ता से 30 मई 1826 ई० को प्रारम्भ हुआ और ग्राहकों के अभाव में 4 दिसंबर 1827 ई० को बंद हो गया। इससे पहले राजा राममोहनराय ने 'बंगदूत' का हिन्दी संस्करण भी निकाला था। कलकत्ता से ही हिन्दी का पहला दैनिक समाचार पत्र श्यामसुन्दर सेन ने जून 1854 ई० में 'समाचार सुधावर्षण' के नाम से निकाला जो कई वर्षों तक प्रकाशित होता रहा। बनारस से जनवरी 1845 ई० में गोविंद रघुनाथ थते के सम्पादन में राजा शिव प्रसाद ने 'बनारस अखबार' निकाला। हिन्दी क्षेत्र से निकलने वाला यह पहला पत्र था। इसकी भाषा का झुकाव अरबी-फारसी शब्दों की और अधिक था। सिमला अखबार, मालवा अखबार, काशी पत्रिका आदि इस समय निकलने वाले पत्र भाषा की दृष्टि से उर्दू के ही पत्र थे। हिन्दी भाषा को सच्चे अर्थों में अपनाने वाले काशी के 'सुधाकर' और आगरा के बुद्धि प्रकार जैसे पत्र थे।

इन पत्रों में साहित्य का प्रकाशन नगण्य था। समाचारों का प्रकाशन ही मुख्य था। साहित्य का प्रकाशन मुख्यत: उन पत्र-पत्रिकाओं में हुआ, जिन्हें उस समय के साहित्यकारों ने निकाला। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कविवचन-सुधा' (1868 ई०) और 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (1873 ई०) का प्रकाशन किया। इनके अतिरिक्त इस काल में निकल रहे 'भारतमित्र', 'सारसुधनिधि', 'उचितप्रवक्ता', 'हिन्दी बंगवासी, आदि का उल्लेख भी आवश्यक है। राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना जगाने, रूढ़ियों और अंधविश्वास से मुक्त करके समाज सुधारने और भारत के भविष्य को उज्जवल बनाने के अतिरिक्त इनका उद्देश्य 'यथा हिन्दी भाषा का प्रचार करना व हिन्दी लिखने वालों की संख्या-वृद्धि'' करना भी था। भारतेन्दु युग का अधिकांश साहित्य पहले पहल इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से सामने आया और हिन्दी भाषा का परिजमार्जन हुआ। भारतेन्दु ने 'कालचक्र ' में यह सच ही लिखा था कि 1873 में ''हिन्दी नये चाल में ढली''। यहाँ यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं हैं कि इसी वर्ष 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' या 'हरिश्चन्द्रिका' का प्रकाशन आरम्भ हुआ।

14.11 भारतेन्दु युगीन गद्य-साहित्य

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि ''आधुनिक काल में गद्य का आर्विभाव सबसे प्रधान साहित्यिक घटना है।'' गद्य के आर्विभाव के साथ की साहित्यिक विधाओं का आर्विभाव भी अनिवार्य हुआ। अधिकांश साहित्यिक गद्य विद्या भारतेन्दु युग में ही जन्मी। इस युग में जन्म लेकर विकसित होने वाली तीन मुख्य साहित्यिक विधाएँ है—नाटक, निबंध और उपन्यास।

14.12 नाटक

भारतेन्दु से पूर्व नाटक के नाम पर मिलने वाली रचनाएँ एक तो बहुत कम है दूसरे सच्चे अर्थों में वे नाटक है भी नहीं। इस युग से पहले नाट्य रचना के अनुकूल स्थितियाँ भी नहीं थी। भारतेन्दु ने 'कालचक्र' में

एक दृष्टि से ठीक ही नोट किया—''हिन्दी में प्रथम नाटक-नहुष नाटक (1859) तथा द्वितीय नाटक शकु (1863) तथा तृतीय-विघासुन्दर (1871)।'' इन तीन नाटकों में से दो नाटक अनुवाद है। राजा लक्ष्मण कृत 'शकुन्तला' कालिदास के 'अभिज्ञानशकुन्तलात्कम्' का अनुवाद है और 'विद्यासुन्दर' स्वयं भारतेन्दु ने अंग्रेजी से एक बंगला से और पाँच संस्कृत से नाटकों के अनुवाद किये और दस मौलिक नाटक लिखे। अनूदित नाटकों में 'मुद्राराक्षस' पुनर्रचित नाटकों के अनुवाद में हरिश्चन्द्र और भौतिक नाटकों में वैदिक हिंसा न भवति', श्री चन्द्रावली', भारतदुर्दशा और 'अन्धेर नगरी' को विशेष ख्याति मिली। उन्होंने अपने नाटकों में यदि अपनी प्रेम और भक्ति की भावनाओं को अभिव्यक्त किया तो अन्य अधिकांश नाटकों में समकालीन समाज, धर्म, राजनीति, प्रशासन, न्याय व्यवस्था और अर्थव्यवस्था की समस्याओं को उजागर है। इन समस्याओं को उजागर करने में उनका सबसे बड़ा अस्त्र है हास्य और व्यंग्य। 'अधेर नगरी' के महन्त द्वारा कही गयी इन पंक्तियों से तीखा कटाक्ष अंग्रेजी शासन पर और क्या हो सकता हैं जहाँ न बुद्धि नहि, नीति न सुजान समाज।

ये ऐसहि आपूहि नसे जैसे चौपटराज,'' भारतेन्दु ने अपने नाटकों के लिए भारतीय एवं पाश नाट्यशैलियों के उपयुक्त तत्व लेकर एक नयी नाटय शैली का निर्माण किया था। उनके नाटकों के केन नाटयवस्तु नाटयशिल्प और जीवन दृष्टि संबंधी प्रयोगशीलता और प्रगतिशीलता दोनों विद्यमान है। उन्होंने नाटक रंगमंच के लिए लिखे थे। वे स्वयं रंगमंच पर सक्रिय थे। इसलिए उनके 'अधेर नगरी' जैसे नाटक भी सफलतापूर्वक मंचित होते हैं।

निबन्ध साहित्य

भारतेन्दु युग में जिस दूसरी गद्य-विद्या का विकास विशेष रूप से हुआ, वह निबंध है। निबंध से ह तात्पर्य उस लधवाकार अकथात्मक गद्य रचना से है, जो अपनी संरचना में स्वच्छन्द होती है और जि लेखक की वैयक्तिकता उसका व्यक्तित्व निर्वन्ध अभिव्यक्ति पाता है। इस दृष्टि से लेख निबंध से अलग इस युग के गद्य लेखकों ने समकालीन जीवन और इहिास के अनेक पक्षों पर प्रभूत मात्रा में लेख लिखे जिसमें से अधिकांश तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें में दबे पड़े हैं। इन लेखों का महत्व असंदिग्ध क्योंकि इनके माध्यम से हम न केवल उस काल के लेखकों की सोच से परिचित होते है, अपितु युग प्रामाणिक जानकारी भी हमें मिलती है। लेकिन साहित्यिक दृष्टि से इन लेखों की अपेक्षा निबंधों का म अधिक है

यद्यपि भारतेन्दु युग के अनेक लेखकों ने निबंध लिखें है, किन्तु निबंधकार रूप में अपना वैश स्थापित करने वाले चार ही लेखक है—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बालकृष्ण, भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' हैं भारतेन्दु ने निबंध कम लेख अधिक लिखे हैं। उनके विभिन्न विषयों पर लि गये लेखों में उनकी भावनाओं और उनकी व्यंग्य-प्रवृत्ति ने अभिव्यक्ति अवश्य पायी है किन्तु इतनी क्षीणता साथ ही लेख, निबंध नहीं बन सके है। अगर भारतेन्दु को निबंधकार के रूप में हम याद करते है तो 'अंग्रेज हिन्दुस्तानियों का जी क्यों नहीं मिलता', 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन', स्त्री सेवा-पद्धति', मदिरास्तवराज', 'कंकर स्तोत', 'ईश्वर बड़ा विलक्षण है', पांचवे (चूसा) पैगम्बर जैसी रचनाओं के कारण। रचनाओं के कारण। इन रचनाओं में भारतेन्दु का स्वच्छन्द प्रगतिशील व्यक्तित्व, व्यंग्य-विनोद, विचारों मुक्त प्रवाह, चमत्कापूर्ण किन्तु अनौपचारिक अभिव्यक्ति-शैली के माध्यम से छलका पड़ता हैं भारतेन्दु अपेक्ष्य ''बालकृष्ण भट्ट'' के निबंध संख्या में भी अधिक है ओर परिपक्वता भी उनमें कहीं अधिक है विद्वान थे, अंग्रेजी साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे, गम्भीर विचारक थे और परिहासप्रिय भी थे। वे एक और शि समुदाय का ध्यान हिन्दी की ओर आकृष्ट करना चाहते थे और 'विदंग्ध साहित्य' को प्रोत्साहन देना चाहते दूसरी और उनकी मान्यता थी कि ''रसिक पढ़ने वाले हास्य पर अधिक टूटते है। सच पूछो, हास्य ही लेख

जीवन है। लेख पढ़ कुन्द की कली समान दांत न खिल उठे तो लेख ही क्या।'' इसलिए उन्होंने चाहे राजनैतिक, सामाजिक साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक आदि गम्भीर विषयों पर लिखा हो अथवा चढ़ती उमर', मुग्ध माधुरी, 'पौगण्ड व कैशोर, 'रोटी तो किसी भंति कमा खये मुछन्दर', 'बातचीत', 'आंख', 'खटका', 'जवान', 'नहीं', 'जी', 'नाम', 'ढोल', के भीतर पोल', 'नये तरह के जनून आदि हल्के फुल्के विषयों पर उनके निबंधों में विचार, भावना, परिहास और व्यंग्य सब एक साथ विद्यमान रहते है। न किसी निबंध में आद्यन्त गम्भीर विचारात्मकता मिलेगी न भावुकता और न ही हास्य-व्यंग्य। उनके निबंधों में विभिन्न भाषाओं की काव्य पंक्तियों के उद्धरण भी विद्यमान है और उक्ति चमत्कार भी। वे हिन्दी के गिने चुने श्रेष्ठ निबंधकारों में से एक है।

उपन्यास साहित्य

उपन्यास अन्य गद्य विधाओं की तुलना में सबसे अधिक लोकप्रियात्मक है। हिन्दी साहित्य में इस विधा का आरम्भ इस दृष्टि से और भी अधिक महत्वपूर्ण है कि इसकी लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि हिन्दी न जानने वालों ने भी उपन्यास पढ़ने की ललक से हिन्दी सीखी। भारतेन्दु युग में आधुनिक हिन्दी उपन्यास जन्मा भी और विकसित भी हुआ। उसे प्रेरणा मिली बंगला उपन्यासों से। 1864 ई० में बकिंमचन्द्र के उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी' का हिन्दी में अनुवाद हुआ। उसके बाद न केवल बंकिमचन्द्र के अपितु रमेशचन्द्र, दत्त, हाराणाचन्द्र, रक्षित, चण्डीचरण सेन, चारूचन्द्र आदि के उपन्यासो से प्रेरित होकर हिन्दी में उपन्यास लिखे जाने लगे।

हिन्दी के पहले उपन्यास के रूप में जिन चार रचनाओं का नाम लिया जाता है वे है— गौरीदत्त-कृत-देवरानी-जेठानी (1870 ई०) मुंशी ईश्वरीप्रसाद मुदर्रिस रियाजी और मुंशी कल्याण राव मुदर्रिस अव्वल उर्दू-कृत 'वामा-शिक्षक अर्थात् दो भाई और 'चार बहनों की कहानी (1872 ई०), श्रद्धाराम फिल्लौरी-कृत 'परीक्षा-गुरु' (1882 ई०)। इनमें से पहली तीन रचनाओं के कोरी उपदेशात्मकता ओर यर्थाथ जीवन का आभास न देने वाली कथाएँ होने के कारण उपन्यास नहीं माना गया। अब प्राय: सभी 'परीक्षा गुरू' (1882 ई०) को हिन्दी का पहला उपन्यास स्वीकार करते है। क्योंकि उपदेशात्मक होने पर भी इसकी कथा यर्थाथभासी है और इसमें नये ढंग से चरित्रचित्रण का प्रयास भी किया गया है। लालाजी सचेत भाव से उपन्यास लिख रहे थे।

इस पहले उपन्यास के बाद भारतेन्दु युग में बहुत बड़ी संख्या में उपन्यास लिखे गये। इन उपन्यासों को लक्ष्य की दृष्टि से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक वर्ग उन उपन्यासों का है जो अपना विषय चाहे समाज से ले, चाहे इतिहास-पुराण से अथवा शुद्ध काल्पनिक कथा गड़े, लेकिन मनुष्य जीवन की विभिन्न समस्याओं और भावनाओं को उपस्थित करने के साथ-साथ शिक्षा भी देते हैं ऐसे उपन्यास किशोरी लाल गोस्वामी, राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वामी व जगमोहन सिंह, हरिऔध, गोकुलनाथ शर्मा, बालकृष्ण भट्ट, मेहता लज्जा राम शर्मा आदि ने लिखे। इनमें से किशोरीलाल गोस्वामी का वैशिष्टय इस बात में है कि उन्होंने संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक उपन्यास लिखे है और सभी तरह के उपन्यास लिखे है। सभी में श्रृंगार का रीतिकालीन पद्धति से खुला चित्रण किया और स्वाभाविक एवं प्रमाणिकता की बिल्कुल चिंता नहीं की है। राधाचरण गोस्वामी के उपन्यासों का वैशिष्टय हिन्दू समाज की विसंगतियों को प्रस्तुत करने में है। उनके तथा राधाकृष्णदास एवं मेहता लज्जा राम शर्मा के उपन्यास हिन्दु गौरव भी भावना से ओतप्रोत है।

14.13 अन्य गद्य विधाएँ

उपर्युक्त तीन गद्य विधाओं के अतिरिक्त अन्य गद्य विधाओं की दृष्टि से भारतेन्दु युग की कोई विशेष देन नहीं है। कहानी का जन्म इस युग में होकर द्विवेदी युग में हुआ। पत्रिकाओं में पुस्तकों की परिचायात्मक

सूचना को पुस्तक समीक्षा का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है। भारतेन्दु के निबंध 'नाटक (1883 ई०) से सैद्धांतिक और लाला श्री निवासदास के नाटक 'संयोगिता स्वयंवर' की बालकृष्ण भट्ट और 'प्रेमघन' द्वारा लिखित विस्तृत और तीक्ष्ण आलोचना से व्यवहारिक आलोचना का सूत्रपात अवश्य हो गया, किन्तु उसका विकास आगे चलकर ही हुआ।

14.14 भारतेन्दु युगीन कविता

भारतेन्दु युग में ग्रंथ को लेकर कोई सुविधा नहीं है न कथ्य को लेकर माध्यम भाषा को लेकर क्योंकि भारतेन्दु युग से पूर्व हिन्दी में गद्य की कोई पुष्ट परम्परा नहीं थी लेकिन कविता को लेकर दुविधा है भक्तिकाल और रीतिकाल की सम्पन्न काव्य परम्परा को छोड़कर एक नये कविता मार्ग पर चलना भारतेन्दु युग के कवियों के लिए सम्भव नहीं था। इसलिए भारतेन्दु युग में भक्ति शृंगार और नीति की प्रचुर कविता का लेखन हुआ तथा इसकी भाषा ब्रजभाषा ही रही। इस युग के अनेक कवि परंपरा का कोरा अनुकरण कर रहे थे और कविता के नाम पर केवल चमत्कार सृष्टि कर रहे थे, जैसे महाराज कुमार बाबू नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह का शिवाशिव शतक' किन्तु स्वयं भारतेन्दु हिजदेव, सरदार कवि, लाल कवि, शाहकुंदन लाल ललित किशोरी लछिराम जगन्नाथदास 'रत्नाकार' आदि ऐसी परम्परागत कविता लिख रहे थे जिसमें अनुभव की सजीवता भी थी और चमत्कार भी। भारतेन्दु का निम्नलिखित सवैया भावों की मधुरता और ब्रजभाषा की स्वाभाविकता के कारण परम्परागत होते हुए हुए भी श्रेष्ठ कहा जायेगा।

"एक ही गांव में बास सदा घर पास रहौ नहिं जानती है।
पुनि पाचाएं-सताए आवत जात की आसन चित में आनती है।
ब्रह्म कौन उपाए करै, इनको, हरिश्चंद महा हठ ठानती है।
पिय प्यारे तिहारे निहोरे बिना, अंखिया नहिं मानती है।"

भारतेन्दु युग का नया कवि जब अपने वर्तमान पर दृष्टि डालता है तो एक ओर तो उसे अपना अतीत गौरव याद आता है ओर दूसरी ओर अपनी वर्तमान अधोगति पर क्षोभ आता है। वह वर्तमान की अधोगति पर विचार करता है और उसके लिए उत्तरदायी अनेक कारण सामने आते है। इनमें से एक कारण है भारतीय समाज की जड़ता, रूढ़िप्रियता और तमाम कुरीतियां है। इसलिए यह समाज को सुधारना चाहता है लेकिन यहाँ भी द्वन्द्व और दुविधा है। उस समय समाज-सुधार के ऐसे अनेक प्रश्न थे, जिन पर इस युग के नये कवि भी एक मत नहीं थे--जैसे, बाल विवाह या विधवा विवाह। इन विषयों को लेकर समाज-सुधार की पक्षधरता के कारण ही भारतेन्दु को 'क्रिस्तान' कहा गया था। इस युग के नये कवि धर्म का वही रूप स्वीकार करने के लिए तैयार थे, जो स्वस्थ हो। वे कर्मकाण्डों के विरोधी थे। दूसरा कारण था अंग्रेजों द्वारा भारत का आर्थिक शोषण। सन 1857 ई० के विद्रोह के दमन की क्रूरता से उत्पन्न आंतक तथा परवर्ती मध्यकालीन अराजकता आदि से मुक्ति दिलाने के कारण ये कवि अंग्रेज-राज की प्रशंसा भी करते थे, लेकिन अनुभव करते थे कि अंग्रेज राज के सारे सुख-समाज के बावजूद भारत का धन विदेश चले जाना अत्याधिक बरबादी का कारण हैं। इससे मुक्ति के लिए भारतेन्दु ने सन् 1874 ई० में स्वदेशी का आन्दोलन चलाया था। वे अंग्रेज प्रशासन को भारत की तत्कालीन दुर्दशा के लिए कम उत्तरदायी नहीं मानते थे। इसलिए इस युग के नये कवियों ने अफसरों, पुलिस, शिक्षा तरह तरह के कर इत्यादि की कटु आलोचना की है। 'अंधेर नगरी' में चूरन बेचने वाले के इन कथनों में इसी आलोचना का एक रूप है।

चूरन अमले सब जी खावै। दूनी रूशवत तुरत पचावै ।।
चूरन साहेब लोग जो खाता सारा हिन्द हजम कर जाता ।।
चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते ।।

संदर्भित ग्रन्थ

कहानी नयी कहानी	—	नामवरसिंह
हिन्दी का गद्य साहित्य	—	रामचन्द्र तिवारी
हिन्दी गद्य की नवीन विधाएँ	—	राजेन्द्र प्रसाद
आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ	—	नामवरसिंह
आधुनिक हिन्दी साहित्य: विविध आयाम	—	रामचन्द्र तिवारी
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	—	राम कुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य की भूमिका	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास	—	बच्चनसिंह
आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
भारतीय साहित्यशास्त्र	—	गणेश त्रयम्बक देशपाण्डे
मध्यान्तर भारत के लोकनाटय-नृत्य	—	अर्जुनदा केसरी
रूपक रहस्य	—	श्यामसुन्दर दास
हिन्दी पुस्तक साहित्य	—	माताप्रसाद गुप्त
भारतीय वाङ्मय	—	लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
हिन्दी साहित्य चिन्तन	—	इन्द्रपाल सिंह
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	किशोरीलाल
हिन्दी साहित्य का रेखांकन	—	किशोरीलाल
हिन्दी साहित्य के नये प्रयोग	—	क्षेमचन्द
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	—	गणेश बिहारी मिश्र
हिन्दी साहित्य परिचय	—	दयाशंकर शर्मा
हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	—	रामरतन भटनागर
हिन्दी साहित्य परिचय	—	रामचन्द्र शुक्ल
आधुनिक हिन्दी साहित्य	—	लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
द्वितीय युद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
स्वातन्त्रयान्तर हिन्दी नाटक	—	डॉ० श्रीमति रीता कुमार
आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में काम मूलक संवेदना	—	श्री रामबा महाजन
कला का जोखिम	—	निर्मल वर्मा
दिनमान साहित्य सिद्धांत और समालोचना	—	डॉ० देवीप्रसाद गुप्त
एक प्रश्न: दो रूप	—	किनरचन्द्र शर्मा

बोध प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भारतेन्दु युगीन साहित्य की प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।
2. भारतेन्दु युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ लिखिए।
3. भारतेन्दु युगीन काव्य की विशेषताओं पर सोदाहरण चर्चा कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. भारतेन्दु युग को पुनर्जागरण काल क्यों कहा जाता है?
2. पुनर्जागरण काल के काव्य की प्रवृत्तियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
3. भारतेन्दु युग में सामाजिक दुर्दशा का निरुपण कीजिए।
4. 'हास्य-व्यंग्य की प्रधानता भारतेन्दु युग की प्रधानता है?' इस कथन की पुष्टि कीजिए।
5. भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य में नाटक विद्या का निरूपण कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. छायावादोत्तर काल को कितने भागों में बाँटा गया है?
2. भारतेन्दु युग किस रचनाकार के नाम से विख्यात है?
3. भारतेन्दु युग के दो नाटकों के नाम लिखिए।
4. कार्तिक स्नान और कंस वध किसकी रचनाएँ हैं?
5. काव्यानुवाद का आरम्भ किस युग में माना जाता है?
6. भारतेन्दु युग में लिखे दो यात्रा वृत्तान्तों का उल्लेख कीजिए।
7. भारतेन्दु युग की तीन गद्य विधाओं के नाम लिखिए।

इकाई (Unit)

15

द्विवेदी युग

संरचना

15.1 उद्देश्य
15.2 प्रस्तावना
15.3 द्विवेदी युग : हिंदी जागरण और सरस्वती
15.3.1 महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग
15.3.2 हिंदी नवजागरण और सरस्वती
15.3.3 राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि
15.3.3.1 माखनलाल चतुर्वेदी
15.3.3.2 सियारामशरण गुप्त
15.3.3.3 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
15.3.3.4 सुभद्राकुमारी चौहान
15.3.3.5 अन्य कवि
15.4 द्विवेदीयुगीन गद्य साहित्य
15.4.1 नाटक
15.4.2 उपन्यास
15.4.3 कहानी
15.4.4 निबंध
15.5 द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ
15.6 द्विवेदीयुगीन कविता के आधार बिंदू
15.6.1 मानवता का प्रकटीकरण
15.6.2 आदर्शवाद
15.6.3 बौद्धिकता का प्रतिपादन
15.6.4 सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की भावना
15.6.5 राष्ट्रीय भावना और राजनीतिक चेतना
15.6.6 धार्मिक भावना
15.6.7 इतिवृत्तात्मकता
15.6.8 नारी स्वातन्त्रता और उत्कर्ष
15.6.9 सामाजिकता की ओर उन्मुख
15.6.10 प्रकृति चित्रण
15.6.11 अनुवाद

15.6.12 काव्य विषय एवं रूपों में विविधता
15.6.13 खड़ी बोली काव्य की भाषा
15.6.14 द्वन्द-स्वच्छन्द
15.7 स्वाधीनता आन्दोलन और द्विवेदी युग का मूल चरित्र
15.8 ब्रजभाषा की कविता
15.9 खड़ी बोली की कविता
बोध प्रश्न

15.1 उद्देश्य

- द्विवेगी युगीन काव्य की प्रवृत्तियों का अध्ययन करना।
- द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्तियों का मुल्यांकन करना।
- द्विवेदी युग सुधार-काव्य से जुड़ा है। इसी काव्य में कई प्रकार के सामाजिक, साहित्यिक, भाष ज्ञान सु एवं संस्कार द्विवेदीजी ने हिन्दी साहित्य-समाज को दिए हैं।
- कई महत्त्वपूर्ण काव्य का लेखन इसी काल में हुआ है। उसे समझना जरूरी है। यह यु आदर्श बौद्धिकता का क्यों, कैसा रहा यह देखना-परखना होगा।

15.2 प्रस्तावना

आधुनिक कविता के क्षेत्र में द्विवेदी युग को 'जागरण या सुधार काल' के नाम से जाना जाता 'सरस्वती' का प्रकाशन और द्विवेदी जी का संपउदन क्रांतिकारी घटना के रूप में हिन्दी साहित्य में देखी ज है। यह सही भी है। 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का संपादन प्रारंभ किया। द्विवेदी युग कालखंड भी 1903 से 1918 तक माना जाता हैं द्विवेदी के व्यक्तित्व की गहरी छाप इस युग पर रही है। युग के यह पथप्रदर्शक, निर्माता, शिक्षक, लेखक, आलोचक, संपादक रहे है। भाषा की शुद्धता, व्याकरण अ के क्षेत्र में भी उनका मौलिक कार्य रहा है। "उन्होंने साहित्य और समाज को विशेष मोड़ दिया। विद्वानों ने बिना डिग्री के आचार्य, विना मुकुट के सरताज और महान युग प्रवर्तक कहा है। वे एक सफल आलोच निबंधकार, अनुवाद, संपादक थे। उनकी रचनाओं का महत्व भले ही न हो परंतु उनके द्वारा निर्मित सा प्रतिभाओं, साहित्य कृतियों का बहुत अधिक महत्व है।

भारतेन्दु युग में 'भारत दुर्दशा' पर दुख प्रकट किया जाता रहा परंतु द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने दु के साथ सामान्य जनो में स्वतंत्रता प्राप्ती की चाह निर्माण की। उसके लिए बलिदान का मार्ग सुझाया। इ पहले ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियासॉफिकल सोसायटी आदि का कार्य भारतवर्ष में फैल चुका था। कालखंड में संपूर्ण उत्तर भारत में आर्य समाज के सामाजिक आंदोलन की धूम मची थी। धर्म, समाज पुनरुत्थान कार्य जोरों पर था। इधर कांग्रेस आजादी का अलख जगाने में काफी आगे बढ़ चुकी थी। ब्रिटिशो ओर से होने वाले शोषण से तिलक जैसे महान नेता ने देशभर में 'असंतोष' की भावना को फैलाया। निस्व समाज सेवकों का उदय भी इसी काल में हो चुका था। हर कीमत पर समाचार पत्र प्रकाशन का कार्य इस क के संपादकों ने जारी रखा।

ब्रजभाषा की जगह खड़ीबोली ने ले ली। शृंगार-भक्ति का स्थान देशभक्ति, समाजसुधार ने लि परंपरात काव्य निरुपण शैलियाँ बदली। भारतेन्दु युग में भाषा की जो अस्थिरता पैदा हुई थी। वह यहाँ पर हुई। काव्य के लिए शुद्ध, व्याकरण सम्मत खड़ीबोली का प्रयोग किया जाने लगा। अचानक ही नहीं ब

द्विवेदी की कठोर नीति के परिणामस्वरूप, कविता, आलोचना, श्रृंगार आदि में निखार और देशपरक समाजहितानुरुप प्रौढ़ता आयी। द्विवेजीजी ने गद्य-पद्य की शैली तथा विषय वस्तु में परिवर्तन लाया। मातृभूमि, स्वदेश गौरव, मानवतावाद, बुद्विवाद को काव्य में प्रतिष्ठित किया। कविता में इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता आयी। राष्ट्रीय भावना का स्वर गूँज उठा, राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। नारी सबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। सांस्कृतिक राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद का विकास भी इसी काल की देन है। मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश, त्रिपाठी जैसे कवि द्विवेदी के व्यक्तित्व की देन है। गोपालशरण सिंह, गयाप्रसाद 'स्नेही', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', लोचनप्रसाद पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डे, इसी काल के महत्वपूर्ण कवि है। पुनरुत्थान युग का देश, समाज तथा साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि द्विवेदी युग में जागरण आया। नवीन परंपरा का उद्‌भव हुआ। द्विवेदी और सरस्वती का ऐतिहासिक महत्व इस काल में है।

15.3 द्विवेदी युग : हिंदी जागरण और सरस्वती

सन् 1857 ई० में हुए प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में नवजारण का बिगुल बजा दिया और भारतीय जनमानस में देशभक्ति, स्वतंत्रता, राष्ट्रोत्थान, स्वदेशाभिमान की भावनाएँ जाग्रत होने लगीं भारतेन्दु युग में जहाँ इनका सूत्रपात हुआ, वहीं द्विवेदी युग में ये पल्लवित एवं विकसित हो गई। डॉ. रामविलास शर्मा ने इसीलिए हिंदी नवजागरण को हिंदू जाति का जागरण माना है। इस नवजागरण की लहर को जन-जन तक पहुँचाने में 'सरस्वती' पत्रिका का विशेष योगदान है। इसके अतिरिक्त प्रभा, मर्यादा पत्रिका को भी यह श्रेय जाता है।

सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन सन् 1900 ई० से प्रारंभ हुआ तथा सन् 1903 ई० में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसका संपादन भार संभाला। द्विवेदी जी ने इस पत्रिका में ऐसे लेखों को प्रकाशित किया। जिन्होंने नवजागरण की लहर को प्रसारित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। डॉ० रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' में सरस्वती पत्रिका में उद्धरण देकर इस बात को पुष्ट किया है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्रेरणा लेकर तथा उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़ने वाले अनेक कवि सामने आए, जिनमें प्रमुख है—**मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, गया प्रसाद शुक्ल, 'सनेही'** और **लोचनप्रसाद पांडेय** आदि। यहीं नहीं अपितु बहुत सारे ऐसे कवि जो पहले ब्रजभाषा में कविता लिख रहे थे तथा उनकी विषय वस्तु एवं शैली प्राचीन पद्धति पर थी, अब द्विवेदी जी एवं 'सरस्वती' से प्रेरित होकर काव्य के चिर-परिचित उपादानों को छोड़कर नए विषयों पर खड़ी बोली में कविता लिखने लगे। ऐसे कवियों में प्रमुख हैं—**अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔद्य', श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा 'शंकर'** तथा **राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'**। इन सभी कवियों की कविताएँ नवजागरण राष्ट्रीयता, स्वदेशानुराग एवं स्वदेशी भावना से परिपूर्ण हैं।

द्विवेदी युग में केवल भाषा क्षेत्र में ही परिवर्तन नहीं हुआ अपितु छंदों के क्षेत्र में भी परिवर्तन परिलक्षित है। अब परंपरागत छंद प्रयोग के साथ-साथ संस्कृत के वर्णवृत्तों का प्रयोग भी कवि प्रचुरता से करने लगे।

'सरस्वती' पत्रिका ने कवियों की एक नई पौध तैयार की। उनकी प्रेरणा से अनेक कवियों ने नवीन विषयों पर कविता लिखी। उनके एक निबंध से प्रेरित होकर **मैथिलीशरण गुप्त** ने चिर उपेक्षिता उर्मिला को महत्व देने हेतु **'साकेत'** नामक महाकाव्य की रचना की। उन्होंने महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा को निम्न पंक्तियों में स्वीकार करते हुए अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की है—

करते तुलसीदास भी कैसे मानस नाद?
महावीर का यदि नहीं मिलता उन्हें प्रसाद।।

खड़ी बोली को परिमार्जित करने, संस्कारित करने तथा व्याकरणिक शुद्धता प्रदान करने में 'सरस्वती' पत्रिका का अविस्मरणीय योगदान है। आचार्य द्विवेदी के भाषा परिष्कार पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है–"खड़ी बोली के पद्य विधान पर द्विवेदी जी का पूरा-पूरा असर पड़ा। बहुत से कवियों की भाषा शिथिल और अव्यवस्थित होती थी। द्विवेदी जी ऐसे कवियों की भेजी हुई कविताओं की भाषा आदि दुरुस्त करके 'सरस्वती' में छापा करते थे। इस प्रकार कवियों की भाषा साफ होती गई और द्विवेदी जी के अनुकरण में अन्य लेखक भी शुद्ध भाषा लिखने लगे।"

वस्तुत: 'सरस्वती' पत्रिका ने भाषा और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में परिष्कार किया। इसके माध्यम से ज्ञान का प्रचार-प्रसार हुआ, कितने ही नए लेखक और कवि प्रकाश में आए, भाषा संस्कार हुआ, समाज सुधार देशप्रेम, चरित्र-निर्माण की भावनाएँ विकसित हुई। **देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता की चेतना विकसित करने में भी इस पत्रिका का विशिष्ट योगदान है।**

15.3.1 महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग

द्विवेदी युग का नामकरण आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के गरिमामंडित व्यक्तित्व को केंद्र में रखकर किया गया। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में हिंदी जगत की महान सेवा की और हिंदी साहित्य की दिशा एवं दशा को बदलने में अभूतपूर्व योगदान दिया। महावीरप्रसाद द्विवेदी सन 1903 में सरस्वती पत्रिका के संपादक बने। इससे पहले वे रेल विभाग में नौकरी करते थे। उन्होंने इस पत्रिका के माध्यम से कवियों को नायिका भेद जैसे विषय छोड़कर विविध विषयों पर कविता लिखने की प्रेरणा दी। काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा को त्यागकर खड़ी बोली का प्रयोग करने का सुझाव दिया, जिससे गद्य और पद्य की भाषा एक हो सके। द्विवेदी जी ने '**कवि कर्त्तव्य**' जैसे निबंधों द्वारा कवियों को उनके कर्त्तव्य का बोध कराते हुए अनेक दिशा-निर्देश दिए जिससे विषय-वस्तु, भाषा-शैली, छंद योजना आदि अनेक दृष्टियों से काव्य में नवीनता का समावेश हुआ। द्विवेदी जी ने भाषा संस्कार, व्याकरण शुद्धि, विरामचिह्नों के प्रयोग द्वारा हिंदी को परिनिष्ठित रूप प्रदान करने का प्रशंसनीय कार्य किया।

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी का हिंदी साहित्य में योगदान एक सर्जक के रूप में उतना नहीं है जितना एक विचारक, दिशा-निर्देशक, चिंतक एवं नियामक के रूप में है। उनकी प्रेरणा से हिंदी के अनेक कवि सामने आए जो उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़े। उनकी विचारधारा का पल्लवन करते हुए इन कवियों ने एक ओर तो नवीन काव्यधारा का श्रीगणेश करते हुए **भारतेंदुकालीन समस्या पूर्ति, रीति निरूपण से हिंदी कविता को मुक्त किया** तो दूसरी और खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। भाषा परिष्कार एवं संस्कार का जो कार्य द्विवेदी युग में हुआ वह सदैव स्मरणीय रहेगा।

15.3.2 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि

15.3.2.1 माखनलाल चतुर्वेदी—माखनलाल चतुर्वेदी (1889-1968) का जन्म मध्यप्रदेश के जिला होशंगाबाद के गाँव बाबई में हुआ था। इनके पिता गाँव के स्कूल में अध्यापक थे, इसलिए इनकी आरंभिक शिक्षा वहीं हुई। ये एक सजग, संवेदनशील एवं उत्साही व्यक्ति थे और आरंभ से ही देश की दशा के प्रति जागरूक थे। इन पर सैयद अमीर अली, 'मीर', स्वामी रामतीर्थ और माधवराज सप्रे का विशेष प्रभाव था। वैष्णव-संस्कार तो इन्हें अपने परिवार से ही मिले थे। अपने जीवन का आरंभ इन्होंने एक अध्यापक के रूप में किया था, किंतु ये पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्यशील रहे और इन्होंने 'प्रभा', 'प्रताप' तथा 'कर्मवीर' का संपादन किया। इनका उपनाम 'एक भारतीय आत्मा' था आरंभ में ये क्रांति के दर्शन से प्रभावित हुए थे, किंतु बाद में इनकी आस्था गाँधीवाद को ओर हुई। इनकी राजनीतिक सक्रियता के कारण इन्हें कई बार बंदी बनाया गया। जेल के जीवन-काल में इन्होंने अनेक कविताओं की रचना की। छायावाद-युग के इनके प्रमुख कविता–संग्रह

हैं—'हिमकिरीटिनी' और 'हिमतरंगिनी'। चतुर्वेदी जी की रचनाओं में देश के प्रति गंभीर प्रेम और देश-कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग की उत्कृट भावना दिखाई देती है। इस मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को तभी सफलता मिल सकती है जब वह जीवन के सुख और वैभव को ठुकराकर संघर्ष और साधना का मार्ग अपनाए। इन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा देशवासियों को इसी संघर्ष और साधना के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। इनकी कई रचनाओं में-विशेषकर आरंभिक रचनाओं में आध्यात्मिक अनुभूति को भी वाणी मिली है। इनकी आध्यात्मिक भावना पर निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति और आत्मोत्सर्ग का प्रभाव है।

15.3.2.2 सियारामशरण गुप्त—सियारामशरण गुप्त (1895-1963) का जन्म उत्तर प्रदेश के जिला झाँसी के चिरगाँव नामक ग्राम में हुआ था। ये मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई थे। रोग एवं परिवारिक दुखों के कारण इनका जीवन अत्यंत दु:खमय रहा। वैसे ये सरसता एवं नम्रता की प्रतिमूर्ति थे। इनकी पहली रचना सन् 1910 में 'इंदु' पत्रिका में प्रकाशित हुई इसके बाद 'सरस्वती' में कई रचनाएँ छपीं। 'मौर्य विजय', 'अनाथ', 'दुर्वादल', 'विषाद', 'आर्द्रा', 'पाथेय', 'मृण्मंथी', बापू', 'दैनिकी' आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं। गाँधीवाद में इनकी अटूट आस्था थी, इसलिए इनकी सभी रचनाओं पर अहिंसा सत्य, करुणा, विश्वबंधुत्व, शांति आदि गांधीवादी मूल्यों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। जिन रचनाओं में इन्होंने प्राचीन भारतीय आख्यानों को आधार बनाया है, वहाँ भी ये इन्हीं मूल्यों की प्रतिष्ठा करते दिखाई देते हैं। विषय-प्रतिपादन और अभिव्यंजना-शैली की दृष्टि से जहाँ इन पर एक ओर द्विवेदीयुगीन रचना-पद्धति का प्रभाव लक्षित होता है, वहाँ दूसरी ओर ये छायावादी शिल्प से भी प्रत्यक्षत: प्रभावित है। इनकी भाषा-शैली सरल और स्पष्ट है तथा इन्होंने सफलता के साथ मुक्त छंद का प्रयोग किया है।

15.3.3.3 बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'—'नवीन' जी (1897-1960) का जन्म ग्वालियर राज्य के **भयाना गाँव** में हुआ था। ग्यारह वर्ष की आयु में इनकी शिक्षा का आरंभ हुआ। सन् 1917 में हाई स्कूल पास करने के बाद ये कानपुर पहुँचे, जहाँ गणेशशंकर विद्यार्थी ने इन्हें कॉलेज में दाखिल करा दिया। किंतु सन् 1920 में ये गाँधी जी के आह्वान पर कॉलेज छोड़कर राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे। अपने लंबे राजनीतिक जीवन के दौरान इन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। देश के स्वाधीन होने पर ये पहले **लोकसभा और फिर राज्यसभा के सदस्य रहे**। कुछ समय तक इन्होंने 'प्रभा' और 'प्रताप' का भी संपादन किया था। इनकी रचनाएँ सन् 1918 से ही पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं, लेकिन इन्होंने उनको विधिवत् प्रकाशित कराने का कोई प्रयास नहीं किया। 'कुंकुम' (1939) इनका पहला कविता-संग्रह है। 'उर्मिला' काव्य को इन्होंने सन् 1934 में ही पूरा कर लिया था, किंतु उसका प्रकाशन 1975 ई० में हुआ। इसमें कवि ने उर्मिला के चरित्र के माध्यम से भारत की प्राचीन आर्य संस्कृति के उज्जवल रूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कथानक को अपने परिवेश के यथार्थ से—भारतीय संस्कृति और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के संघर्ष से—संबद्ध करने के लिए कवि ने कुछ प्रसंगों की अत्यंत कौशलपूर्वक संयोजना की है। इनके अन्य काव्य ग्रंथ है—**'अपलक', 'रश्मिरेखा', 'क्वासि'** तथा **'हम विषपायी जनम के'**। 'नवीन' जी की रचनाओं में प्रणय और राष्ट्र-प्रेम दोनों भावों की शक्तिशाली अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी प्रणय-संबंधी रचनाओं में छायावादी प्रणय के समान स्वच्छदता तथा प्रेम और मस्ती के काव्य जैसी मार्मिकता दिखाई देती है। इस रूप में 'नवीन' जी को परवर्ती प्रेम और मस्ती के काव्य के अग्रदूत के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इनकी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताओं में अनुभूतियों का सीधा संबंध इनके जीवन के साथ है। देश की स्वतंत्रता तथा समाज की नई रचना के लिए इन्होंने जो अथक साधना की थी, वही साधना निश्छल और सहज शक्ति के साथ इनकी राष्ट्रीय रचनाओं में भी दिखाई देती है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के अन्य कवियों के समान ही इनके काव्य के प्रधान विषय है—अतीत की महिमा का गौरव-गान तत्कालीन भारतीय समाज की रुग्ण अवस्था के प्रति व्यथा और आक्रोश, भविष्य को अवतरित करने की कामना आदि। किंतु, इनकी काव्य-चेतना का एक पक्ष बिलकुल निजी और अनुभूति-प्रधान

है—"हम अनिकेतन, हम अधिकेतन, हम तो रमते राम हमारा क्या घर, क्या दर, कैसा वतन?" कहीं तो
अपने फक्कड़पन और मस्ती की अभिव्यक्ति करते हैं और कहीं नशे में गर्क हो जाना चाहते है "हो जाने दे गर्क
नशे में, मत पड़ने दे फर्क नशे में" ये जिस ललक और उत्साह के साथ कर्म और साधना की ओर अग्रसर हो
हैं, उसी आवेश और आसक्ति के साथ प्रणय में डूब जाना चाहते हैं। फलस्वरूप पहली दशा का संघर्ष औ
तनाव और दूसरी स्थिति की मदहोशी और मस्ती दोनों कारण-कार्य-भाव से संबद्ध होकर परस्पर पूरक—
लगते हैं।

15.3.2.4 सुभद्राकुमारी चौहान—सुभद्रा जी (1905-1948) का जन्म प्रयाग जिले के निहालपु
गाँव में हुआ था। इन्होंने प्रयाग में ही शिक्षा ग्रहण की। सन् 1921 में असहयोग-आंदोलन के प्रभाव में इन्हें
शिक्षा अधूरी ही छोड़ दी और ये राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगी। अपने राजनीतिक कार्यों के कारण इन्हें क
बार जेल जाना पड़ा। काव्य-रचना की ओर इनकी प्रवृत्ति विद्यार्थी-काल से ही थी। इनकी कविताएँ 'त्रिधार
और 'मुकुल' में संकलित है। भाव की दृष्टि से इनकी कविताओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है
प्रथम वर्ग में राष्ट्र प्रेम की कविताएँ रखी जा सकती है। जिनमें इन्होंने असहयोग या आजादी की लड़ाई में भा
लेने वाले वीरों को अपना विषय बनाया है। इनकी 'झाँसी की रानी' कविता तो सामान्य जनता में बहुत प्रसि
हुई है। दूसरे वर्ग के अंतर्गत वे कविताएँ रखी जा सकती है जिनकी प्रेरणा इन्हें अपने पारिवारिक जीवन से प्राप
हुई है। ऐसी कविताओं में कुछ तो पति-प्रेम की भावना से अनुप्राणित हैं और कुछ में संतान के प्रति वात्सल
की सहज एवं मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी भाषा शैली भावों के अनुरूप सरलता और गति लिए हुए है।

15.3.2.5 अन्य कवि—छायावाद-युग में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के विकास में जिन अन
कवियों ने उल्लेखनीय योग दिया अथवा इस धारा के परवर्ती प्रमुख कवियों में से जिन कवियों की एक—
कृतियाँ आलोच्य काल में प्रकाश में आई उनमें रामनरेश त्रिपाठी, उदयशंकर, भट्ट, जगन्नाथप्रसाद मिलिंद
दिनकर आदि का उल्लेख आवश्यक है। **रामनरेश त्रिपाठी** (1881-1960) ने 'मानसी' (1927) व
कतिपय देशभक्तिपरक कविताओं के अतिरिक्त 'पथिक' (1920) और 'स्वपन' (1921) शीर्षक खंडकाव्
में काल्पनिक कथाओं के माध्यम से देश के उद्धार के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना को व्यक्त किया है। दो
काव्यों के नायक सामान्य जनता के प्रतिनिधि है। 'पथिक' का नायक जन-जीवन के वैषम्य को दूर करने
उद्देश्य से राजतंत्र से लोहा लेता है। और अंत में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपना तथा अपने परिवार व
बलिदान कर दिता है। 'स्वप्न में कवि ने एक ऐसे संवेदनशील नायक की कथा का वर्णन किया है जो पहले
स्वार्थ और लोक-सेवा अथवा व्यक्तिगत सुख और समाज-कल्याण में विरोध देखता है, किंतु फिर उसे कर्त्तव
का बोध होता है और वह देश के कल्याण के लिए पूरी शक्ति से कर्मलीन होता है। 'पथिक' के विपरीत इ
काव्य का अंत सुखद है। इन दोनों काव्यों में कवि ने राष्ट्र-सेवा के आदर्श की स्थापना की है त
समाज-विरोधी शक्तियों के प्रति विद्रोह करने की प्रेरणा दी है। इस प्रकार ये कल्पित कथानक भी सहज
कवि के सामाजिक यथार्थ से संबद्ध होकर अधिक सार्थक बन गए है। **उदयशंकर भट्ट** (1898-1966)
आख्यान काव्य 'तक्षशिला' (1929) की गणना भी प्रस्तुत काव्यधारा के अंतर्गत की जा सकती है—भारत व
सांस्कृतिक, गुण-गाथा की अभिव्यक्ति इस रचना का मुख्य अभीष्ट है। **जगन्नाथ प्रसाद मिलिं**
(1907-1986) के 'जीवन-संगीत' में भारत के सांस्कृतिक गौरव, राष्ट्रीय चेतना और बलिदान की भावना व
व्यक्त करने वाली कविताएँ संकलित हैं। इनकी रचना 1922 से 1936 के मध्य हुई थी। दिनकर—वृ
'रेणुका' (1935) भी इसी शैली का कविता-संग्रह है। रूढ़ी-विद्रोह, नवयुग की स्फूर्ति और ओजस्विता व
दृष्टि से इसकी कविताएँ अप्रतिम है। इस संदर्भ में मैथिलीशरण गुप्त की '**स्वदेश-संगीत**' (1925), क
'त्रिशुल' (गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही') की '**राष्ट्रीय मंत्र**' (1921), **केदारनाथ मिश्र** 'प्रभात' की 'ज्वाल

(1921), **महेशचंद्र प्रसाद** की 'कांग्रेस शतक' (1936) आदि रचनाओं का उल्लेख भी आवश्यक है—उस युग की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-चेतना को गतिमान करने में इन कृतियों का योगदान अविस्मरणीय है।

15.4 द्विवेदी युगीन गद्य साहित्य

गद्य साहित्य की कई विधाओं की नींव भारतेन्दु युग में पड़ गई थी। द्विवेदी युग में उनका विकास हुआ तथा कुछ नई गद्य-विधाओं ने जन्म लिया, जैसे, आत्मकथा जीवनी, संस्मरण, यात्रा विवरण, रेखाचित्र आदि। वस्तुत: इस युग में गद्य-साहित्य अपनी सभी विधाओं एवं दिशाओं में पूर्णत: उभरकर सामने आया। इन पर हम आगे विचार कर रहे है।

15.4.1 नाटक

नाटक भारतेन्दु युग में एक केन्द्रीय विधा थी, द्विवेदी युग में वह निर्जीव हो गई। जैसी सक्रियता, संजीविता और नाटय चेतना हमें भारतेन्दु युग में दिखाई देती है वैसी द्विवेदी युग में नहीं। इसका एक कारण तो पारसी थियेट्रीकल कम्पनियों की सक्रियता है। इन कम्पनियों का मुख्य उद्देश्य दर्शकों को मनोरंजन करके धर्नाजन करना था। इन कम्पनियों का 1853 ई० में अव्यावसायिक स्तर पर और 1867-1869 ई० में व्यसायिक स्तर पर प्रारंभ हो गया था। इन कम्पनियों के लिए और पारसी रंगमंच से प्रभावित होकर नाटक लिखने वालों में नारायणप्रसाद 'बेताब', रघुनन्दन प्रसाद शुल्क, विश्वभर सहाय 'व्याकुल जनेश्वर प्रसाद 'मायल-, तुलसीदत्त 'शैदा', हरिकृष्ण 'जौहर', राधेश्याम कथावाचक आदि के नाम उल्लेखनीय है। इनके नाटकों का कोई साहित्यिक महत्त्व नहीं हैं इन्होंने हिन्दी नाटक में कुछ जोड़ा नहीं है। इनमें से कुछ के नाटक बड़े लोकप्रिय हुए थे। जैसे विश्वभर सहाय 'व्युकुल' का बुद्ध देव, जनेश्वर प्रसाद मायल का सम्राट चंद्रगुप्त, राधेश्याम कथावाचकका वीर अभिमन्यु आदि।

15.4.2 उपन्यास

नाटक की तरह द्विवेदी युग में उपन्यास भी बहुत समृद्ध नहीं है। जिन उपन्यासकारों ने भारतेन्दु युग में उपन्यास लिखना प्रारंभ किया था, वही इस युग में भी उपन्यास लिख रहे थे। मेहता लज्जाराम शर्मा, किशोरीलाल, गोंस्वामी, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', ब्रजनन्दन सहाय, बलदेव प्रसाद मिश्र, मन्नत द्विवेदी, गंगाप्रसाद गुप्त, देवकीनन्दन खत्री, गोपाल राम गहमरी इत्यादि के अनेक उपन्यास द्विवेदी युग में भी प्रकाशित हुए, किन्तु प्रवृत्ति की दृष्टि से वे भारतेन्दु युगीन उपन्यास ही है।

इन उपन्यासकारों के उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यास किसी नई दिशा में नहीं मोड़ा। हिन्दी उपन्यास को नई दिशा प्रदान की प्रेमचंद्र ने जिनका हिन्दी में पहला उपन्यास 'सेवासदन' 1918 ई० प्रकाशित हुआ। इससे पूर्व उर्दू में वे कई उपन्यास लिख चुके थे। 'सेवासदन' भी हिन्दी में प्रकाशित होने से पूर्व उर्दू में 'बाजारे हुस्न' के नाम से लिखा जा चुका था। 'सेवासदन' ने हिन्दी उपन्यास को कोरे मनोरंजन उपन्यासों या कोरे उपदेशात्मक उपन्यासों से अलग करके सामाजिक-राजनैतिक जीवन की समस्याओं को गंभीरतापूर्वक स्वाभाविक लगने वाले कथानकों, यथार्थ प्रतीत होने वाले पात्रों, कलात्मक और व्यंजना से परिपूर्ण भाषा के माध्यम से व्यक्त करने वाली नई दिशा में मोड़ा। प्रेमचंद की दृष्टि आदर्शवादी थीं किंतु उनकी शक्ति समस्याओं के यथार्थ परिपेक्ष्य में थी। 'सेवासदन' का महत्व वैश्या-समस्या के आदर्शवादी समाधान में नहीं है, अपितु इस समस्या की यथार्थ और विश्वसनीय प्रस्तुति में है। असल में 1918 ई० से पहले का हिन्दी साहित्य जिसे 'प्रेमचंद पूर्व उपन्यास' भी कहते हैं। तैयारी मात्र है। न केवल हिन्दी उपन्यास को, अपितु स्वयं प्रेमचंद्र को भी 'सेवासदन' में ही परिपक्वता का एक स्तर प्राप्त होता है।

15.4.3 कहानी

हिन्दी में कहानी का जन्म द्विवेदीयुग में ही हुआ। हिन्दी साहित्य के विभिन्न इतिहासकारों ने हिन्
पहली कहानी के रूप में जिन कहानियों को चर्चा की है। वे है किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' (1
ई०) चंद्रशुक्ल ग्यारह वर्ष का समय' (1903 ई०) और बंग महिला की 'दुलाईवाली' (1970 ई०)। अ
रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा था—"यदि इंदुमती' किसी बंगला कहा
छाया नहीं है तो यही हिन्दी की पहली मौलिक कहानी ठहरती है।" बाद के अनुसंधानों से यह सिद्ध हो ग
'इन्मुमती' किसी बंगला कहानी की छाया तो नहीं है किंतु शेक्सपीयर के नाटक 'द टेम्पेस्ट' का भारतीय
के साथ हिन्दी रूपांतर अवश्य है। वह मौलिक कहानी नहीं है और इसलिए हिन्दी की पहली कहानी के
अमान्य हैं यही बात एक टोकरी भर मिट्टी के संबंध में भी कही जा सकती है। वह भी फिरदौसी के 'शाह
की एक कथा 'नौशेखां का इसांफ' पर आधारित है। शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' की मौलिक
आज तक किसी ने प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया हैं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जिस तर्क के आधार पर इसे हिन्
कहानी नहीं माना है उसे स्वीकार करना संभव नहीं है। इसलिए 'ग्यारह वर्ष का समय' को हिन्दी की
मौलिक कहानी माना जा सकता है।

15.4.4 निबन्ध

द्विवेदीयुगीन लेखक में वह आत्मीयता, अनौपचारिकता और सजीवता नहीं रह गई जो भारतेन्दु
लेखक में थी। फलत: इस युग में लेख अधिक लिखे गए, निबंध कम। और इसलिए इस युग में जिन्हें
निबंधकार माना जा सकता है। वे दो-चार ही है। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अधिकांशत: लेख ही लि
इसी प्रकार इस युग के लेखकों में श्यामसुंदर दास मिश्र बंधु, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, अयोध्य
उपाध्याय, माधवराव स्प्रे, जर्नादनभक्त काशीनाथ जायसवाल, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा इत्यादि लेखका
निबंधकार नहीं।

भारतेन्दु और द्विवेदी युग की संधि पर विद्यमान सच्चे निबंधकार है—बालमुकुंद गुप्त। निबंधकार
में उनका यश 'शिवशम्भु के चिट्ठे और खेत' पर आधारित है। इन चिट्ठों और खेतों में गुप्त जी ने
अपने समकालीन अंग्रेजी शासन और उसकी नीतियों की आकर्षक ढंग से आलोचना की है। इनमें एव
तीखा व्यंग्य है तो दूसरी ओर पराधीन देश के नागरिक की पीड़ा। उन्हीं के समकालीन गोविन्दनारायण
'कवि और चित्रकार' षड्ऋतु वर्णन, 'आत्माराम की टें-टें' जैसे गिने चुने निबंधों के कारण उल्लेखनी
जाते है। यद्यपि उनकी भाषा ऐसी है जो अच्छे-अच्छों के दांत खट्टे कर दे। उनकी शब्द योजना और
रचना बाणभट्ट की याद दिलाती है।

15.5 द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ

अंग्रेजों के दमन चक्र और कूटनीतिक शासन का विरोध करने के लिए इस युग में परंपरा को छो
साहित्य में पौराणिक तथा ऐतिहासिक घटनाओं और चरित्रों को राष्ट्रीय भावना के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत
गया। मध्यवर्ग के साथ निम्नवर्ग का चित्रण किया जाने लगा। परिणामत: किसान मजदूर, स्त्री—दलि
कष्टप्रद जीवन उभरकर आया। राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय भावना का स्वर मुखरित हुआ। प्रखर ह
के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नीर-क्षीर विवेक का आग्रह शुरू हुआ। मानवीय मूल्यों का आग्रह
काल में शुरु हुआ। भारतीय और युरोपिय दर्शन का संघर्ष प्रारंभ भी इसी काल की देन है। भारत के छद
यूरोप को बुद्धि पक्ष मानकर उसके एकमेक होने की स्थिति को आदर्श माना जाने लगा। आर्य सम
आंदोलन इस समय जोर पर था। गुरुकुल कांगडी की स्थापना हो चुकी थी। आर्यसमाज के नेतृत्व में ई

कॉलेज खुलने लगे थे। शिक्षा का सार्वत्रिक प्रचार-प्रसार हो रहा था। तर्क बुद्धिवाद, मानवता, राष्ट्रयिता, स्त्री-शिक्षा, आदर्शवाद इस युग के मूल्य और प्रेरणा रही है। जिसका व्यापक प्रभाव साहित्य पर पड़ा।

15.6 द्विवेदी युगीन कविता के आधार बिंदू

15.6.1 मानवता का प्रकटीकरण

मानवतावाद की भावना का विकास भारतेन्दु युग से ही प्रारंभ हो चुका था। साहित्य में जनवादी, प्रवृत्ति के संकेत इसी युग से प्राप्त होते है। शायद यही कारण रहा है कि 'हरिऔध' के राम-कृष्ण आदर्श समाज-सुधारक और नेता है। मैथिलीशरण गुप्त के राम अवतारी न होकर आदर्श मानव है, जो निजकर्मो से इस धरती को स्वर्ग बनाने आये हैं। अर्थात् पशुवत जीवन जीने वाले सामान्य मनुष्य के प्रति गहरी संवेदना का भाव इस युग के साहित्य में आया है। उसके प्रति स्नेह, सहानुभूती, कर्तव्य, क्षमा की भावना का अभिव्यक्तिकरण कवियों ने किया है। सर्वधर्म समता का बिगुल भी इसी काल में बजने लगा था। स्त्री-दुर्दशा के चित्र कविता में उतारे जा रहे थे'' अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में दूध और आँखों में पानी'' से उसकी कारुणिक अवस्था प्रकट कर, उसके प्रति क्षोभ ही व्यक्त किया जा रहा है। रविद्रनाथ के विश्वबंधुत्व की कल्पना इस समय का आदर्श रही है। साहित्य का सृजन आदर्श की प्रतिष्ठापना और मनुष्य महत्व के लिए किया जा रहा था।

15.6.2 आदर्शवाद

यह युग पाश्चात्य वैज्ञानिक एवं नये शिक्षा के संपर्क में आये भारतीय तथा परंपरागत कलाबाह्य मूल्यों की टकराहट का रहा है। फिर भी जो अच्छा उसको स्वीकार करने की प्रवृत्ति भारतीयों में रही। वेदों को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने की भरसक कोशिशे आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, विवेकानंद तथा प्रार्थना समाज ने की थी। विवेकानंद ने तो भारतीय आध्यात्मवाद का ह्दयवाद के रूप में पश्चिमी भौतिकवाद के सामने रखकर उसको प्रतिष्ठा दिलायी थी। यह सीधा-सीधा दो संस्कृतियों के भीतर की टकराहट थी। पश्चिम ने देश को पिछड़ा और सड़ा-गला साबित कर दिया था। अज्ञानी, अंधविश्वासी करार दिया था। इस सबको दूर कर भारतीयता का गौरव गान करने की प्रवृत्ती इस काल में विद्यमान है। बुद्धिवाद पर अध्यात्म की अर्थात् बुद्धि पर ह्दय की विजय के रूप में भारतीय अध्यात्म परंपरा का समन्वय साधने की चेष्टा की जा रही थी। छायावाद में इसे प्रसाद ने कामायानी में अभिव्यक्त किया है। इसी को साहित्यकार आदर्श के रूप में स्थापित करते जा रहे थे। भौतिक सुख सुविधाओं की अपेक्षा मानसिक संतुष्टि की चर्चा चल रही थी। आर्यसमाज, ब्रह्म समाज, तथा राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी 'सत्यम् शिवम् सुंदरम् को पराश्रय दिया था। एक तरह से इसके पीछे ईसाई मत के नकार देने का भाव भी छिपा हुआ था। रविन्द्रनाथ के मानवतावाद ने हिन्दी को बल प्रदान किया, यह सच्चाई है।

15.6.3 बौद्धिकता का प्रतिपादन

ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसाफिकल सोसायटी के साथ भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने समाजिक जागरण का बड़ा कार्य भारतेन्दु युग से ही शुरू किया था। वेद को तर्क प्रमाण पर कसकर उसकी नयी आलोचना आर्य समाज प्रस्तुत कर रहा था। चाहे वह आध्यात्मिक उन्नति हो, कर्मकांड हो, स्त्री प्रश्न, हो इन सबके प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं नयी शिक्षा से प्राप्त दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया गया। परिणामत: पुराने को आँख मूँद कर स्वीकारते हुए उसके प्रति विद्रोह का भाव प्रकट होने लगा। अनेकेश्वर की जगह एकेश्वर वाद इसका प्रमाण है। बुद्धिवाद के कारण ही देवी-देवताओं की ओर देखने की दृष्टि बदल गयी। कर्मकांड के थोथे पन को उजागर किया गया। रुढ़िवादिता एवं सड़ी-गली प्राचीन परंपराओं पर कुठाराघात किये जा रहे थे। देवता की अवतारवादी संकल्पना को नकारा जा रहा था। अलौकिकता की जगह लौकिकता का चित्रण किया जा रहा था।

एक तरह से यह बौद्धिकता का युग, तार्किक प्रणाली से सोचने-विचारने का युग प्रारंभ हो गया था। जा की आलोचना इसी कारण होती रही। प्रकृति तथा अलौकिक शक्ति के प्रति मानवीय दृष्टिकोण से देखा लगा था। यह आग्रह भाषा के क्षेत्र में भी दिखाई देता है। बौद्धिकता इस युग की प्रधान प्रवृत्ति रही है उ प्रभाव आने वाले काल पर भी पड़ा।

15.6.4 सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की भावना

द्विवेदी युगीन कविता में देश के अतीत का गौरव गान बड़ी श्रद्धा सहानुभूती और प्रेम के साथ कि स्वदेशी आंदोलन को जगाने के लिए इस प्रकार का वर्णन किया गया। वैसे हमने पहले ही कहा 'नवजागरण' हेतु हिन्दू धर्म, ग्रंथों की नयी व्याख्या कर उनका पुनरुत्थान इस युग में किया जा रहा। तत्व समय में स्वाधीनता आंदोलन तो विकसित हुआ पर कुछ समय के बाद साम्प्रदायिक भावनाओं का विक हुआ। भारतेन्दु एवं द्विवेदी साहित्य ने पाठकों, आम जनता के मन में वर्तमान में जिसे हम 'हिन्दुत्व' क उसका विकास करने में योग दिया ऐसा कहा जा सकता है। नाटक एवं उपन्यास, कहानी और एकांकी स के प्रमाण दिये जा सकते है।

इस समय के विद्वानों ने कहा है "जहाँ भारतेन्दु युग में केवल प्राचीन के प्रति पूज्य भाव था और के प्रति निराशा, वहाँ द्विवेदी युग के कवियों में शक्ति और साहस का अपूर्व मिश्रण दिखाई पड़ता है।" म की वंदना, उसे पुण्यभूमि के रूप में चित्रित करना आदि भाव जहाँ भारतेन्दु युग में निराशा के स्थान पर युग में आशा और विश्वास का भाव भरते है। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' जैसे काव्यों ने जो उत्साह का संचार किया। हर कंठ की वह भारत-जननी बनी उक्त युग में यह कार्य राजनीतिक चेतना क से महत्वपूर्ण था। परंतु आने वाले भविष्य को मात्र अतीत की ओर मोड़ दिया गया। इसमें दो राय नहीं चाहिए। बंकीमचंद्र की 'आनंदमठ' का प्रकाशन हो चुका था। हिन्दी के अधिकांश साहित्यकार बांग प्रभावित रहे है। 'आनंदमठ' के संबंध में बड़ी मार्मिक टिप्पणी वीर भारत तलवार ने की है, "आ (1882) में प्रकाशित इस उपन्यास में विद्रोही हिन्दू सन्यासियों के गुप्त संगठन का वर्णन है। ये स मीरजाफर के शासन को 'मुसलमानी राज' मानकर उसके खिलाफ लड़ते है, लेकिन कलकत्ते में प्रबल अंग्रेजों के खिलाफ नहीं .... (अंग्रेजी राज को मित्र बताते हुए उसके रहने और बनने में विद्रोहियों ने द दिया ताकी) अंग्रेजों के बिना राजा हुए सनातन धर्म का उद्धार नहीं होगा।" हर वर्ग में राजनीतिक चेतना- का प्रयास कॉंग्रेस के साथ कवियों ने भी किया मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, गयाप्रसाद शुक्ल रामनरेश त्रिपाठी आदि। श्रीधर पाठक विद्यार्थियों को प्रेरित करते हुए लिखते है—

"अहो छात्रवर-वृद नव्य भरत-सुत प्यारे
मातृगर्व-सर्वस्व मोदप्रद गोद-दुलारे।
सतसेवा व्रत धार जगत के हरो क्लेश तुम।
देश प्रेम में करो प्रेम का अभिनिवेश तुम।।"

एक प्रकार से राजनीतिक चेतना को जगाने में प्रतिबद्ध काव्य की रचना, कॉंग्रेस के आंदोलन के- कंधे पर लेकर चल रहा था। नयी राष्ट्रीय भावना का विकास हो रहा था।

15.6.5 राष्ट्रीय भावना और राजनीतिक चेतना

द्विवेदी युगीन कवियों ने देशभक्ति संबंधी जागरण कविता द्वारा फैलाया है। इस युग की कविता भावनाओं से ओतप्रोत है। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन को प्रेरित करने, देशवासियों को उनकी गुल अहसास कराने, उनकी निष्क्रियता, अकर्मण्यता की मनोवृत्ती को स्पष्ट करने का प्रयास कविता द्वारा

लोकमान्य की राजनीतिक स्वतंत्रता की माँग, स्वदेशी वस्तु प्रति प्रेम आदि भावना का विकास काँग्रेस की ओर से किया जा रहा था। साहित्य में भी इसके प्रतिबिंब आये है। देश प्रेम कविता का विषय हो गया, फिर कविता छोटी हो या प्रबंधात्मक। मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का 'प्रिय प्रवास' रामचरित उपाध्याय का 'रामचरित चिंतामणी' और सत्यनारायण कविरत्न का 'भ्रमरगीत' आदि रचनाएँ हिन्दी भाषा के गौरव ग्रंथ होने के साथ-साथ देशभक्ति और अतीत की ज्वलंत विभुतियों के भव्य निदर्शक भी है। इसमें वर्तमान भारतीय स्थिति पर करुणा प्रकट की है। और अतित को गौरवशाली बनाया गया है। इस युग की कविता ने किसी प्रकार की जातिगत, धर्मगत संकीर्णता को पराश्रय नहीं दिया। संपूर्ण भारत एक भाव कविता में आया। इस व्यापक चेतना को फैलाने में "हिन्दू-मुस्लिम, सिख, ईसाई सब आपस में भाई-भाई" का नारा फैलाया। जिसमें शिक्षित भारतीय जनता में नवसंचार हुआ और वह आजादी के आंदोलन में आत्मोत्सर्ग करने के लिए तत्पर हुआ। नयी राजनीतिक चेतना का भय ब्रिटिश शासन को भी था। इसलिए इस काल की पत्रकारिता पर कड़े कानून लागू किये गये थे। कविवर शंकर ने आत्मोत्सर्ग एवं स्वतंत्रता प्राप्ती के संदर्भ में अपनी कविता 'बलिदान गान' में कहा है—

"देशभक्त वीरो, मरने से नेक नहीं डरना होगा
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।"

प्रत्येक कवि देश की दीन-हीन दशा और उसके प्रति क्षोभ व्यक्त करता है। मिथ्या दंभ, अभिमान को निकालकर देश दशा पर ध्यान देने का आग्रह करता है। रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' की कविता "आलस फुट, खुदगर्जी, मिथ्या कुलीनता आदि अभिशापों की ओर भी इस युग का कवि दृष्टि डालता है और इसके निराकरण की कामना करता है।"

भरतखण्ड का हाल जरा देखो है कैसा।
आलस का जंजाल जरा देखो है कैसा।।
जरा फूट की दशा खोलकर आँखे देखो।
खुदगर्जी का नशा खोलकर आंखे देखो।
है शोखी दौलत की कहीं, बल का कही गुमान है।
है खानदान का मद कहीं, कहीं नाम का ध्यान है।।

द्विवेदी युग ने देशवासियों को उनकी स्थिति से अवगत कराकर आजादी के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी। इसलिए उन्होंने कुप्रथाओं, बाह्याडम्बरों, सामाजिक कुरीतियों, देश दुर्दशा को कविता का विषय बनाया।

काँग्रेस में मध्यवर्ग का उदय एवं उभार देश में नयी राजनीतिक चेतना फैलाने में कारगर सिद्ध हुआ। देशोन्नती के लिए सभी जाती वर्ग आग्रही रहे। "बंग-भंग की भारत विरोधी और जाति-भेदीकरण की नीति से राष्ट्रीय भावनाओं से पूरित भारतीय जनता की आँखे खुल गई और वे अंग्रेजों को बड़े संदेह की दृष्टि से देखने लगे और इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप तथा राष्ट्रीयता के अनुरूप सभी जातियों में भ्रातृत्व भावना का प्रचार हुआ। रूपनारायण पाण्डेय की एक कविता इसी प्रकार की है"

जैन बौद्ध पारसी यहूदी मुसलमान सिख ईसाई।
कोटि कंठ से मिलकर कह दो, हम सब है भाई-भाई।।
पुण्य भूमि है, स्वर्ग भूमि है, जन्म भूमि है देश यही।
इससे बढ़कर या ऐसी ही दुनिया में है जगह नहीं।।

15.6.6 धार्मिक कल्पना

इस काल की कविता में धार्मिकता की अलग कल्पना की गई है। बौद्धिकता के प्रभाव के कारण ईश्वर आदी के मानवीय रूपों की कल्पना की गई है। 'साकेत' में मैथिलीशरण गुप्त लिखते है—

"राम, तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या?"

आदर्श की प्रस्थापना करने हेतू 'राम' को मानव रूप की कल्पना मनुष्य के दु:ख, कष्ट हरण हेतू की गयी साथ ही आर्य धर्म बनाकर, धरती को स्वर्ग बनाने की बात भी राम करने लगते है। आगे गुप्तजी कहते है—

"मैं आर्यें का आदर्श बताने आया।,
जन-सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।
भव में नव वैभव प्राप्त करने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ नहीं मैं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।"

मानव की सेवा और सामन्ती सभ्यता के निंदा का भाव कवियों में रहा है। इसलिए उनमें मानव सेवा ही ईश्वर सेवा' का भाव विद्यमान है। जिस प्रकार 'साकेत' के राम मानव रूप में आये उसी प्रकार 'प्रिय प्रवास (हरिऔध) के कृष्ण भी मानव सेवा करते दिखाए गए है। बुद्धिवाद के युग में अवतार वाद का प्रतिपादन करना द्विवेदी युग को असंभव था। इसलिए दीन-दलितों, दुखितों, श्रमजीवों में ईश्वर की कल्पना की गई और ईश्वर प्रेम, विश्व प्रेम में बदल गया ठाकुर गोपालशरण सिंह कहते है—

"जग की सेवा करना ही है, सब सारों का सार
विश्वप्रेम के बंधन ही में, मुझ को मिला मुक्ति का द्वार।"

वस्तुत: जीवन, जगत और प्रकृती में व्याप्त ईश्वर के प्रति कवि की अभिव्यक्ति भावना में रहस्यात्मकता आ गई। वही आगे छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति वन गई। धार्मिक भावना को जनसेवा, विश्वप्रेम से जोड़कर उसे कुछ अलग ढंग से विकसित किया गया।

15.6.7 इतिवृत्तात्मकता

इस काल की कविता श्रृंगार के बोझ से मुक्त हुई। उसकी जगह देश प्रेम, सामाजिकता, आशावादिता ने लिया। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदीजी का जीवन बड़ा कठोर, संयत, सात्विक एवं आदर्श था। जीवन शुचिता के साथ काव्यशुचिता, भाषा शुचिता पर उन्होंने बल ही नहीं दिया बल्कि उसके प्रति वे आग्रही थे। शायद यही कारण है की श्रृंगार की उच्छृंखलता का विरोध कर दाम्पत्य श्रृंगार को कविता में सुष्ठ रूप में स्वीकारा। परिणामत: कविता इतिवृत्तात्मकता की ओर मुड़ी। उसके लिए सरस गद्य शैली को युग ने स्वीकारा। अत: कविता में लाक्षणिकता, चित्रमयता और वक्रोक्ति रही नहीं। विद्वानों ने ऐसा माना है की इस समय द्विवेदीजी के सामने दो शैलियाँ थी बंगाल की कोमलकांत पदावली और मराठी की वर्णन प्रधान इतिवृत्तात्मक शैली। उन्होंने दूसरी शैली को अपनाया। क्योंकि वह उनके मन के अनुकूल थी और साथ ही वह नैतिकता के प्रचार तथ आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए भी उपर्युक्त थी।" परिणामत: इस काल की कविता में आकर्षण लालित्य कम हुआ वह शुष्क एवं नीरस हुई। मुक्तक कविता की रचना का प्रचलन बढ़ा। 'साकेत' में ही गुप्तजी ने इसका प्रयो किया'—

वेदने। तू भी भली बनी।

पाई मैंने आज तुझी में अपनी चाह घनी।।

दोनों ओर प्रेम पलता है।

सखि, पतंग भी जलता है, हा! दीपक भी जलता है।

कविता का यह गद्यात्मक रूप मैथिलीशरण गुप्त, ठाकुर गोपालशरण सिंह, लोचनप्रसाद पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डेय में आया। बौद्धिकता के कारण वह बोझिल हुई प्रतिक्रियास्वरूप' रहस्यात्मकता की खोज, रहस्योन्मुख प्रेम' के प्रति कवि भावना बढ़ी। प्रकृति वर्णन में भी यही भावना रही। गुप्त में भी यह संकेत मिलते हैं—

"तेरे घर के द्वार बहुत है किससे होकर आऊ मैं

सब द्वारों पर भीड़ बड़ी है कैसे भीतर जाऊ मैं।"

15.6.8 नारी स्वातन्त्र्य और उत्कर्ष

रीतिकालीन नारी के सौंदर्य वर्णन की परंपरा को जोदार आघात द्विवेदी युग में मिला। नारी संबंधी मान्यताएँ बदलने लगी। विभिन्न सामाजिक कार्य करने वाली संस्थाओं तथा काँग्रेस के राजनीतिक आंदोलन के परिणाम स्वरूप स्त्री के कोमल भाव की जगह कठोर, वीर भाव का चित्रण होने लगा। उनकी स्वतंत्रता का उत्कर्ष हुआ। पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर वह राजनीतिक आंदोलन में उतर चुकी थी। प्राचीन रुढ़ियों, परंपराओं को वे स्वयं तोड़ रही थी। जीवन और जगत के प्रति उनकी अपनी दृष्टि का विकास हो रहा था। अपनी स्वतंत्रता, अधिकार के प्रति वह सजग हो चुकी थी। पुरुषसत्ताकी व्यवस्था को धक्का दिया जा रहा था। स्त्री जाति पर होने वाले अन्याय-अत्याचारों के प्रति कवियों ने दृष्टि डाली। श्रीधर पाठक, मैथलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि प्रमुख कवियों ने उसकी बदली चेतना द्वारा नवयुग लाने का प्रयास किया। साथ ही उसके प्रति अन्याय-अत्याचार की भावना को सामाजिकों से निकालने का तथा उसमें सुधार करने का भाव कवियों में रहा है। ईश्वर से प्रार्थना करते हुए श्रीधर पाठक लिखते हैञ

"दीनबंधु सदृष्टि कीजैं बाल-विधवा और।"

नारी के नये रूपों को वे हमारे सामने लाते है वह जनसेविका, देशभक्त रागीनी, जननी के रूप में लोकसेविका के रूप में चित्रित की गई है।

मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों ने उनके उपेक्षित व्यक्तित्व को उत्कर्षित किया। साकेत की 'उर्मिला हो, या यशोधरा' या द्वापर की 'विधृता'। उनपर आधुनिक विचार-संवेदना की गहरी छाप रही हैं साकेत की 'उर्मिला' तो सैन्य संगठन कर रावण से युद्ध करने के लिए तत्पर है। गुप्त जी ने नारी को प्रतिष्ठा दिलाने के लिए ही उसका कारुणिक उत्कर्ष दिखलाया है—

"अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।

आँचल मे दूध और आँखों में पानी।।"

के साथ उसे त्याग, संयम, आत्मोत्सर्ग, शक्ति से कठोर रुपों में भी चित्रित हुई है। इस काल में कोमल गुणों से नहीं बल्कि शक्ति समृद्ध, महान गुणों से पारित हो चुकी थी। उसके व्यक्तिव स्वातंत्र्य का आविष्कार हो चुका वह हर स्तर पर पुरुषों से समानता रखती है।

15.6.9 सामाजिकता की ओर उन्मुख

मानवता और आदर्शवाद की विचार प्रवृत्ति ने कविता अधिकाधिक सामाजिकता की ओर उन्मुख हुई है। समाज के सभी वर्ग पर कवि की दृष्टि पड़ी। सभी वर्गों की उन्नति का भाव कविता में आया है, जैसे स्त्री,

दलित, कृषक, मजदूर, उनके विकास की भावना कविता में आयी है। सामाजिक सडी-गली रुढ़ियों, परंपर शास्त्र का खंडण कर नया तर्क बुद्धि परक वैज्ञानिक विचार दृढ़ करने पर कवियों ने बल दिया है। स्त्री उ बालविवाह विरोध, विधवा विवाह समर्थन, दहेज प्रथा, शिक्षा समर्थन, आदि का खुलकर चित्रण कवित हुआ है। मैथिलीशरण गुप्त इस दिशा में उल्लेखनीय है। कवियों को हिंदूधर्म की सामाजिक, सांस्कृतिक वि की चाह थी। इसलिए अतीत गौरव जातीय गौरव, जातीय प्रेम का भाव उनकी कविता में आया। काँग्रेस व्यापक होते आंदोलन के साथ किसान, दलित, महिला वर्ग जुड़ता जा रहा था। किसानों का संघटन एवं वि का एजेंडा काँग्रेस के रडार पर था। किसानों को बड़ा महत्व काँग्रेस ने दिया। मैथिलीशरण गुप्त की 'कि कविता इसका उदाहरण है। अछुतोद्धार की भावना कभी कविता का विषय रहीं है। इसी कालखंड वर्णव्यवस्था पर तीखे प्रश्न खड़े हो चुके थे। सामाजिक कुरुपताओं को दूर करने के लिए कवियों ने व कविता का आश्रय लिया।

15.6.10 प्रकृति चित्रण

द्विवेदी युग का प्रकृति चित्रण बड़ा सच्चा और मनोयोग पूर्ण किया गया है। शृंगार काल में जो प्र वर्णन किया गया है वह शृंगार भावना उद्दीपन हेतु हुआ है। भारतेन्दु युग में सौंदर्यानुभूति के अभाव में वे अलंकारिक चित्रण की प्रधानता रही है। परन्तु द्विवेदी युग में यह वर्णन संवेदनात्मक और चित्रात्मक रूप उपस्थित हुआ है। जिसमें अग्रसर है श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण रामनरेश त्रिपाठी' तथा रामचंद्र शुक्ल आदि। श्रीधर पाठक की कविता में तन्मयता और माधुर्य भाव सनिहि कश्मीर का वर्णन कुछ इसी प्रकार का है–

"प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप सँवारति।
पल-पल पलटति मेष छनिक छबि छिन-छिन धारति।
बिहरति विविध विलास भरी जोबन मद में सीन।
ललकति किलकति पुलकति निरखति थिरकति बनठनि।"

आचार्य शुक्ल द्वारा ग्राम सौंदर्य वर्णन भी चित्रात्मक रूप में हुआ है—

"गाय उसी देवल के पास से है ग्राम्य-पथ,
श्वेत धरियों में कई घास को विभक्त कर।
थूहरों से सटे हुए पेड़ और झाड़ हरे,
गोरज से धूमले जो खड़े है किनारे पर।"

रामनरेश त्रिपाठी ने उनके काव्य 'पथिक' और 'स्वप्न में नदी' में पर्वत, समुद्र आदि का दृश्य भव्य में चित्रित किया है। उनके प्रकृति चित्रण में कहीं-कहीं रहस्यात्मकता भी पाई जाती है–'हरिऔंध' ने प्रकृति पाँच रूपों में चित्रित किया है, "आलम्बन रूप, उद्दीपन रूप, बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप, उपदेशात्मक रूप आलंकारिक रूप।"

इस काल के कवियों ने प्रकृति-वर्णन में भी उपदेशात्मकता की वृत्ति रखी शायद इसी कारण व मानवी, न प्रकृति के रहस्यों को खोल पाया, न सहज, सुंदर हो पार्या वर नीरस और शुष्क ही रहा है। प्र वर्णन भी इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति रही है।

15.6.11 अनुवाद

देशी और विदेशी साहित्य के अनुवाद की भारतेन्दु परंपरा का अधिक विकास द्विवेदी युग में हुआ अनुवाद मात्र केवल पद्यात्मक नहीं गद्यात्मक भी हुआ और ठेठ खड़ीबोली में हुआ। स्वयं द्विवेदी जी 'सरस

में अंग्रेजी कविताओं का अनुवाद प्रकाशित करते थे। बांगला के उत्कृष्ट ग्रंथों का अनुवाद इस कालखंड में हुआ। श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के हरमिट का 'एकांतवासी योग' तथा 'ट्रैवलर का' शान्त पथिक' का पद्यानुवाद किया। डॉ. रवीन्द्र सहाय वर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी काव्य पर आँग्ल' प्रभाव में लिखा है—''द्विवेदी युग के हिन्दी काव्य में अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद विशिष्ट स्थान रखते हैं। 1903 से 1908 के मध्यवर्ती काल में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास के लिए अथक परिश्रम किया था। ये अनुवाद अनवरत रूप से सरस्वती में प्रकाशित होते रहे।'' शेक्सपियर, बायरन, ग्रे आदि की कविताओं के अनुवाद हुए है।

साथ ही बांगला और मराठी 'के अनुवाद भी किये गये।' बांग्ला से सामग्री ली गयी ती मराठी से शैली'' मैथिलीशरण गुप्त ने माईकेल मधुसुदनदत्त के मेघनाथ वध और वीरांगना तथा नवीनचंद्रसेन के 'पलासीर युद्ध' का अनुवाद किया। सियारामशरण गुप्त तथा मुकुटधर पाण्डेय की कविताओं पर रविद्रनाथ ठाकूर की 'गीतांजली' के रहस्यवाद का प्रभाव दिखाई देता है। अनुवाद कार्य की परंपरा को समृद्ध किया द्विवेदी युग ने।

15.6.12 काव्य विषय एवं रूपों में विविधता

द्विवेदी युग में काव्य विषयों एवं रूपों में महत्वपूर्ण बदलाव आये हैं। रीतिकालीन परंपरा को छोड़कर अनेक नये विषयों को काव्य में स्थान दिया। द्विवेदी 'कवि कर्त्तव्य' निबंध में लिखते है—चीटीं से लेकर हाथी पर्यन्त, पशु, भिक्षुक, से लेकर राजपर्यन्त, मनुष्य, बिन्दू से लेकर समुद्र पर्यन्त, जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, अनन्त पर्वत—सभी पर कविता हो सकती है।'' जीवन जगत संबंधी विविध विषयों पर काव्य लेखन किया गया। विषय की कोई सीमा नहीं थी। डॉ० नगेद्र ने विषय सूची ही दी है—परोपकार मुरली, कृषक, सत्य, लड़कपन, ग्रन्थ, गुण-गान, प्रणय, ईर्ष्या, निद्रा, कलियुगी साधु, पुस्तक प्रेम, ब्रह्मचर्य, हिन्दी की अपील, बालक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, मूढ़ मानव, मेहंदी, नैकटाई, मनोव्यथा, कामना, विद्या कुलीनता, पौरुष, शिशु-स्नेह, सुखमय जीवन, भारतीय छात्रों से नम्र निवेदन, लक्ष्मी-लीला, सपूत, ग्राम—गौरव, सज्जनों का स्वभाव, समालोचक-लक्षण दरिद्र विद्यार्थी आदि।''

इसके साथ ही आचार्य शुक्ल ने भी कुछ संकेत किये है—देशदशा, समाज-दशा, स्वदेश प्रेम, आचरण संबंधी उपदेश, के साथ, त्याग, वीरता, उदारता, सहिष्णुता, पौराणिक-ऐतिहासिक प्रसंग पद्यबद्ध हुए है जिसके बीच-बीच में जन्मभूमि प्रेम, स्वजातीय गौरव, आत्मसम्मान की व्यंजना करने वाले भाषण रखे गये है।

गुप्तजी ने विकट घर', 'तिलोत्तमा', 'रंग में भंग', 'सौरन्ध्री', 'द्वापर', 'किसान', 'विश्व वेदना', 'काबा और कर्बला' में इसे विस्तार दिया है। कामताप्रसाद गुरु की 'दुर्गावती' (सरस्वती फरवरी 1995) रामचरित उपाध्याय की 'देवसभा', 'देवदूत' इसके उदाहरण है।

काव्यरूपों की भिन्नता भी द्विवेदी युग की विशेषता है। खंडकाव्य, प्रबंधकाव्य, और प्रगति मुक्तकों का प्रयोग काव्य लेखन हेतु किया गया है। साथ ही मुक्तक के बजाय महाकाव्य, आख्यान काव्य, प्रेमख्यान काव्य, गीत काव्य और स्फुट गीतों का स्वतंत्र लेखन हुआ है। खड़ीबोली का प्रयोग गद्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण रहा है। गद्य साहित्य में घटनाप्रधान, चरित्र प्रधान, ऐतिहासिक तथा पौराणिक घटना और कथाओं को लेकर उपन्यास, कहानियों का लेखन किया गया हैं आलोचना तथा निबंध साहित्य का समृद्ध विकास भी इसी युग में हुआ है। कहने का तात्पर्य है कि विषय एवं शिल्पगत विविध प्रयोग इस काल में हुए है।

15.6.13 खड़ी बोली काव्य की भाषा

द्विवेदी युग में 'भाषा परिवर्तन' यह एक प्रमुख प्रवृत्ति है। ब्रजभाषा की जगह खड़ीबोली ने काव्य भाषा के रूप में स्थान लिया ''आज खड़ीबोली के भाषा—सौंदर्य, मार्दव और अभिव्यंजना क्षमता के दर्शन के पश्चात

उसकी काव्योपयुक्तता। विवादास्पद नहीं रह गयी है।'' जो लोग खड़ीबोली प्रयोग पर सशंक थे उन्हें 'जयद्रथवध', 'भारत-भारती' ने उपयुक्तता समझायी/द्विवेदीजी ने भाषा तथा व्याकरण संबंधी त्रुटियों को दूर कर उसे प्रयोगसामर्थ्यशील बनाया। द्विवेदीजी ने गद्य-पद्य की भाषा भी एक-सी करने का आदर्श-रखा, इसका परिणाम कवियों पर हुआ। 'हरिऔध' जी जैसे कवियों में तो द्विवेदीजी के संस्कृतनिष्ठता का भी अभाव है उन्होंने ठेठ हिन्दुस्थानी का प्रयोग 'प्रिय प्रवास' में किया—

"मदीय प्यारी अयि कुंज कोकिला
मुझे बता तू ढिग कूक क्या उठी।
विलोक मेरी चित्त-भ्रान्ति क्या बनी
विषादती संकाचित्ता नीपीड़िता।"

द्विवेदीजी ने भाषा को समयानुरूप बदला। डॉ० नगेद्र ठीक कहते है, 'जयंद्रथ वध' की प्रसिद्धी ने ब्रजभाषा के मोह का वध कर दिया 'भारत-भारती' की लोकप्रियता खड़ीबोली की विजय-भारती सिद्ध हुई'' ब्रजभाषा का वैभवशाली रूप धराशायी हुआ और खड़ीबोली ने विकास पाया। भाषा के बदलने से जो क्रांति हुई वह आगे हिन्दी साहित्य में स्पष्ट है। छंदोबद्धता को त्यागकर भी कविता जन के ओर अधिक निकट हुई।

15.6.14 छन्द, स्वच्छन्द

खुद द्विवेदीजी छंदोबद्ध तथा तुकबंदीवाली कविता के विरोधी थे इसलिए उन्होंने स्वछंद को अपनाया। संस्कृत वृत्तों के अतुकांत या अनुप्रास को भी दूर किया गया। खड़ीबोली में ही विविध छंदों का सुंदर प्रयोग इस काल के कवियों ने किया। हिन्दी, उर्दू, संस्कृत को छंदों का भी प्रयोग उत्कृष्ट रूप से किया। मुक्तछंद की कविता का प्रयोग होने लगा। छायावादी अंतिम दौर में तो निराला ने 'मुक्तछंद' कविता का ही पुरस्कार किया। फिर भी श्रीधर पाठक ने लावनी तथा उर्दू, गयाप्रसाद शुक्ल -स्नेही' ने उर्दू, 'हरिऔध' ने संस्कृत, छंदों का प्रयोग किया। ब्रजभाषा में जिन कवियों ने रचनाएँ की उन्होंने रोला, छप्पय, कुण्डलियां, गीतिका, हरिगीतिका, नाटक, लावनी, सवैया, कवित्त आदि छंदों का प्रयोग किया है। अनेक कवि छंद विशेष का प्रयोग करते थे। परंतु इस काल का कवि भाषा के संस्कार कार्य में रत था। उन्होंने नये छंद निर्माण करने में कोई दिलचस्पी नहीं रही होगी।

15.7 स्वाधीनता आन्दोलन और द्विवेदी युग का मूल चरित्र

1856 ई० में हिन्दी भाष क्षेत्र पर पूरी तरह अंग्रेजों के अधिपत्य स्थापित करते ही अगले वर्ष 1857 ई० में उनके विरुद्ध विद्रोह की आग भड़क उठी। यद्यपि अंग्रेजों ने स्वाधीनता की भावना को नहीं दबा सके। भारतेन्दु युग का कवि ही स्वाधीनता की मांग करने लगा था—

"सब तजि गहौ स्वतंत्रता, नहि चुप लातै खाय।"

द्विवेदी युग में स्वाधीनता की मांग और तीव्र हुई। 28 सितम्बर 1885 ई० में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजों की सदभावना और न्यायप्रियता पर विश्वास करके अपनी अपनी मांगे उनके सामने प्रार्थना के रूप में प्रस्तुत करती रही लेकिन इन प्रार्थनाओं का कोई फल नहीं निकला। इसलिए कांग्रेस में असंतोष बढ़ने लगा जो 1905 में बंग भंग के समय पूर्णत: सामने आ गया। इस बंग-भंग का सभी देशभक्त भारतीयों ने विरोध किया लेकिन विरोध के स्वरूप को लेकर उनमें मतभेद था फलत: कांग्रेस में उग्र और अनुग्र दो दल बन गए। 1906 ई० में कांग्रेस की सदस्यता के नियम इस प्रकार बना दिए गए जिससे उग्र दल वालों के लिए उसके दरवाजे बंद हो गए। अंग्रेज सरकार भी उग्रवादियों के खिलाफ थी। अत: 1907 ई०

में बिना मुकदमा चलाए लाला लाजपतराय को देश से निर्वासित करके माण्डले जेल भेज दिया गया। अगले ही वर्ष केसरी के लेखों को बहाना बनाकर तिलक को छह वर्ष की कड़ी सजा देकर माण्डले जेल भेज दिया। लेकिन इससे अंग्रेजी शासन का विरोध कम नहीं हुआ। 1915 ई० में तिलक और एनी बेसेंट ने होमरूल (स्वशासन) आंदोलन चलाया। 1916 ई० में उग्रवादियों को कांग्रेस में फिर प्रवेश मिला। 1914 ई० में प्रारम्भ होने वाले प्रथम महायुद्ध में अंग्रेजों की सहायता करने के लिए गांधी जी ने काग्रेसियों को मना लिया। इस सहायता के पीछे मनोभाग यह था कि युद्ध की समाप्ति पर अंग्रेज शासन में भारतीयों की भागीदारी बढ़ाएगें; उनकी मांगों को कुछ न कुछ स्वीकार करेंगे लेकिन हुआ उल्टा। युद्ध समाप्त होते ही अंग्रेजो ने अपना दमनचक्र पूरी तेजी से चलाया जिसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया हुई। 1919 ई० रौलट बिल इसी दमनचक्र का अंग था और 13 अप्रैल 1919 ई० को जलियावाला बाग का हत्याकांड उस दमनचक्र की चरम परिणीत थी।

15.8 ब्रजभाषा की कविता

इस युग में श्रीधर पाठक, रायदेवी प्रसाद पूर्ण, नाथूराम शंकर शर्मा, गयाप्रसाद शुक्ल, 'स्नेही', लाला भगवानरीन, जन्नाथदास 'रत्नाकार', अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरदयालु सिंह, सत्यानारायण कवि रत्न आदि ऐसे कवि है जो ब्रजभाषा में कविता लिखते रहे। इनमें से रत्नाकार कविरत्न और हरदयालु सिंह को छोड़कर शेष सभी कवि 'दोरंगी कवि थे, जो ब्रजभाषा मे तो श्रृंगार, वीर, भक्ति आदि की नूरानी परिपाटी की कविता कवित्व-सवैया या गेय पदों में करते आते थे ओर खड़ी बोली में पूतन विषयों को लेकर चलते थे। इनमें से ब्रजभाषा के प्रति एकांत समर्पित जगन्नाथ नाथदास 'रत्नाकार' और सत्यानारायण कविरत्न ने ब्रजभाषा काव्य में वैशिष्ट्य प्राप्त किया। रत्नाकर की ब्रजभाषा कविता का चरम उत्कर्ष उद्धव शतक में विद्यमान है। उद्धव शतक का विषय, भाषा और शैली तीनों परंपरात है। फिर भी इसमें ऐसा कुछ है जो ताजगी का आभास देता है और आज भी आकर्षित करता है। यह ताजगी गोपियों के परंपरागत रूप से किचिंत भिन्न नये रूप में है। उद्धव शतक में ऐसे अनेक छंद है जिनमें गोपियों की हास्य, व्यंग्य, तर्कशीलता, बौद्धिक प्रखरता, गंभीरता, चुलबुलेपन, तटस्थता, संतुलन इत्यादि की प्रवृत्तियों एक साथ मिलती थी। जैसे, उद्धव के द्वारा उपदेशित प्राणायामं के विरोध में गोपियों का यह कथन—

और हू उपाय केते सहज सुढंग ऊधौ,
सॉस रोकिबै कौ कहा जोग की कुढ़ंग है।
कुटिल कटारी है अटारी है उतंग अति,
जमुना तरंग है तिहारौ सतसंग है।।

रत्नाकार ने दो कक्ति खड़ी बोली में लिखे थे किंतु सत्यानारायण कविरत्न ने अपनी सम्पूर्ण कविता ब्रजभाषा में ही लिखी। केवल कुछ वर्षो। (1903 ई० - 1918 ई०) के रचनाकाल में ही उन्होंने आधुनिक ब्रजभाषा काव्य पर अपनी अमित छाप छोड़ी। इसका कारण उनकी सरलता थी जिसे उनके ये शब्द प्रमाणित करते है—

सदा दारू-योषित सम बेबस आज्ञा मुदित प्रमानै।
कोरो सत्य ग्राम को बासी कहा तकल्लुफ जानै।।

उनका तकल्लुफ न जानना ही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। वे जैसा अनुभव करते थे और जैसी ब्रजभाषा बोलते हैं। उसे वैसी की वैसी ही भाषा में व्यक्त करते थे। इसलिए उनकी कविता चाहे भक्तिभाव की हो, राष्ट्र प्रेम की हो, निजी जीवन की त्रासदी की हो अथवा समसामयिक घटनाओं और व्यक्तियों से संबंधित हो इतनी सहज और प्रभावशाली बन पड़ी है कि कोई उनकी मर्मस्पर्शिता से बच नहीं सकता।

15.9 खड़ी बोली की कविता

द्विवेदी युग की हिंदी कविता को सबसे बड़ी देन खड़ी बोली को कविता की माध्य।-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना है। खड़ी बोली में दोरंगी कवियों की कविताओं का महत्व अवश्य है। लेकिन उनसे अधिक महत्व उन कवियों की कविताओं का है जो इसी युग की उपज है और जिन्होंने खड़ी बोली की कविता लिखी है। ऐसे कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, मुकुटधर पाण्डेय आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अयोध्यासिंह उपाध्यास 'हरिऔध' तो अपने आप में ही एक वर्ग है।

द्विवेदी जी ने कविता के माध्यम से भी पथ-प्रदर्शक का ही काम किया। उन्होंने अपने युग के कवियों को गद्य के माध्यम से ही नहीं पद्य के माध्यम से भी नए विषयों को अपनाने की प्रेरणा दी। फलत: हिन्दी कविता से रीतिकालीन विषय-संकोच दूर हुआ और कवि तमाम नए विषयों पर कविता लिखने लगे। नए विषयों पर लिखी गई बहुत सी कविता पद्य से आगे कम ही बढ़ सकी है। इस पद्य में उपदेशात्मकता, इतिवृत्तात्मकता, निबंधात्मकता और वक्तत्व की प्रवृत्तियाँ प्रधान है।

द्विवेदी युगीन कविता की मूल प्रवृत्ति राष्ट्रीयता की भावना है जो अतीत वर्तमान और भविष्य तीनों काल में प्रसुप्त है और जिसे मैथलीशरण गुप्त ने सूत्र रूप में इस प्रकार व्यक्त किया है—

हम कौन थे क्या हो गए और क्या होंगे अभी,

आओ विचारे आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।

इस युग का कवि जब अपने अतीत की ओर देखता है तो उसे गर्व होता है। वह अनुभव करता है कि भारतवर्ष संसार का सिरमौर है—

हाँ वृत भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है,

ऐसा पुरातनदेश कोई विश्व में क्या और है?

भगवान की भवभूतियों को यह प्रथम भण्डार है

विधि ने किया नर-सृष्टि का पहले यही विस्तार है।

वर्तमान भारत तो दारिद्रय, दुर्भिक्षों, व्याधियों, कुसंस्कारो, चरित्रहीनता, अविधा, अशिक्षा, आडम्बर अंधविश्वास, पारस्परिक कलह, अभाव, दासता इत्यादि से भरा हुआ है। इनसे मुक्त होने के लिए आवश्यक है एकजुट होकर बुराइयों को त्यागकर उठ खड़े होना—

उठो त्याग दे द्वेष, एक ही सबसे मत हो।

सीखा ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल उन्नत हो।

भारत की उन्नति सिद्धि से हम सबका कल्याण हो।

दृढ़ समझो इस सिद्धांत को हम शरीर यह प्राण हो।

द्विवेदी युगीन कवियों ने काव्यभाषा का स्वरूप स्थिर कर आगे चलकर उसे अधिक मधुर अधिक कलात्मक और अधिक अभिव्यंजनात्मक बनाने का छायावादी कवियों का कार्य सुगम कर दिया।

द्विवेदी युगीन कवियों ने छंदों, अलंकारों, काव्य रूपों आदि के क्षेत्र में भी नए-नए प्रयोग किए। उन्होंने पुरानें छंदों को लोकप्रिय बनाया। हरिगीतिका इसका सुंदर उदाहरण हैं संस्कृत के वर्णवृत्तों का पहली और अंतिम बार इतना अधिक प्रयोग हुआ। काव्यरूप के क्षेत्र में इस युग के कवियों की सबसे बड़ी देन

प्रबंध-काव्य के क्षेत्र में है। 'प्रियवास', 'साकेत', 'रामचरित चिंतामणि', 'जयभारत' जैसी महाकाव्य होने का दावा करने वाली रचनाऐं इसी युग के कवियों की देन है। इस युग के कवियों ने खण्ड काव्य तो इतने अधिक लिखे है, जितने इनसे पहले और इनके बाद के कवियों ने कभी नहीं लिखे। ये शिल्पगत प्रयोग इस युग की विशेष मनोभूमि का पता देते है।

संदर्भित ग्रन्थ

कहानी नयी कहानी	—	नामवरसिंह
हिन्दी का गद्य साहित्य	—	रामचन्द्र तिवारी
प्रसाद के नाटक	—	डॉ० गोविन्द चातक
प्रसाद के तीन नाटक	—	डॉ० प्रेमनारायाण टंडन
हिन्दी गद्य की नवीन विधाएँ	—	राजेन्द्र प्रसाद
आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ	—	नामवरसिंह
आधुनिक हिन्दी साहित्य: विविध आयाम	—	रामचन्द्र तिवारी
हिन्दी साहितय का इतिहास	—	रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी साहित्य का अतीत भाग 1	—	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	—	राम कुमार वर्मा
हिन्दी साहित्य की भूमिका	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
साहित्येतिहास: संरचना और स्वरूप	—	सुमन राजे
साहित्येतिहास आदिकाल	—	सुमन राजे
हिन्दी साहित्य का आदिकाल	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	—	डॉ० नगेन्द्र
नयी समीक्षा के प्रतिमान	—	निर्मला जैन
व्यावहारिक हिन्दी	—	दंगल झाल्टे
भारतीय नाटय शास्त्र और आज का रंगमंच	—	विश्वनाथ मिश्र
मध्यान्तर भारत के लोकनाटय-नृत्य	—	अर्जुनदा केसरी
साहित्य सहचर	—	हजारीप्रसाद द्विवेदी
एक दुनिया समानान्तर	—	राजेन्द्र यादव
दिशाओं का परिवेश	—	राही मासूम रजा
प्रतिक्रियाएँ	—	डॉ० देवराज

बोध प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. जागरण सुधार काल को द्विवेदी युग कहते हैं। इस पर प्रकाश डालते हुए द्विवेदी युग की विस्त चर्चा कीजिए।
2. द्विवेदी युगीन कविता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. द्विवेदी युगीन काव्य की प्रवृत्तियों को अंकित कीजिए।
4. द्विवेदी युगीन काव्य की विशेषताओं पर उदाहरण सहित चर्चा कीजिए।
5. द्विवेदी युगीन लक्षणों को रेखांकित कीजिए।
6. द्विवेदी युगीन काव्य सुधार का काव्य है।' चर्चा कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. द्विवेदी युग का यह नाम क्यों पड़ा?
2. द्विवेदी युग के दो प्रमुख कवियों के जीवन परिचय दीजिए।
3. द्विवेदी युगीन कविता के आधार बिंदू कौन-से हैं?
4. 'द्विवेदी युग में नारी का स्थान' इस विषय पर आलेख लिखिए।
5. 'खड़ी बोली का प्रयोग द्विवेदी युग में पर्याप्त मात्रा में हुआ है।' इस विषय की विवेचना कीजि

अति लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. सरस्वती पत्रिका का सम्पादन कब हुआ?
2. माखनलाल चतुर्वेदी की कविता संग्रहों के नाम लिखिए।
3. अपलक और रश्मिरेखा के रचनाकार का क्या नाम है?
4. सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म कब और कहाँ हुआ?
5. हिन्दी में किस गद्य विद्या का जन्म द्विवेदी युग में हुआ था?
6. द्विवेदी युग में अनुवाद लेखन किस विधा में हुआ?

MA HINDI-101(H)

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणिः पष्यन्तु माकष्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

Swami Vivekanand
SUBHARTI UNIVERSITY
Subhartipuram, NH-58, Delhi-Haridwar Bypass Road,
Meerut, Uttar Pradesh 250005
Phone : 0121-243 9043
Website : www.subhartidde.com, E-mail : ddesvsu@gmail.com